श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ

द्वितीय खण्ड

जिसमें

चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ स्कन्ध

की कथा वर्णित है

रचयिता

श्री पं० माधवराम अवस्थी "व्यास"

प्रकाशक

आयुर्वेदाचार्य पं० रामचन्द्र अवस्थी वैद्यशास्त्री धर्मशा० आ०

अध्यक्ष श्रीरामकृष्ण औषधालय तथा विद्यालय,

इटावाबाजार, कानपुर।

प्रथमावृत्ति १००० प्रति	संवत् १९८४ वि०	मूल्य प्रति पु० २)

प्रिन्टर—लाला रामनारायण, मरचेंट प्रेस, कानपुर।

विषयानुक्रमणिका।

अध्याय	विषय	पृष्ठाङ्क

चतुर्थ स्कन्ध।

पञ्चम स्कन्ध।

षष्ठ स्कन्ध ।

घुमनीमुहाल कानपुर निवासी

श्रीमान् लाला चतुर्भुजजी के पौत्र

श्रीमान् लाला शिवनाथजी के पुत्र

श्रीमान् लाला घासीरामजी वंग

आपकी धर्म में अच्छी निष्ठा है। आप की धर्मपत्नी सती, पतिव्रता तथा बड़ी धर्मात्मा हैं। आपने चतुर्थ स्कन्ध की वितरणार्थ ५०० पुस्तकों की छपाई में पूर्ण धन देकर सहायता की है।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
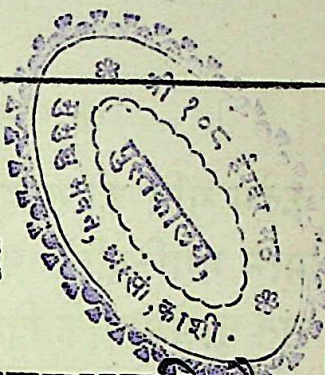
अथ श्रीमद्भागवते भाषा सरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे प्रथमोऽध्यायः

श्लो०—तत्र तु प्रथमेऽध्याये मनुकन्यान्वयाः पृथक् ।
वर्ण्यते यत्र यज्ञादि मूर्तिभिः प्रभवो हरेः ॥

मैत्रेय उ० दो०—विदुर प्रश्न कीन्हो प्रथम, पुनि मुनि उत्तर दीन ।
चतुर्थ में वर्णन कियो, उक्ति युक्ति सब कीन ॥

छ०—अध्याय प्रथम में मनु कन्या के, वंश यज्ञ नारायण है ।
जन्मे सबका चरित्र वर्णन, क्रम क्रम से कहि तारायण है ॥
मनु शतरूपा से आकूती, देवहुती प्रसूती कन्या तीन । १
मनु आकूती रुचि ऋषिहि दई, पुत्रिका धर्म हियमें धरि लीन २
रुचिऋषि के जोड़ी कन्या सुत, भये प्रगट हैं परम समाधी से ३
जो पुरुष यज्ञ नारायण हैं, दक्षिणा नारि निरुपाधी से ॥ ४
पुत्री का पुत्र मनु घर लाये, पुत्री रुचि मुनि के घरमें रही । ५
दक्षिणा यज्ञ का ब्याह हुआ, सुत द्वादश तामें भये सही ॥ ६

दो०—तोष भद्र संतोष अरु, प्रतोष सुत भद्रादि ।
इध्म कवी विभु स्वन्ह सब, पढ़ते मिटै विषाद ॥ ७

छ०—स्वायंभू मनुमें तुषित देव, मुनि मरीचिमिश्रित यज्ञ देव । ८
उत्तानपाद प्रियव्रत का वंश, सुत कन्या नाती पोता भेव ॥ ९
देवहुती बिवाही कर्दम को, तिसका वृत्तान्त सुना सारा । १०
मनु प्रसूति ब्याही दक्षहि को, जिसके कुलका जग विस्तारा ११

कर्दम मुनि की नवहैं कन्या, उनके कुलका विस्तार सुनो। १२
मुनि मरीचिकी है कला नारि, सुत पूर्णिमान कश्यपहु गुनो १३
सुत पूर्णिमान के विरज विश्वजहु, देव कुली में उपजाये।
जो जन्म दूसरे में गंगा, ह्वै गईं विष्णुपद जल जाये॥ १४

दो०—अनुसूया अत्रीहु के, तीन पुत्र भये तात।
दत्तात्रेयी चन्द्रमा, दुर्वासा विख्यात॥ १५

विदुरउ०—अत्री मुनिके सुत तीनदेव, किसहेत भये यहहाल कहो
मुशकिल से एक लेते वतार, आश्चर्य तीन सुर पुत्र अहो॥ १६
मैत्रेयउ०—ब्रह्मासे आज्ञापाय अत्रि, अनुसूयासहिततपकरते हैं १७
निर्विंध्यानदीतट फूले फले, तरु लता बेलि मन हरते हैं॥ १८
करि प्राणायाम वायूभोजन, सौ वर्ष एक पग से ठाढ़े। १९
जगदीश्वर की शरणागत हैं, निज तुल्य पुत्र दे रुचि बाढ़े॥ २०
तप अग्नि तपाया त्रिभुवनको, तपधूम निकल शिरसे लखकर। २१
अप्सरा देव गंधर्व गीत, यश तेहि थल गे त्रिदेव हरि हर॥ २२

दो०—तीन देव तहँ प्रगटभे, लखि प्रसन्न मुनिराज।
एक पैर से ठाढ़ अब, गुन्यो सिद्ध ममकाज॥ २३

छ०—वृष हंस गरुड़ पै सवार लख, दोउहाथ जोड़ दंडवत करी। २४
गद्गद वाणीसे बचन कहे, तिन तेज से बंददृष्टि उघरी॥ २५
हो नम्रचित्त मीठी वाणी से, तिनकी स्तुति ठानी है। २६
अत्रिरु०—उतपति पालन संहारकरन, तुम तीन कौन सुधिआनी है २७
जगदीश्वर भगवत एकहिको, भजि तीन लखे आश्चर्य भया। २८
मैत्रेयउ०—यहसुनित्रिदेवबोलेमुनिसे, सुनिबचनसभीसंदेहगया॥
देवाऊचुः—जिमिकियाचित्त संकल्प सिद्धिसोभयासत्यसंकल्पहैंआप ३०

तीनों के अंश से तीन पुत्र, होंगे जग छावैं तव प्रताप ॥ ३१
बर देकर अन्तर्ध्यान भये, दम्पति के देखते तीनों सुर । ३२
ब्रह्मा से चन्द्रमा विष्णुदत्त, भे दुर्वासा मुनि हर ईश्वर ॥ ३३

दो०—श्रद्धा ब्याही अंगिरहि, भईं कन्यका चार ।
सिनीवालि राका कुहू, अनुमति नाम विचार ॥ ३४

छ०—भेहविर्भुवीमें अगस्त्यजी, मुनि पुलस्त्य से विश्रवाभये ।३६
विश्रवा के पहिली में कुवेर, दूसरी नारि में सुत सुन ये ॥
रावण औ कुंभकरन कन्या, इक चौथ विभीषण धर्म ज्येष्ठ ।३७
मुनिपुलह की गतिनारीमें तीन, बरियानसहिष्णुऔकर्मश्रेष्ठ।३८
ऋतुजी की क्रियाहि नारीमें, भे बालखिल्य मुनि साठि सहस। ३९
भे बशिष्ठ के ऊर्जा में पुत्र, हैं चित्रकेतु आदिक सर्वस ॥ ४०
ते चित्रकेतु औ मित्र सुरोचिः, मित्र शक्ति आदिक सबहैं । ४१
चित्ती है अथर्वण की नारी, सुत धृतव्रत दधीच मुनि तबहैं ४२
भृगु ख्याती में धाता विधात, श्रीभगवत पर ये सुत जाये । ४३
आयती नियति तिनको ब्याही, सुत मृकंड प्राणहु उपजाये ४४

दो०—मारकंडेय मृकंड के, वेदशिरा हैं प्रान (से) ।
भृगु के कविजी पुत्र हैं, कवि के उशना जान ॥ ४५

छ०—कर्दम कन्या की सृष्टी से, जग सारा ही भरपूर रहा । ४६
कहि पूर किया सब पाप हरैं, अब प्रसूति दत्त है वंश महा ४७
दत्त प्रसूति की सोलह सुता, तेरह तो धर्म को ब्याह दईं । ४८
दई एक अग्नि पितरों को एक, अरु एक रुद्र को नारि भई ॥
श्रद्धा मैत्री दया तुष्टि पुष्टि, नति क्रिया शांति मेधा बुद्धी ॥ ४९
ही मूर्ति तितिचा धर्म नारि, श्रद्धा के सुत शुभ जहँ सिद्धी ५०

मैत्री प्रसाद अरु दया अभय, शांती सुख तुष्टी सुत है मोद।
पुष्टी स्मय[1] सुत क्रिया योग, उन्नती दर्प बुधि अर्थहि बोध॥५१

दो०—क्षेम तितिक्षा के भये, मेधा सुत स्मृति जान।
ह्री लज्जाके नम्र सुत, मूर्तीके भगवान (नर नारायण) ५२

छ०—नर नारायण जन्मे जग प्रसन्न, गिरि नदियां दशदिशि हर्षमढ़ा ५३
भै पुष्पवृष्टि दुन्दुभी बजी, गन्धर्व गान आनन्द बढ़ा॥ ५४
ब्रह्मादिक देव मुनी मिलिकै, इस प्रकार से स्तुति ठानी।
जो जग उपजावत आप हरी, यह समय अवतरे बनि ज्ञानी ५५
देवाऊचुः—जोमायासे सबजगतरचै, वहऋषिहो धर्मके पुत्रभये ५६
सुर रचे सत्व से रक्षा हित, हम नमैं तुम्हैं रहो कृपा किये ५७
नरनारायण सुनि स्तुतिसबकी, तपहेत गंधमादन पै गये।५८
भूभार उतारनहेत कृष्ण, अर्जुन ह्वै युद्ध कुरुवंश भये॥५९

दो०—अग्निदेव के तीन सुत, पावक शुचि पवमान। ६०
तिनसे पैंतालिस भये, सब उनचास प्रमान॥ ६१

छ०—यज्ञों में ले ले नाम पृथक्, सबकोइ आवाहन करते हैं। ६२
अग्निष्वाता बर्हिषद सौम्य, पितृनारि स्वधाके कहते हैं॥ ६३
वयुना औ धारिणी द्वै कन्या, दीं ज्ञानी भव से पार भये। ६४
तब शिवकी सतीमें सुत नभये, गुणशील सदृश जैसेचहिये॥६५
अपराधरहित शिवपर क्रोधित, निजपितु की यज्ञमाहिं जाकर।
धिक्कार दिया अपने पितु को, तनतजा योगअग्नी लाकर॥ ६६
भजन—वंश मुनियों का अति विस्तार॥ टेक॥
दक्षसुता सोरह हैं तिनमें, जन्में विविधप्रकार॥ वंश०॥

---

[1] गर्भ।

मुख्य मुख्य के नाम गिनाये, लिये बहुत अधिकार ॥ वंश० ॥
सती त्यागि तन पितायज्ञ में, जारि कियो तन छार ॥ वंश० ॥
माधवराम पाय पुनिशंकर, गाये चरित उदार ॥ वंश० ॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ।

श्लो०—द्वितीये प्रथमाध्याये प्रदिप्तभवदक्षयोः ।
विद्वेषे वर्ण्यते हेतुर्विश्वसृड्यज्ञ संभवः ॥

दो०—दुसरे में शिव दक्ष के, विरोध का संवाद ।
प्रश्न विदुर उत्तर मुनी, भृगु मुनिगणों विवाद ॥

विदुरउ० छ०—शिवशीलमानमेंश्रेष्ठ, दक्षनिजकन्याप्रियमेंक्योंझगड़ा १
चर अचर गुरू निर्वैर शांत, जगदेव शुद्ध से भी रगड़ा ॥ २
किमि ससुर जमाई का झगड़ा, जहँ सती सुता ने प्राण दिये ।
यह चरित कहो मुनिराज आप, अति विस्मय स्वामी मेरे हिये ३
मैत्रेय उ०—पूर्वहीं विश्वसृष्टाकीयज्ञमें, सुरमुनिअग्न्यादिक आये ४
आते लख दक्षहिं सभी उठे, शिव ब्रह्मा नहि तेहिं यश गाये ५-६
सत्कार पाय सबसे पितु के, पद नमित हुकुम पा बैठ गया ।७
ढिग बैठे शिव को देख क्रुधित, हो बचनबान वेधता भया ॥ ८

दो०—ऋषी देव अग्नी सुनो, कहूं न मैं अज्ञान । ९
लोकपाल का यश हरै, निलज्ज याको जान ॥ १०

छ०—अच्छों का रास्ता दूषित कर, है शिष्य मेरी बेटी ब्याही ११

मृगनैनी मर्कट लोचन ये, नहिं कही बात इक उत्साही ॥ १२
इस क्रिया लोपमानी को सुता, दी पिता कहे ज्यों शूद्रको ज्ञान १३
बसै प्रेत संग स्मशान में, नंगा घूमै हँसि रोदन ठान ॥ १४
अंग चिताभस्म अरु मुंडमाल, शिवअशिवरूप भूतों का नाथ १५
ब्रह्मा के कहे बेटी ब्याही, उन्मादनाथ दुर्हृद के साथ ॥ १६
मैत्रेय उ०—बहु निंदा करि दक्ष तब, जल लै दीन्हो शाप । १७
अब यह देवन संग महँ, भाग न लहै कदापि ॥ १८

छ०—रोका भी सदस्योंने उसको, नहिं सुना शापदै घर चल आप १९
सुनि नंदीश्वर गुस्सा होकर, दक्षहु द्विज संगिन दीनो शाप २०
निर्वैर शांत शिव से भी बैर, अज्ञानी तत्व से हों बाहर । २१
घरसुख में रत करैं कूट धर्म, ऊपर से वेदपाठी जाहर ॥ २
विद्या से आत्मगति भूल पशू, इस दक्षके हो बकरे का मुख । २३
है विद्या बुद्धि अविद्या में, जग जन्मै ये सब शिवसे विमुख २४
पुष्पित बानी में लोभित हो, शिवद्रोही सदा जग मोह परैं २५
धृत ब्रत विद्या द्विज सब भक्षी, याचक हों तनसुख हेत फिरैं २६
दो०—नंदीगण का शाप सुनि, भृगु मुनि देते शाप । २७
भव ब्रतधारी संगि जे, करैं पखंड कलाप ॥ २८

छ०—ते मूढ़ शौच से हीन, जटा शिरराख धारकर मदिरा पान २९
द्विज वेदों निंदक तुम सब हो, पाखंडी भूलैं सतपथ ज्ञान ३०
यह धर्म सनातन सुखदायी, जिसको मुनिमानैं हरि भगवान ३१
वह मार्ग सनातन के निंदक, पाखंडी इष्ट शिव पर अरमान ३२
मैत्रेयउ०—भृगुशापदिया सुनलखिझगड़ा, शिवकुछउदासगणसहितचले ३३
करि यज्ञ पूर्ण गे ब्रह्माजी, पूजित मखमें भगवान भले ॥ ३४

यज्ञान्त नहान प्राग में कर, गंगा यमुना सङ्गम है जहां।
अपने २ सब धाम गये, स्थान जासु पहुंचे सो तहां॥ ५

भजन—जगत में दुखदाई अभिमान।
दक्ष प्रजापति पदवी पाई, हिय में भरो गुमान॥ टेक॥
शिव को शाप दियो निंदा करि, नेक हिये नहिं ध्यान।
कहा सुनी दोतरफा बाढ़ी, शापा शापी ठान॥ जगत
शंकर चले मौन गहि मन में, धारे हैं दृढ़ ज्ञान।
माधवराम गुमान तजे बिन, सपने नहिं कल्यान॥ जगत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे तृतीयोऽध्यायः।

श्लोक—तृतीये तु सतीतातयज्ञोत्सवदिदृक्षया।
गमिष्यंती महेशेन वारिता नीतिहेतुभिः॥

दो०—सती जात पितु के सदन, शिव समझाई नीति।
तिसरे में, वर्णन करी, कियो न तिया प्रतीति॥

मैत्रे०उ०छ०—जामातृ स्वसुरके बैरभावमें, बहुतकालभी बीतगया १
सब प्रजापतिन के अधिपति पद, पर दक्षहुका अधिकार भया॥२
त्रयदेव को तज करि वाजपेय, मख बृहस्पती उसने ठानी। ३
मुनि देव पितर आये उसमें, पति सहित नारि आज्ञा मानी॥ ४
लखिविमान उनकेसती पूंछि, मख उत्सव निजपितु घरमें सुना। ५
पुनिनिरखि विमानोंपर देवी, पतिसहित सजीं मन अपने गुना ६

उत्साह बढ़ा उनको लखकर, ढिग जाय प्राणपति शिव से कहैं।७
सत्यु०—हेप्राणनाथतव स्वसुरयज्ञ, में जांयसबै हम जानचहैं ॥८
तहँ बहिन हमारी निजपतिसँग, जाती हैं आपसंग हम चलकर।९
बहिनोंसे मिल मातासे भेंटि, मनआनँदहो आनँद लखकर ॥ १०

दो०—तुम्हरी माया से जगत, त्रिगुण आपमें भान।
नारी मतिमारी प्रभू, मातृभूमि पर ध्यान ॥ ११

छ०—दिखलादो देखो सभी पतीसंग, ये जगमगैं विमानोंपर।१२
जारहीं चलो बिनबुलायभो, जाना चहिए पति पितु के घर ॥ १३
कैसे बेटी का मन मानै, पितुघर उत्सव सुन हे स्वामी।
हो प्रसन्न देव दया भिक्षा, अर्द्धांगी मैं पद अनुगामी ॥ १४
ऋषिरु०—शिवप्यारीको यह कथन सुना, हियवेधी दक्षकी गुनबातैं।१५
श्रीभगवानु०—सचकहतीं प्यारी बिन बोले, जावैन होयजिनकेघातैं१६
विद्या तप धन तन आयू कुल, छै मद से जग मतवार रहै।
सज्जन का मान राखै न कभी, रहे मस्त नशे असवार रहै ॥ १७

दो०—अरि शर दुखदाई न तस, रणमें बिंधो शरीर।
कटुबानी शर बंशकी, हिय कसकै जस पीर ॥ १६

छ०—नहिं बंधुमानि तिनके घर जा, जे दुष्टचित्त भौंहैं कमान।
आये का आदर नहीं करैं, बेधते हृदय कटुबचनबान ॥ १८
तुम प्रजापतीकी प्रियकन्या, मेरी हो मान न पावोगी।
मेरे से दक्ष दुख मान गया, दुख पाकर तुम पछतावोगी ॥ २०
जो दुखित हिया व्याकुल इन्द्री, सत्पुरुषों की लहि सकै न गति।
करता है बैर ज्यों हरि से असुर, सज्जन से हरदम दुर्जनमति॥२१
उठकर लेना करना प्रणाम, सज्जन से उचित अहै करना।
घटबासी को हियसे प्रणाम, तनमानी से क्या आचरना ॥ २२

दो०—सत्व शुद्ध अन्तःकरन, नाम तासु वसुदेव।
वासुदेव व्यापक हरी, चिंतन नमन सदैव॥ २३

छ०—मत जाव देखने पितु को तुम, वह उसके संगी हैं बैरी।
अपराध बिना सुनो यज्ञमाहिं, सब प्रकार की दुर्गति मेरी॥ २४
जो बचन त्यागकर जावोगी, हे प्रिया तेरा कल्यान नहीं।
मरना अच्छा है उस नरका, अपनों में जिसका मान नहीं॥ २५

कुंडलिया—नर उत्तम के मानधन, मध्यम धन धनमान।
अधम एक धन को चहै, होय भले अपमान॥
होय भले अपमान, नीच धन हेत दिवाने।
घर घर डोलत फिरै, काकिनी हेत बिकाने॥
माधवराम जो शान नहिं, जगमें शूकर श्वान खर।
सज्जन मरते मान हित, चहै सदा धन नीच नर॥

भजन—मानो कहना हमारा न जावो प्रिया॥
तियको मातुपिता घर प्यारा, बेटी में राखै वोभी हिया॥ टेक॥
तव पितु बैर करत है हमसे, सभाबीच अपमान किया।
अबहूं शांति हियेनहिंताके, अपमानहि हित बोयोबिया॥मानो॥
बचन त्यागि जो यज्ञ में जैहौ, ह्वै है तुम्हरी छिया छिया।
माधवराम मान ले जगमें, मान बिना जन बृथा जिया॥मानो०॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे तृतीयोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषा सरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः

श्लोक—चतुर्थे तु पतिं हित्वा गता पित्राऽवमानिता ।
रुषा निर्भर्त्स्य तं यज्ञे जहौ देहमितीर्यते ॥

दो०—चौथे में पति तजि गईं, पितु से लहि अपमान ।
यज्ञ माहिं तिह सती ने, त्यागि दिये निज प्रान ॥

मैत्रेयउ०—ऐसाकहशिवजीमौन भये, पत्नी का नाश सब विधि लख कर
पितु मां के देखन हेत सती, आती जाती बाहर भीतर ॥ १
नैहर की रोक से दुखित चित्त, अति विकल नेह से आंसु बहैं।
अद्वितीय शिवपतिको भी सती, करिक्रोध कांपिलखि जाया चहैं २
भर श्वास उसांस छोड़ पति को, दिल दुखी क्रोध अरु शोक भरी
पितुघरको चलीं शिवकलंक तज, तियको अपनी अर्द्धाङ्गी करी ३
जल्दी जाते ज़ब लखी सती, शिव अनुचर सहस अनेक चले ।
मणिमन् मदादि बिनती करके, ली सती चढ़ाय नंदिहू भले ४

दो०—गेंद सारिका व्यजन सृज (माला), दर्पन आदि समान
शिवहु कहा लै जाहु सब, को होवै हैरान ॥ ५

छ०—हो रहा वेद का पाठ यज्ञ में, ऋषी देवता जुरे सभी ।
सब प्रकार आसन और पात्र, गईं शोभा देखैं हेत तभी ॥ ६
सती आते लखि बोला न कोइ, मखमाहिं दक्ष से डर करके ।
मिलीं बहिन प्रेमआतुर ह्वै मां, बह नैनधार मिलि हिय भरके ॥७
बहिनों मौसी माता की बात से, आदर आसन सब सेवा ।
अपमान देख निज पितु से सती, नहिं लई सुमिरि वह पतिदेवा ॥८

मख में नहिं देखा रुद्रभाग, अपमान पती का पितु से लख।
अपनाभी अनादर देख कोप, करैं लोक भस्म गइँ पितु सन्मुख॥९
भरि अमर्ष वाणी से बोलीं, पितु शिवद्रोही मख अभिमानी।
मारबे हेत गण उठे रोकि, फटकार सबहिं बोलीं बानी॥ १०

श्रीदेव्यु० दो०—जिनका शिक्षक हित अहित, कोऊ कतहूं नाहिं।
निर्वैरीशिवजगत महँ, पितु तोहिंशत्रुदेखाहिं ११

छ०—हैं चार प्रकार जीव जगमें, गुन त्याग दुष्ट औगुनग्राही।
द्विज सुन ले दूजे हैं जग में, मध्यस्थ दोषगुण दोउ चाही॥
तीजे हैं श्रेष्ठ औगुनको त्याग, जे केवल गुण को गहते हैं।
अतिश्रेष्ठ महात्मा कुछ गुण को, पर्वत समान नित कहते हैं॥१२
देह ही आत्मा जो मानै, तिस दुष्ट के निंदा मुख में बसै।
अपमानित साधुपदधूर से वह, अपनी निंदा सुन साधुहँसै॥ १३
दो अक्षरवाला शिव ये नाम, मुखही से निकले पाप हरे।
है अमिट आज्ञा शिव से बैर, कह पिता अमंगल रूप धरे॥ १४

दो०—चरणकमल जिन शंभु के, सेइ साधु मन भृङ्ग।
बर वर्षत याचक जगत, तिन सों बैर प्रसङ्ग॥ १५

छ०—शिरजटा चिताकी भस्मआदि, ब्रह्मादिकसुर क्यानहिंजानैं।
भूतों के संग स्मशानवास, पदरज सबसुर धरि सन्मानैं॥ १६
सुनि धर्म रूप ईश्वर निंदा, भागै झट शक्तिरहित ढंकिकान।
यह धर्म कहै जो होय शक्ति, तो निंदक की ले काढ़ ज़बान॥१७
शिवनिंदक तेरे से पैदा, इस तन का भी मैं त्याग करूं।
जो मोह से खावै दुष्ट अन्न, उलटी करदें यह ज्ञान धरूं॥ १८
निज रूप रमैं जो महामुनी, उसे विधि निषेध से काम नहीं।

जिमिदेवमनुजकी रीतिअलग, निजनिजपरचलिआरामसही १९
दो०—कर्म प्रवृत्त[१] निवृत्त[२] सच, गहैं अलग अधिकारि।
शिव त्यागी हैं दोउ के, ब्रह्म रूप त्रिपुरारि ॥ २०
छं०—हे पिता यज्ञ अभिमानी तुम, हमरी पदवी नहिं पा सकते।
स्वर्गादिक यज्ञ अन्न खाकर, त्यागी अवधूत न पद लखते ॥ २१
हर अपराधी तुझसे पैदा, इस देह से नहिं मतलब मेरा।
लज्जा है खोटे संगत से, धिग् जन्म द्रोहि संतन केरा ॥ २२
तेरा ही गोत्र दाक्षानी कहि, शिव हँस कर मुझे बोलावैंगे।
लज्जा होगी निंदित तव तन, त्यागने से आनँद छावैंगे ॥ २३
मैत्रेय उ० दो०—मख में कहि यों दक्षसे, उत्तर मुख चुप साधि।
वस्त्र ढांपि करि आचमन; योगसे लीनि समाधि ॥ २४
छं०—जित आसनप्राण अपानपवन, करिसमनाभीसे खैंचि उदान
सबको हियमें फिर कंठमाहिं, फिर भौंह मध्य में दिया ठिकान २५
महतों के महत शिव हिये धारि, निज देह रही उसका अब त्याग।
पितु पर क्रोधित त्यागती सती, पति ध्यान धारणा धारीआग २६
शिव जगद्गुरू पतिपदपंकज, पर ध्यान दूसरा ख्याल नहीं।
निष्पाप देह हो गई तुर्त, जल उठी आग भइ भस्म सही ॥
देखो नारीगण पति का प्रेम, दुनियादारी में भूली हो।
जाता है जन्म हीरा समझो, इस नकली सुख पर फूली हो ॥
दो०—सती बनो सतपथ गहो, सत की सारी ओढ़।
तर जावो भवसिंधु से, जन्म मरण तजि कोढ़ ॥
छं०—सतरतन है तिरिया के तनमें, तरवार से ज्यादा काम करै।
जो खोटी नजर से लखै उसे, पल भर में काम तमाम करै ॥

१ यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति। २ शांतोदांत इत्यादि।

गिनती थी नहीं इस भारत में, थीं सती नारि सबके घरमें।
उसके प्रताप से सब सुख था, आराम रहा घर बाहर में ॥
सत में हलचल से हलचल है, अब तिस पर लोग ढकेल रहे।
सत बिन सत्पुरुष स्वराज नहीं, औरही के हाथ नकेल रहे। २७

दो०—दशा देखि यह सती की, ह्यां ह्वां हाहाकार।
हाय देव देवी सती, गई भयो बेगार ॥ २८

छ०—हा लखो अनारीपन इसका, यह दक्ष प्रजापति कहलावै।
थो मान योग अपमान किया, इसका फल अभी मूढ़पावै ॥ २६
करि ब्रह्म द्रोह यह दुष्ट हृदय, जगमें बहु दुर्यश छावैगा।
मरने से न रोकी निज कन्या, शिवद्रोही दुर्गति पावैगा ॥ ३०
यह बातैं होतीं उठे भूत, मारने दक्ष को अस्त्र लिये। ३१
लखिबेग गणोंका भृगु मुनिजी, तब भूतनाशहित हवन किये ३२
आहुति देते रिभु देव प्रगटि, मुनि बल से लक्कड़ ले जलते ३३
सब मार भगाये शिवके गण, ये दिया नमक जलते बलते ३४

भजन—नारि में सतपन रतन बखान, सबझूंठा सामान ॥ टेक०
शीलकी सारी तनमें धारी, बिनाशील तिय फिरै उघारी।
सत की चादर बिना न आदर, नाहक करै गुमान ॥ नारि में०
पतिब्रतकेआभूषण धारे, नकली गहने धरे किनारे।
पति परमेश्वर कोई न दूसर, रखती दिलमें शान ॥ नारि में०
देख पिता घर पतिका निरादर, प्राण त्याग दिये अपने सादर।
मान न लीना कोपहु कीना, सती त्यागि दिये प्रान ॥ नारि में०
तिय सत धारैं देश उधारैं, अपनी बनी न बात बिगारैं।
व्यभिचारहि तजि पति ईश्वर भजि, माधवराममिलान ॥ नारि में०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे पंचमोऽध्यायः ।

श्लोक–पंचमे तु सतीदेहत्यागमाकर्ण्य शंकरः ।
वीरभद्रंरुषोत्पाद्यतेनदक्षमघातयत् ॥

दो०–देह त्याग सुनि सती शिव, क्रोध कियो भगवान ।
वीरभद्र दक्षहि हन्यो, पंचयें माहिं बखान ॥

मैत्रे०उ०–अपमानसती का मरनासुन, शिवजी नारदमुनि के निज मुख
भृगुने देवों से मारे गए, सुनि क्रोध अपार किया सन्मुख ॥ १
वाजिब है बड़े अपमान आप, अपना कुछ भी नहिं मानें है ।
शरणागत का अपमान निरखि, बदला को बैर हिय ठानें है ॥
करि क्रोध ओंठ चबाय करके, झट झटके जटा जटाधारी ।
कुछ हँसे नाद गंभीर किया, फिर जटा भूमि पै दै मारी ॥२
आकाश छुवै तन अति भारी, अति क्रोध हजारहाथवाला ।
त्रैनेत्रसूर्य डाढ़ैं कराल, शिर जटा ज्वाल गल मुँडमाला ॥ ३

दो०–आज्ञा दीजे मोहिं प्रभु, वीरभद्र कर जोरि ।
कह्यो दक्ष मखसहित हनि, आवहु आज्ञा मोरि ॥ ४

छ०–क्रोधित शिव से आज्ञा पाकर, झट परिक्रमा शिवकी दीनी ।
निजतेज बढ़ा बलवानों को, भी असह देखि रस्ता लीनी ॥ ५
बहुभूतगणों की सेनसंग, चल दिये नाद भैरव करते ।
भयदायक हाथ त्रिशूललिये, जगनाशक तिलभर नहिं डरते ॥६
ऋत्विज यजमान दिशा उत्तर, महँ धूल देख आश्चर्य करैं ।
यह क्या है कैसे धूल उठी, द्विज द्विजपत्नी हू ध्यान धरैं ॥ ७

आंधी न चलै नहिं लूटमार, प्राचीन वर्हि नृप जीते हैं।
गौवें नहिं आतीं कैसिधूल, क्या प्रलयकाल निश्चीते हैं ॥ ८

दो०—प्रसूति आदिक सकलतिय, गुनैं कर्मफल भोग।
सब पुत्रिन के मध्य क्या, सती निरादर योग ॥ ९

छ०—शिव प्रलयकाल में खोलजटा, दिग्गज त्रिशूलसे बेधनकर।
निजभुजाध्वजा बिजलीसी हास, नाचते प्रलयमें दे चक्कर ॥१०
उन असहतेज क्रोधितशिव को, डाढ़ैं कराल से अस्त नखत।
जो भौहें टेढ़ी शिव कि हों य, क्या ब्रह्मा की रहसकती पति ॥११
घबराये हुए बातें कहते, मख प्रजापती के जन सब को।
उत्पात सबै भयदायक बहु, आकाश भूमिमें लख अबको ॥ १२
शिवअनुचर शस्त्र धरे नाना, वामन पिशंग आये तबहीं।
नाना प्रकारके मुखऔरूप, लीघेर मखथली चट सबही ॥ १३

दो०—प्राकवंश तोड़ै कोऊ, पत्नीशाला कोउ।
अग्निस्थल करि भग्न कोउ, भोजनशाला सोउ ॥ १४

छ०—कोइ पात्रफोड़ अग्नी बुझाय, करि मूत्र कुंड मेखला तोड़ ।१५
नारी डरवावैं मुनि बांधैं, भागते पकड़ते जाँय दौड़ ॥ १६
मणिमान भृगू मुनि लिये बांध, अरु वीरभद्र मखमालिकको।
चंडीशने बांधा पूषा को, नंदीश्वर भगप्रतिपालक को ॥ १७
सब ऋत्विज देवसभावाले, बहु पिटे पत्थरों से भागे। १८
श्रुवा हाथ भृगू को हवन करत, ली बीरभद्र डाढ़ी आगे ॥
शिवनिंदा में डाढ़ी हलाय, हँसते थे तुर्त उखाड़ लई। १९
भगनेत्र निकारे सभा बीच, अपमान में आंख की सैन दई २०

दो०—पूषा के सब झार दी, दोऊ पांती दंत।
सभा बीच ये हँसत थे, निंदा माहिं महंत ॥ २१

छ०—चढ़ दक्ष की छाती वीरभद्र, तरवार से शिर काटै न कटै २२
शस्त्रास्त्रसे कटती त्वचा नहीं, बर निरख ध्यानशिव किया झटै २३
संज्ञपन योग लखि शिर मरोड़, कर तोड़ देह से भिन्न किया २४
है भला भला कहैं भूत प्रेत, मखवालों को बहु दुःख भया २५
दो०—हवन किया शिर अग्नि में, चले गये कैलाश। २६
बुरा कर्म जो करत है, होत तासु गल फांस ॥
भजन—भूलि नहिं कीजै सुर अपमान ॥ टेक ॥
मदादेव देवों के देव हैं, दक्ष बैर लियो ठान।
निंदा कीन शापहू दीना, सोचे नहीं निदान ॥ भूलि०
आखिर यज्ञ विध्वंस भई सब, तजे देह अरु प्रान।
जो अनरीति करै घमंड से, पीछे हो हैरान ॥ भूलि०
शिक्षा सिखो बड़ों को मानो, करि सेवा सन्मान।
माधवराम विप्र गुरु सेवै, होय सदा कल्यान ॥ भूलि०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे पंचमोऽध्यायः

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे षष्ठोऽध्यायः।

श्लोक—षष्ठे तु देवसंधेन सहगत्वा भवंविधिः ॥
सांत्वयामास दक्षादिजीवताद्यर्थमादरात् ॥
दो०—बिधिसमेत सुरबृन्द सब, ब्रह्मा लैकै साथ।
जियै दक्षमख पूर हो, षष्ठ माहिं यह गाथ ॥
छ०—मैत्रे०उ०—शिवगणसे पराजितदेवबृंद, शूलादिशस्त्रसे छिन्नभिन्न १
है अंगभंग ऋत्विज सदस्य, विधिपहँ पहुंचे मनसे हैं खिन्न ॥२

करि प्रणाम हाल सुनाया सब, समझेथे विष्णु बिधिगये न मख ॥३
सुनि ब्रह्मा कहैं तेजस्वीबड़े, अपराधी हों नहिं कोइ सन्मुख ॥४
अपराधरहित शिवभाग हरा, अपराधी सुर शिव ढिग जाकर ।
चरणों में शिरधर करी बिनय, हर आशुतोष शुभचित लाकर ॥५
जो क्रोधित शिव तो लोकपाल, भी नाश होंय यह लखो सजा ।
कटुबचनसे बेधित हिय शिवका, अरु तियाहीन करो प्रसन्नजा ॥६

दो०—यज्ञ देवता और सब, मुनि हम जेहि शिवसार ।
जानै नहिं बलवीर्य को, का उपाय करतार ॥ ७

छ०—यों कहके सुरों से चुप ब्रह्मा, तब डरे देव बिधि संग चले ।
पितृ प्रजेश सुर कैलाश चले, बिगड़ी को बनाते सदा भले ॥८
जन्मौषधि अरु तप योगसिद्ध, सुर किन्नरादि गिरिपर सोहैं । ९
मणियुक्तशृङ्ग बहुधातु बृक्ष, मृग लता भृङ्ग मुनिमन मोहैं ॥१०
निर्मल झरना कंदरा शिखर, युत सिद्ध रमण करती नारी ।११
करैं मोर शोर भौंरे गुंजार, कलकंठ पक्षि बानी प्यारी ॥ १२
डारैं हिल २ टेरैं पक्षी, जनु दूर पथिक को गज झरना । १३
टेरते ज़ोर से सुस्ता लो, बृक्षों के बृन्द जनु चित हरना ॥
मंदार सरल तरु पारिजात, शालहु तमाल अर्जुन शोभा । १४
अम्बहु कदंब पुन्नाग नाग, चंपा निरखे सुर मन लोभा ॥ १५

दो०—कमल सुनहले लायची, कोरिया जुही चमेलि ।
फूलनसंयुत लुरिरहीं, सघन तरुन तर बेलि ॥ १६

छ०—कटहर गूलर पीपर पाकर, बट हींग सुपारी शुभ जामुन ।
औषधी अनेकन भोजपत्र, बृक्षों में फूल फल युतलामन ॥ १७
अमरा खजूर महुआ इंगुआ, हैं बृक्ष हवा से बाजै बांस । १८
जल माहिं कमुद उत्पल कह्लार, शतपत्र कमल जनु करते हांस ॥

पद्मिनी पै बैठे खग बोलैं, वह मधुर शब्द सुखदाई है।
शोभा गिरि की नहिं बरनि सकै, लखते ही मन हरषाई है॥ १६
मृग बानर सूकर सिंह रीछ, स्याही गैंड़ा मृग श्याम सुघर। २०
बहु जीव कहां लौं कहैं कथा, जलके तट केले अति सुंदर॥ २१
दो०—नंदाजी का पुण्यजल, बहै जासु चहुं फेर।
विस्मित गिरि कैलाश लखि, रहैं देवता हेर॥ २२
छ०—जा अलकापुरी लखी सुंदरि, कमलोंसेजहँ सौगंधित बन २३
नंदा औ अलकनंदा बहतीं, हरिपदजल तारैं छुअत सुजन॥२४
जिनके तट पै देवी बिहार, करि पतिन संग जल में न्हावैं। २५
जल अंग से बहता सुगंधयुत, बिन प्यास गजी को गज प्यावैं २६
चांदी सोने के रत्न जड़े हैं, विमान तियुयुत यक्ष चढ़े।
बादल के संग बिजली आभा, शोभित हैं तैसे गगन मढ़े २७
वह पुरी और बन छोड़ चले, तब कल्पवृक्ष बन सुघर मिला २८
पक्षी औ भौंर गुंजार करैं, कलहंस कमल पर सोह खिला २६
वह चंदनबन की सुघर वायु, गंधर्वी मनको मथन करै। ३०
मणि कमलमाल से शोभित तन, गंधर्व संग में सुख बिहरैं ३१
दो०—बट योजन शत उच्च अति, पादहीन चौड़ान।
अचल छांह खग नहिं बसै, तापहरन जन मान॥ ३२
छ०—है योग सिद्धजन शरण देत, तरु तर राजै शिव कंठकाल ३३
सनकादि सिद्ध सेवत प्रशांत, हैं सदा मित्र शिवके धनपाल॥३४
एकाग्र योग तप विद्यायुत, जग सुहृद सदा मंगलकारी। ३५
तपसिन प्रिय जटा भस्म धारे, शिव श्वेत वर्ण शिर शशि धारी ३६
कुशआसन पर बैठे नारद से, ब्रह्मज्ञान कह सुनैं सन्त।
पदवाम दाहिनी जंघा पै, रुद्राक्ष अंग सोहैं अनंत॥ ३७

मुद्राहू तर्क औंठा तर्जनि, मिलि गोलाकार अकार रचे।
तीनों अंगुली फैली रहती, है मुद्रा तर्क सुत्याग जचे ॥ ३८

दो०—ब्रह्मानन्द समाधि थिर, योग पट्ट आरंभ।
लोकपाल मुनि आदि हर, नमत त्याग सब दंभ ॥ ३९

छ०—सुर असुर से पूजित बिधिको लखि, उठि शिवजी तुर्त प्रणाम किया
ज्यों वामन हरिअवतारधारि, निज पितुकश्यप को मानदिया ४०
ऋषि सिद्ध नमावें शिर पदमें, शिवजी से हँसि बिधि कहते हैं ४१
ब्रह्मो०—जगदीशबीज शिवशक्तियोनि, हरि परब्रह्म हम गहते हैं ॥४२
आपही शक्ति शिव दोउ रूप, जगकर्ता रक्षक तंतु वसन। ४३
बनि दक्ष धर्म के अर्थ तुम्हीं, यह यज्ञरूप हर किया रचन ॥
वर्णाश्रम की मर्याद सेतु करि, आप विप्रव्रत करि मानैं। ४४
कर्मों के कर्म मंगल मंगल, कर्ताओं की मुक्ती ठानैं ॥

दो०—जौन अमंगल रूप हैं, तिन कहँ नर्क निदान।
उलटा फल कहुं कर्म से, कैसे हो पहिचान ॥ ४५

छ०—तव चरणमें अर्पित मन जिनका, सब जगह तुम्हैं चित धरते हैं।
नहिं भेददृष्टि जीवों पै क्रोध, पशु समुझि दया नित करते हैं ४६
कर्मों में दृष्टि बेभेद दृष्टि, औरों का उदय लखि जलै हिया।
यह रोग से पीड़ित कटुवादी, हतभाग आप सम करै दया ॥ ४७
जे पृथक् दृष्टि मोहित माया, तजि बल साधू तहँ कृपा करैं ४८
शिव आप नहीं माया मोहित, समदृष्टि दया की दृष्टि धरैं ॥४९
नहिं पूर्ण यज्ञ को पूर्ण करो, नहिं भाग दिया सब यज्ञहरी ।५०
यजमान जियै भगनेत्र लहैं, भृगु दाढ़ी पूषा दाँत लरी ॥ ५१

दो०—टूट अंग देवन जुरैं, ऋत्विज हों सर्वांग।
दया दुखिन पर कीजिये, यज्ञ करो पूर्णांग ॥ ५२

शेष यज्ञ में भाग जो, तौन भाग शिव लेहु।
दुखी देव आये शरण, शंभु कृपा करि देहु॥ ५३

भजन—होपूर्णयज्ञ सुरविनयठान, होदयालु शिवजी करहु कान॥
फल लहेव यज्ञ निज करतब को, अपमान कियो तब भरि गुमान॥
पापी को संग करि मिलत दुःख, संगतिफल हमहूं लियो जान॥
अपराध क्षमा हों जनके शंभु, तुमहो दयालु करुणानिधान॥
माधवराम चरणसेवक सुर हैं, स्वामी दाया कीजै निदान॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे षष्ठोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे सप्तमोऽध्यायः।

श्लोक—सप्तमे विष्णुरुद्भूतः स्तुतो दक्षभवादिभिः।
यज्ञं प्रवर्तयामास दक्षेणेति निरूप्यते॥

दो०—सतवें में हरि प्रगट भे, सब मिलि स्तुति कीन।
समझायो नहिं भेद है, एक देव हम तीन॥

मैत्रे०उ०छं०—ब्रह्माजी शिवहिमनायो जब, हँसकर शिवजी तबकहतेहैं १
श्रीमहादेवउ०—मूर्खोंकापापनहींमानैं, निजकर्मोंकाफललहते हैं२
बकरे का मुख अब होय दक्ष के, मित्र नैन से भग देखैं। ३
यजमान दंत से पूषा खाय, यों सतुआ भोजन ही लेखैं॥ ४
अश्वनिकुमार की बाहुसे भुज, पूषाके हाथ से हाथ हों सुर।
अध्वर्यु आदि सब पूर्ण अंग, बकरे की दाड़ी भृगु के फुर॥ ५
मैत्रे०उ०—शिवकथनसुना सब खुशीभये, धनधन्य और जयजय बोले।६
शिव मनाय संग ले चले देव, मखपूर्णहेत शिवबर खोले॥ ७

दो०—साधारण करि पूर्ण बिधि, यज्ञ पशू अज[1] शीश।
दक्ष देह सो जोरिकै, जीवित कीनो ईश ॥ ८

शिर लगा जिया शिवकृपा भई, सोतेसे उठा लखि हर आगे। ९
हर बैर से पापी प्रजापती, भे निर्मल शरद ह्रद अघ भागे ॥१०
हर स्तुति में मन कर न सकै, आंसू बह सुमिरै सुता मरी। ११
मनरोकि प्रेमविह्वल हो दक्ष, भरि प्रेम शंभुस्तुती करी ॥ १२
दक्षउ०—जो दंड दिया बहु करी दया, हूं बिप्रबन्धु उद्धार किया।
ब्रह्मण्यदेव हर विष्णु अहैं, इस बान का ह्यां निर्वाह लिया ॥१३
अज होके आप पैदा करते, विप्रों को प्रथम हो तत्वज्ञान।
रक्षा करते सब विपतसे द्विज, पशु पाल दंड धारैं हित जान ॥१४

दो०—तत्वहीन निंदाकरी, बेधि बचन कटु बान।
परत नर्क शतकोटि लौ, राखिलियो भगवान ॥ १५

मैत्रेउ०—अपराधक्षमा करवाय दक्ष, विधिराह से हरिको यज्ञका नेत १६
मखमाहिं विप्र सब पुरोडाश, लै देत दोष शांती के हेत ॥ १७
यजमान द्विजों ने किया कर्म, शुधि से कीना हरि प्रगट भये ॥१८
करैं कांतिसे दश दिशिमें प्रकाश, चढ़ि गरुड़ नैन सुरमूंदिगये ॥१९
छविश्याम क्षुद्रघंटिका क्रीट, शुभ अलक कान कुंडल दमकै।
शरचाप ढाल असि गदापद्म, अरु शंखचक्र हाथन चमकै ॥२०
हिय रमा लसै बनमाल, मंद मुसकान जगत मोहै माया।
इत उतै व्यजन शिरछत्र ढुरै, छवि चामर राजहंस पाया ॥२१

दो०—आये हरि सुर निरखि सब, बिधि हर इन्द्र मुनीश।
करत दंडवत दक्षहू, कहि जै जै जगदीश ॥२२

---

[1] बकरा।

छं०—हरितेज से तेजछीन सबके, चुप शीघ्र करैं दंडवत पड़े।२३
निज निज मतिसे सुर ब्रह्मादिक, स्तुतिकरने को भये खड़े॥२४
पूजनसामग्री लिये दच्छ, यज्ञेश्वर गुरु दिगपाल हरी।
नंदहु सुनंद आदिक हैं संग, लखि प्रसन्न ह्वै स्तुती करी॥ २५
दच्छउ०—जय शुद्धधाम जगबुद्धि बसौ, चैतन्य एक माया भय हीन।
माया लै पुरुष प्रधानभये, भगवान शुद्ध अपने अधीन॥ २६
ऋत्विजउ०—हम रुद्रशापसे तत्वज्ञान, चंचलमतितनक नजानैं हैं।
यह यज्ञ त्रिवर्ग हु धर्ममूल, मानै तिसको नित ठानैं हैं॥ २७
सद०ऊ०—जगमार्गजन्म पत्थर हैं क्लेश, पथि व्यालकाल तृष्णामृगजल।
गृहभारशीश दुख गर्त दुष्ट, हैं सिंह शोक जहँ दावानल॥
दो०—अज्ञानी साथी सुजन, भरी भूरि हिय चाह।
चरण शरण हरि आपके, मिलिहै कबै पनाह॥ २८
रुद्र०उ०छं०—हेबरदायी तव बरदचरण, सब पूरक मुनिपूजित हैं योग।
अपमानसे पहले दुखित कृपा, तब भई गुनोसब भागके भोग॥२९
भृगुरु०—जिनकी माया अति गहन, अजादिक भी तम में फंस जाते हैं।
अपने से हैं नहिं लखैं तत्व, हे हरि प्रसन्न यश गाते हैं॥ ३०
ब्रह्मो०—जब तक येआपकारूप, भेदवस्तूमें पड़ नहिं पुरुष लखै
गुण अर्थ ज्ञान के आश्रय हरि, माया से अलग मानते भखै ३१
इन्द्रउ०—अच्युतयह जगभावन सरूप, मन दृष्टिहरन नहिं संसारी
भुज आठ शस्त्र धारे अनेक, सुरद्रोहिन के प्रभु संहारी॥ ३२
पत्न्य ऊ० दो०—तव प्रसन्न हित मख रच्यो, दच्छ कीन हर नाश।
यज्ञात्मा हरि शांत वपु, लखि दृग पूरहु आश॥ ३३
ऋषय ऊ०—छुटजाय पापलक्ष्मी पावैं, करिकर्म नतिसके हैं भागी
सब चाहैं लक्ष्मी विभूति को, वह चहै तुम्हैं तुम तेहि त्यागी ३४

सिद्धाऊचुः—यह कथा आपकी अमृतनदी, मन हाथी क्लेश दवारिदह्यो
है प्यास चाह सुनिबो नहान, नहिं कढ़ै फेरि सुख ब्रह्मलह्यो ३५
यजमान्यु०—श्रीपतिस्वागत प्रभुहोप्रसन्न, रक्षाकरिये अबलाहमहैं
सब अंग यज्ञ तुम बिन न पूर, जिमि देहहीन शिर से कमहैं ३६
दो०—लोकपाल विनती करैं, प्रभुपद में शिर नाय।
चरणकमल की शरण है, लीजै हमैं बचाय॥
लोक० ऊ० छ०—नहिंदेखैंहमप्रभु तुम्हें असद् ग्राहीदिक्पालगुमानभरे
सब के द्रष्टा सब से निराल, यह माया हरि नहिं देख परे॥ ३७
योगेश्वरा ऊचुः—नहिंआपकोप्रियवहजीव, जौनविश्वहुव्यापीनिजमेंनिरखै
करिपृथक्दृष्टितुममें अनन्य, जसप्रियवत्सल प्रभु हमहिं लखै ३८
नहिं जीव लखै स्थिति पालन, लय बहुत रूप धारते आप।
निज भेदसे रूप धरे अनेक, नहिं भेद प्रभू गुण भ्रम कदापि ३९
ब्रह्मोवाच दो०—सत्व रूप स्वीकार हरि, धर्मादिक कर्तार।
निर्गुण निष्ठा आपकी, हम नहिं सकैं निहार ४०
अग्निरु० छ०—आपहिकेतेजसेतेजवान, हो यज्ञमें आहुति लेते हैं
पांचहु प्रकार के यज्ञ रूप, हरि आप वेद पद सेते हैं॥
इक दर्श दूसरा पूर्णमास, अरु चतुर्मास तीसरा सुनो।
है पशु चौथा पंचम है सोम, वेदों में यज्ञ विधान गुनो॥ ४१
देवाऊ० शिखरणी छन्द—प्रलैमें हे स्वामी सब जगत राखौ उदर में।
अनादी हे विष्णू जल शयन शेषौ फनन में॥
सदा सिद्धौ ध्यावैं तुव विमल पदवी निज हिये।
भये नेत्रों आगे हरिजनहिं रक्षौ दुखनसे॥४२
गंधर्वाऊ०छ०—सब अंश तुम्हारे देव, मरीचीऋषि अजरुद्र सबै सुरमुनि।
है क्रीड़ाघर संसार आपको, सदा नमैं जगस्वामी गुनि॥ ४३

विद्या०दो०—पुरुषारथहित तनमिलो, गहिकुराह करि मान।
विषय लालसा कुपथ में, बहुविधिलहि अपमान॥
छ०—भगवान आपकी अमृत कथा, करिपान ये जीव नहाता है।
भवपार होय सुख मिलै मुक्ति, छुटै आत्ममोह सुख पाता है॥ ४४
ब्राह्मणऊ०—तुम यज्ञहवी अग्नी औ मंत्र, कुश समिधापत्र सरूपधरे।
यजमान तासुतियसभा के जन, पशु सोम स्वधा सुर रूपहरे॥४५
हरि वराह ह्वै पृथिवी लाये, जा पतालसे ज्यों पद्मिनि गज।
मुनियों ने स्तुती करी गर्जि, हरि यज्ञरूप भे प्रसन्न अज॥४६
कर्मों से भ्रष्ट हम दर्श चहैं, हरि प्रसन्न ह्वै दर्शन पाये।
यज्ञेश यज्ञके विघ्न नशैं, है नाम नमो हरिगुन गाये॥४७
मैत्रेयउ०दो०—रुद्र विनाशित यज्ञ सो, हरि करि दीनो पूर।
विदुर दत्त हर्षित भये भयो शोक सब दूर॥ ४८
छ०—सर्वात्मा हरि निज भागपाय, ह्वै प्रसन्न दत्तहि कहते हैं। ४९
हम ब्रह्मा शिवजग के आत्मा, कारण साक्षी सम रहते हैं॥५०
माया से त्रिगुण रचि पालि हरैं, यह जगत तीन रूपहु लीन्हे ५१
उस ब्रह्म रूप परमात्मा में, अज रुद्र भेद मूरख कीन्हे॥ ५२
ज्यों जीव देह में अंग सबै, शिर पैर आदि नहिं गुनै और।
हरिभक्त योनि चौरासी में, हरि एक लखै मानै सब ठौर॥ ५३
एक ही रूप हम तीन देव जो भेद त्यागि समता लावै।
सब जीवों की आत्मा तीनों, लखि कर सो जीव शांति पावै ५४
मैत्रेय उ० दो०—आज्ञा लै भगवान से, हरि पूजन करि दत्त।
यज्ञ माहिं सब सुरन कहं, पूजत भये प्रतत्त॥ ५५
छ०—मखसे जो शेष बचगया भाग, शिवजी को दे आनंद किया
औरहू देवमुनि ऋत्विज सब, पूजे मख पूर अशीश लिया॥ ५६

अपने अनुभव सिद्धी पाये, गहि धर्म भाग सुरधाम गये।
हरि हर ब्रह्मा निज धाम गये, शिव विचार सत् चित् मग्न भये ५७
इस विधि से तजिकै सती देह, हिमवान औ मैनामें प्रगटी।५८
ज्यों शक्ति पुरुष जागे पै मिलै, शिव मिलैं तपस्या माहिं डटी ५९
मख दक्ष द्रोह शिवजी का चरित, उद्धव से सुना सुरुगुरु चेले।
आनँददायक यह कथा विदुर, सुन सुजन हिये आनंदहि ले ६०

दो०—हरि चरित्र यश आयु सुख, देत पाप हरतार।
सुनै कहै अनुमोद कर, पाप छुटैं भवपार॥

भजन—एकही रूप अहैं सुर तीन॥ टेक॥
मन्द बुद्धि तामस हिय छायो, करैं भेद मतिहीन।
दक्षयज्ञ में विष्णु प्रगट ह्वै, अपने मुख कहि दीन॥ एकही०
राखै भेद हरी हर बिधि में, होवै सुख से छीन।
करैं अनन्यभाव औरहि विधि, प्रगटै पंथ नवीन॥ एकही०
चर अरु अचर इष्ट मय देखैं, जे हरिभक्त प्रवीन।
माधव रामश्याममय सब जग, धारण हियमें लीन॥ एकही०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे सप्तमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषा सरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे अष्टमोऽध्यायः

श्लोक—अष्टमे गुरुदारोक्तिरोषमत्सरतः पुरात्।
निर्गतेन ध्रुवेणाह तपसा तोषणं हरेः॥

दो०—दक्ष यज्ञ की कथा कहि, अठयें श्रीशुकदेव।
ध्रुवचरित्र वर्णन कियो, बिदुर भक्त सुनि लेव॥

मैत्रेयउ॰छ॰—सनकादिहंसरिभुनारदजी, यतिअरुणिआदि गृहत्यागीहैं
नैष्टिक ह्वै उर्द्ध रेता हैं सभी, लव हरिमें परम विरागी हैं ॥१
पत्नी अधर्म की मृषा[१], झूठ माया सुत कन्या उपजाये।
थे निरितिदेव के पुत्र नहीं, इस कारण सुत को ले आये ॥ २
शठता औ लोभ तिस से जन्मे, हिंसा औ क्रोध कटुबचन कली ३
कलिदुरुक्ति से भय मृत्यु भये, तहँ नर्कयातना जोड़ी फली ४
यह अधर्म की सृष्टी हमने, अपने मुख थोड़ी गाई है।
जो तीन बार नर पढ़ै सुनै, सब पाप धोय बह जाई है ॥ ५

दो॰—पुण्य कीर्ति स्वायंभुमनु, हरि के अंश सुजात।
तासु बंश सुत की कथा, कहत जगत विख्यात ॥ ६

छ॰—मनु शतरूपा के दो हैं पुत्र, प्रियब्रत उत्तानपाद भूपति ७
उत्तानपाद के दो रानी, जेठी सुनीति सुरुची प्रिय पति ॥
हैं सुनीति के बेटा ध्रुवजी, सुरुची का उत्तम पुत्र भया। ८
उत्तम को राजा गोद लिये, चहते ध्रुव राजा नाहिं लिया ॥ ९
इच्छा करते ध्रुव को लख कर, यह सौत पुत्र हुंकार भरी।
सुनते हैं राजा भी कहती, जो सुनै तासु हिय छेद करी ॥ १०
बच्चा राजासन योग नहीं, हौ नृप के सुत मुझसे न भये ११
हौ सौत पुत्र नहिं समझ तुम्हें, ये मनोर्थ तुमसे दूर गये ॥ १२

दो॰—तप से हरि आराधि कै, तुम पर होंय दयाल।
मरौ परौ मम उदर में, तब होइहौ भूपाल ॥ १३

मैत्रेयउ॰छ॰—सौतेली मांकी बिधीबात, छुए दंड सांप से फन्नाये।
बोले न पिता ध्रुव रोते हुए, अपनी माता के ढिग आये ॥ १४

१ झुठाई।

बहु लेत श्वांस फर्राते ओठ, ये लख माता सुत गोद लिया।
दासीकेमुखसे सुनीबात, जो कही सौत दुख बहुत किया ॥१५
रोती धीरज को छोड़ बेलि, जिमि दावानल से जल जावै।
बातों को सौत की करे याद, रानी के कमलदृग जल छावै ॥१६
लेती हैं श्वांस नहिं दुःखपार, पाकर बालक से बात कही।
बेटा मत मानो बुरा कहा, निज कर्म भोगता जीव सही ॥१७
सुरुची कहती है सत्य, अभागिन मेरे में पैदा भी हुये।
पी दूध पले मुझको राजा, रानी कहना भी भूल गये ॥१८

दो०—मत्सर छोड़ि सुनो सुवन, सुरुची सांच प्रकाश।
पादपद्म हरि के भजो, जो उत्तमपद आश ॥१९

छं०—जगभावन जिनप्रभुपद्मकमल, भजिपारमेष्ठि पद विधिपाये। २०
बाबा तुम्हार मनु मखकरिकै, जगसुख लहि मुक्तिस्वर्ग लाये ॥२१
उस भक्तवसल हरि का आश्रय, लेने को मुमुक्षू चहते पद।
निज धर्मभाव से अनन्य हो, मनधरि हरि भजते हैं बेहद ॥ २२
उस कमलनैन हरि को तजि कै, दुख दूर करै कोइ नहिं देखूं।
ले कमलहाथ लक्ष्मी ढूढ़ैं, जिह ढूढ़ैं सब मैं हरि लेखूं ॥ २३
मैत्रे०उ०—माताके बचन उपदेशभरे, सुन ध्रुवजी मनमें धीरकिया।
करि प्रणाम माता के पद में, पुर त्यागि रास्ता बनका लिया ॥२४

दो०—सुनि नारद लखि कर्म तस, विस्मित शिर धरि हाथ।
पापविनाशक हस्त निज, दया कीन ऋषिनाथ ॥ २५

छं०—विस्मित क्षत्रीका तेजनिरखि,जो मानहानिनहिं सहसकते।
सौतेलीमां के कठिन बचन, बालक ध्रुव हृदय नहीं रखते ॥ २६
नारदउ०—अपमानऔर सन्मानपुत्र, क्यातुम्हैं अभीखेलनवाले।
करके विकल्प संतोष छुटै, बढ़ मोह कर्मफल पड़ पाले ॥ २८

संतोष करै उतने में पुरुष, जो मिलै भाग से हरिगति लख । २९
मांकीशिक्षा आगे करना, हरिमिलना कठिन लोअभीनिरख ॥३०
सबसंग छोड़ बहु जन्म में मुनि, कर योगसमाधि न लख पावै ३१
लौटो ध्रुव करो न बृथा जिद्द, पीछे भजने से सुख छावै ॥ ३२

दो०—भाग लिखा जो दुःखसुख, आत्मा करि संतोष ।
जगतपार प्राणी लहै, करहु न हिय में रोष ॥ ३३

छ०—गुण अधिकसे सुख छोटेमें दया, सममें मित्रताकिये सुख है ।
जो सीख बड़ों की सुनै नहीं, ध्रुव उसको छन छन में दुख है ॥ ३४
ध्रुवउ०—सुखदुःख तुल्य जिनसंतोंको, समयोग उन्हें न सधै हमसे ।
क्षत्री बालक बिनपढ़े बिधा, दिल मांकी बात बाण गमसे ॥ ३६
उत्तमपद की है चाह मुझे, बतलाओ मुनि नहिं कोई लहै । ३७
ब्रह्मासुत हरि के भक्त, सूर्य सम फिरते जग उपकार चहै ॥ ३८
मैत्रेयउ०—यहसुनकर नारदप्रसन्नहो, कहते हैं ध्रुवपरकरदाया । ३९
नारदउ०—रस्ता हरिभजनेका सच्चा, भजो माता ने जो सिखलाया ॥४०
धर्मार्थ काम अरु मुक्ति, चाहनेवाला हरिपद को सुमिरे । ४१
यमुनातट मधुबन तुम जाओ, जहां रहते सदा हरि हैं नियरे ॥ ४२

दो०—यमुनाजल कल्यानप्रद, प्रतिदिन करि स्नान ।
उचित क्रिया करि फेरि रचि, आसनसुगम विधान ॥ ४३

छ०—करि प्राणायाम तीनइन्द्री, बस मनथिरकर हरि हियलाओ ४४
सुंदर सरूप मुख नाक नैन, भौहैं कपोल हरि अँग ध्याओ ॥४५
है तरुण रूप अतिसुघर ओंठ, हैं लाल शरण्य दयासागर । ४६
श्रीवत्स श्याम बनमालहिये, गदचक्रशंखपंकज कर धर ॥ ४७
कुंडल किरीट कंकण अंगद, कौस्तुभमणि पीताम्बर धारी । ४८

कटि में कांची पगमें नूपुर, हरि शांतरूप दृग मनहारी ॥ ४९
पदमें शोभा नखमणि की है, जन हृदयकमल में ध्यान करै । ५०
युतमंदहसन दृगप्रेमलखन, बरदानी गुनि हरि हिय में धरै ॥ ५१

दो०—सुघर रूप हरिध्यान में, चंचलमन अटकान ।
भयो मगन लौटत नहीं, लपट्यो पद भगवान ॥५२

छ०—भगवते वासुदेवायनमः, यह गुप्तमंत्र नित जप करना ।
जपि सातदिना में बिधि से नर, देखता विमानों का फिरना ॥५३
इस मंत्रसे बनकी वस्तुलाय, हरिकी पूजा विधि अनुसरना ।५४
जलमालफूलफल शुभ तुलसी, वस्तू समर्पि गहि हरि शरना ॥५५
भूमीजल में हरि रूप मानि, पूजै हरि शांति मौन फल खा । ५६
अवतार गहैं माया से प्रभु, कर चरित बहुत धरि मोरपखा ॥५७
जो जो सेवा हरि की लावै, पढ़ि मंत्र मंत्रमूर्तीवाले । ५८
मनवाणी तन से सेवै हरि, करि सदा भक्ति मन नहिं टाले ॥ ५९

दो०—कपट त्यागि जे जन भजैं, भाववश्य हरि जान ।
इच्छा पूरत भक्त की, सब विधि सुनहु सुजान ॥ ६०

छ०—इन्द्री विरक्त करि भक्तियोग, मुक्तीचाहै हरि भजन करै ।
उपदेश लेहु ध्रुवबालक तुम, हो सिद्ध तुरत आवहुगे घरै ॥ ६१
कह धन्य धन्य मेरे गुरु हो, तुम दाया करि उपदेश दिया ।
कितनाही हो गुणवान कोई, बिनगुरू नहीं कोइ पार लिया ॥
विश्वास गुरू के पद में जिन्हैं, वह झट से सिद्धी पाते हैं ।
जिनके दिल में विश्वास नहीं, भटकैं नित धक्के पाते हैं ॥
की बहुत प्रशंसा गुरुकी तहां, करि प्रणाम ध्रुव बन जाते हैं ।६२
बन जाने पर ध्रुवके नारद, महलों में नृपति पहँ आते हैं ॥ ६३

दो०—आसन पूजा करि विविध, मुनि प्रणाम नृपकीन ।
पूंछत नारद रूप लखि, कस हौ आप मलीन ॥ ६४

राजो०छ०—हे मुनिजी मेरा सुतबालक, स्त्रीबस मैं बनवासदिया ।
था पांचवर्ष का मान न पा, अति कवि सुमिरन कर फटै हिया ॥६५
हे ब्रह्मन् अनाथ बालक को, भेड़िया कहीं नहिं खा जावै ।
मुखकमल गया कुम्हला जिसका, भूंखा थकि सोवै जहँ पावै ॥६६
मुझ स्त्रीजित का खोटापन, वह गोद में आता नहीं लिया ।
वह प्रेमभरा मैं प्रेमरहित, यह दुष्टपना धर कर्म किया ॥ ६७

नारदउ०—मत सोचो पुत्रको हे राजन्, ईश्वर उसका रखवालाहै ।
उसका प्रभाव तुम नहिं जानो, जग यश फैलानेवाला है ॥६८

दो०—अति दुष्कर वह कर्मकर, लोकपाल गति नाहिं ।
जल्दी आ तुमसे मिलै, छावै सुयश सदाहिं ॥६९

मैत्रेयउ०छ०—राजाकोऋषिनेसमझाया, तजराजसुरतसुतनितसुमिरत ७०
ध्रुवपहुंच तहां मज्जन शुचिसो, मुनिराहसे हरिसेवामें रत ॥७१
फल कपित्थ बेर तीसरे दिन, खा आत्मबृतिसे हरि पूजे ।७२
गिरेपात घास खा भजनकरैं, छठवेंदिन ध्रुवजी मास दूजे ॥७३
नवयें नवयें दिन जलपीकर, हरि समाधि से कर तिसरापार ।७४
बारवें दिवस वायूखाकर, चौथे में श्वासजित लख हरबार ॥७५
पांचवें श्वासजित ब्रह्मध्याव, एकपदसे खड़ेहो जैसे अचल ।७६
हिय विष्णुरूप लखि औरनहीं, सब ठौरसे खींचा मनचंचल ॥७७

दो०—महत्तत्व आदिक सभी, तिन में पुरुष प्रधान ।
सब त्रिलोक कांप्यो तुरत, ब्रह्म मिले ध्रुव प्रान ॥ ७८

छ०—इक पैर से खड़ा पुत्र नृपका, अंगुष्ठ से दाबा पृथ्वीतल ।
गजमत्त के पग ज्यों धरने से, हिलै छोटी नाव तैसे हलचल ७९

बुद्धी अनन्य से ध्याय विश्व, आत्मा को द्वार तन रोध किये।
भइ बंद श्वास जग लोकपाल, ली हरिकी शरण घबरायगये॥८०
देवाऊ०—चरअचरकेमालिकआपप्रभू, भइश्वासबंदहमनहिं जानैं
दुख से छूटैं सोइ युक्ति करो, हम शरण्य हरिकी शरण ठानैं ८१
श्रीभग० उ०—मतडरोघोरतपसेबालक, मैंरोकदेहुंनिजघरजाओ।
तब रुकी श्वास ध्रुव ममपदमें, किये ध्यान न कुछ भी घबराओ ८२

भजन—परताप भजन देखिये सुजन ॥ टेक ॥
ध्रुव बालक है पांच वर्ष का, हरि भज कँपा दिया त्रिभुवन।
अपनी श्वास रोकली उसने, भये नाकदम सब सुरगन॥ परताप०
नाव कँपै गजमत्त चढ़े ज्यों, त्यों पृथिवी कांपै छन छन।
माधवराम सुराज चहो जो, यही युक्ति से करो भजन॥ परताप०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे अष्टमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे नवमोऽध्यायः।

श्लोक—नवमे तु हरिं स्तुत्वा, लब्ध्वा तस्माद्वरान्ध्रुवः।
प्रत्यागत्या करोद्राज्यं, पित्रा दत्तमितीर्यते॥

दो०—हरि स्तुति वरदान लहि, घर आ कीनो राज।
नवयें में वर्णन करैं, विविध किये ध्रुव काज॥

मैत्रे०उ०—देवता त्यागिभयस्वर्ग गये, प्रभुमधुबन गरुड़सवारी पर।
हरि सहसशीर्षा भक्त लखन, हित गये हृदय में दाया धर॥ १
परिपक्व योग से मति ध्रुवकी, लखैं विज्जुछटा हरिमूर्ति हिये।

भै अंतर्ध्यान ध्रुव नैन खुले, देखा बाहर जो ध्यान किये ॥ २
दर्शन करते हिय प्रेम बढ़ा, दंडवत करी महि शिर धर के।
देखैं दृग से जनु पी लेंगे, मुखसे चूमैं मिलैं भुजभर के ॥ ३
कुछ कहा चहैं ध्रुव हरि समझे, सब हियभीतर हरि बासलिया।
करजोरे ध्रुवके कपोल में, निज शंख वेदमय छुआ दिया ॥ ४

दो०—दैवी वाणी पाय ध्रुव, परात्मनिर्णय लीन।
भक्तिभाव ध्रुवपद चहै, हरि की स्तुति कीन ॥ ५

ध्रुवउ०—जा हियमें मम सोती बानी, हरि शक्तीधर चैतन्यकरी।
पद हाथ कान सब अंग प्राण, जिनसे चेतन है नमः हरी ॥ ६
तुम एक विष्णु निजमाया से, बहुगुणवाली से जग रचते।
अग्नी है बहुत ज्यों काष्ठों में, त्यों सृष्टि में बहुत रूप लसते ॥७
तुव दिया ज्ञान भगवत प्रपन्न[1], पाकर सोते से जगते हैं।
हे आर्त्तबन्धु मुक्ती मिलि है, ज्ञानी जग तज कर लगते हैं ॥८
ठगगई बुद्धि स्वामी उनकी, माया से तुम्हारा भजन करैं।
मुक्तीदायक तुम कल्पबृक्ष, तजि नर्क हेत तन सुखहिं धरैं ॥ ९

दो०—तनुधारी छुट्टी लहैं, कथा सुनैं करि ध्यान।
ब्रह्ममिलैं रतिहोय नहिं, या सुर केर विमान ॥ १०

छ०—हे नाथ संगहो भक्तोंका, निर्मलचित जिनके नहिं बंधन।
छूटते संग से कथा अमृत, करि पान न पड़ते भवफंदन ॥ ११
प्रिय देह नहीं भी वह समझै, सुत मित्र नारि धन क्या तिनके।
हे कमलनाभि हरि तुवपदकी, छुइगै सुगंध दिलमें जिनके ॥१२
कीटादि मनुज सुर दैत्य व्याप्त, संतहु असंत मय जग जानैं।
हो वाद दूर वह ब्रह्मरूप, नहिं जानैं तहँ विवाद ठानैं ॥ १३

1 शरणागत।

कल्पांत में सब निज उदर मेलि, सोते हो शेष के तुम फन पर।
नाभी से कमल तिससे जगहो, दंडवत नाथ तव चरनों पर १४
दो०—नित्य शुद्ध अति बुद्ध तुम, आदिपुरुष कूटस्थ।
बुद्धि अखंडित से लखै, विष्णुयज्ञ मय स्वस्थ ॥ १५
छ०—प्रभु ब्रह्मरूप तुमसे ही अनेकों, विद्याशक्ति निकलती हैं।
हौं शरण रूप उमही की मैं, जिस एक से सृष्टी चलती हैं॥ १६
तुव चरणकमल जो भजै ताहि, सुख राजप्राप्ति दुर्लभ है नहीं।
हे दयासिंधु हम दीनों को, रक्षा करि दीजै मुक्ति सही ॥ १७
मैत्रेयउ०—सच्चेमनसेपढ़स्तुतिहरि,जनपर प्रसन्नहोहरि कहते १८
श्रीभग०उ०—हेराजपुत्रकरतबसमझी, देऊंदुर्लभपदजो चहते १६
नहिं मिला और को ध्रुव प्रकाशपद, ग्रहगण तारा सब तेरे।२०
ज्यों कील पै घूमैं चक्र अग्नि, कश्यप मुनि सब देवें फेरे॥ २१
दो०—राज मिलै पितु जांय बन, छत्तिस वर्ष हजार।
इन्द्रीजित तुम धर्मधर, करौ राजव्यवहार ॥ २२
छ०—भाई की मृत्यु गंधर्बों से सुन, मासी दावानल में जरै २३
करि यज्ञ देइ दक्षिणा भोगि सुख, अंत समै मुझको सुमिरै २४
जाओगे ध्रुव तुम लोक मेरे, नहिं पुनि हो लौटब ऋषि ऊपर २५
मैत्रेयउ०—पूजाले हरिध्रुवसे कहके, चढ़ि गरुड़ धामगेसुखदेकर २६
उत्तमपद का संकल्प किया, हरि चरण सेइ ध्रुव पद पाया।
संकल्प सिद्धप्रद ईश्वर है, घर चले चित्त नहिं हर्षाया ॥ २७
विदुरउ०—दुर्लभ जो परम्पद चरण सेइ, पाये ध्रुव और नहीं पाये।
एक ही देह से सिद्ध भये, इस पर भी क्यों नहिं हर्षाये ॥ २८
मैत्रे०उ०दो०—विमातृ बानी बानसे, बेधि हिया ध्रुव केर।
मुक्ति न मांगी विष्णुसे, सोचत लखि भवफेर ॥२६

ध्रुव उ०छ०—करिसमाधि मुनिसनकादिक भी, नहिंएकदेहसेसिद्धभये।
छैमास में हरिपद मिला हमें, लीनी न मुक्ति हम चूकगये ॥३०
मुझ भागहीन का अनारिपन, देखो हा कैसी चूक परी।
भवनाशकहरि के पद पाकर, पद नाशमान पर आश करी ॥३१
द्रोही देवों ने फेरी मति, नारद की सीख ले भूल गया। ३२
दैवी माया से भेद दृष्टि, भाई के रोग से दुखित भया ॥ ३३
आयू से रहित की जैसे दवा, जगदात्मा जो तप से न मिले ३४
संसार हरन से जग मांगा, हम हीनभाग ऐसे निकले ॥

दो०—स्वराजदाता विष्णु से, मांग लिया जग मान।
क्षीण पुण्य ज्यों दीनजन, लेवै पोले धान ॥ ३५

मैत्रेयउ०छ०—हे विदुर कृष्णपदरज सेवी, जगमेंतुमसेजेहरिजन हैं
नहिं ऋद्धि सिद्धि वे लेहिं कभी, हरिसेवा में उनका मन है ३६
आते सुन सुतको राजा हिय, श्रद्धा न करै मम भाग कहा।३७
सच समझ संदेशी जनको नृप, धनदिया बहुत हिय हर्ष महा ३८
रथ पर सवार हो नृपति संग, द्विज मंत्री औ कुल वृद्ध भले।३६
बाजा गाजा बहु वेद पाठ, हो रहा पुत्र को लेन चले ॥ ४०
लखोहरिकीदयाकायहप्रताप, जिस पितु ने प्रथम अपमान किया
वह प्रेम भरे निज सुत बिछुरे को, मिलन चले अति विकल हिया

दो०—सुरुचि सुनीती मातु दोउ, चढ़ी चलीं सुखपाल। ४१
बनसे आवत निरखि नृप, उतरे रथ भूपाल ॥ ४२

छ०—मुख चूमि खुशी नृप गोदीले, ध्रुवको हरि जिसके पापहरे।४३
सूंघा मस्तक दृग आंसू से, स्नान करा नृप प्रेम भरे ॥ ४४
पितुपद नतिकर आशीष लह्यो, दोनों मातापद शीशधरे। ४५

पदनमितपुत्र को सुरुचि उठा, गोदीले जिश्रौ कहि नैन ढुरे ॥ ४६
जिस पर प्रसन्न भगवान भये, सब प्रसन्न उस पर हो जावै।
आपहि नीचे को जल बहता, ऊपर से कोई ढरकावै ॥ ४७
ध्रुव उत्तम प्रेमसे बंधु मिले, आंसू की धार बह मिलने पर। ४८
माता सुनीति ने दुख छोड़ा, प्यारे सुत को गोदी लेकर ॥ ४९

दो०—दूध बहे उर मातु के, दृग सों आंसू धार।
दोनों से नहवावती, गोदी लिये कुमार ॥ ५०

छं०—धन धन रानी धन बालक को, सब लोग प्रशंसा करते हैं।
जो ऐसे मां बेटे जग हों, सब काज सधैं भव तरते हैं ॥ ५१
भुवमंडल पति ध्रुव हरिपूजे, जीते हैं मौत हरि पूजा कर। ५२
हथिनी पै चढ़ा दोनों भाई, करैं लोग प्रशंसा आये घर ॥ ५३
मणि मोती के तोरण बांधे, केले के खंभ सुपारी हैं। ५४
तहँ आम्रपत्र के बन्दन हैं, धरे द्वार कलश अति भारी हैं ॥ ५५
प्रज्वलित दीप गोपुर प्रकार, पर कलश पताक ध्वजासोहैं। ५६
चौराहा मार्ग चंदनजल से, छिड़के अंकुर मुनि मन मोहैं ॥५७

दो०—सजा नगर लाये ध्रुवहिं, लै मंगल पुरनारि।
सरसौ अच्छत दूब दधि, करहिं निछावर वारि ॥ ५८

छं०—देतीं अशीष चिरजियौ लाल, गाती हैं गीत ध्रुव घरजाते।५९
मणिमय घर में सुख से बसते, पितुसे लालित सुरसुख पाते ॥६०
शय्या हैं दूध फेन आसन, बहु मोल सुवर्ण जड़ाव जड़े। ६१
स्फटिक दीप मरकत मणि के, ललना मूरति लै हाथ खड़े ॥६२
रमणीक बाग सुरद्रुम सोहैं, गुंजरित भ्रमर खग बोल रहे। ६३
मणिजटित बावली खिले कमल, हंसादिक तट आनंद लहे ॥६४

उत्तानपादनृप सुतप्रभाव लखि, विस्मय मानैं खुश मन में ।६५
सुतयोग देखि सब प्रजा चहैं, नृप राज दिया चितदै बनमें ॥६६

दो०—बृद्ध निहार शरीर नृप, बन गे मन वैराग ।
भजिहरि तनतजि हरि लह्यो, धनि भूपति बड़भाग ॥

भजन दादरा—जगत महँ सुजन लखो यह सार ।
नरतन पाय भोगि दुखसुख सब, अंत न होवै हार ॥ टेक ॥
बालकपन खेलन में बीतो, ज्वानी बहु ब्यौपार ।
बृद्धापन धन छन छन चाहत, लालच बढ़ो अपार ॥ जगत० ॥
हीरा हाथ गवाँय हाय करि, खात यमन की मार ।
माधवराम ध्रुवनृप की सीखो, भव से बेड़ा पार ॥ जगत० ॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे नवमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे दशमोऽध्यायः ।

श्लोक—दशमे भ्रातृहंतृणां यक्षाणामकरोद्वधम् ।
एकमेवालकांगत्वेत्यस्य विक्रम उच्यते ॥

दो०—यक्षोंको वधि रण किया, जिन भाई कहँ मार ।
अलकापुरी प्रयाण सब, दशवें महँ विस्तार ॥

मैत्रेयउ०छं०—शिशुमार प्रजापति कीकन्या, ब्याहीध्रुववत्सरकल्पभये।१
वायू की कन्या इला, दूसरी नारि में उत्कल जन्म लये ॥२
भाई उत्तम बिन ब्याह गये बन, यक्षों ने उसको मारा ।
माता सुरुची करि शोक मरी, माता को पुत्र होता प्यारा ॥३

भाई का वध यक्षों से सुन, गये यक्षपुरी ध्रुव रथ पै चढ़ ।४
उत्तर दिशि शिवगण से सेवित, हिमवान कन्दरा देखी बढ़ ।।५
किया शंखशब्द सबदिशिमें पूर, घबराय यक्ष यक्षिनी डरीं ।६
वह सह न सके सब निकले पड़े, अस्त्रों को लिये सेना गहरी ।।७

दो०—यक्षन अस्त्र लिये निरखि, तीन तीन ध्रुव बान ।
महारथी इक इक हने, एकहि साथ निदान ।।८

छ०—शिरबिधे निरखि बानों से यक्ष, अपमान निरखि नहिं कर्म सहे ।९
ज्यों पद से छू जाता है सर्प, अस्त्रप्रहार करैं क्रोध गहे ।। १०
निः त्रिंश प्रासशक्ती त्रिशूल, अति अस्त्र बान बहुविधिमारे।११
बर्षा सी रथ पर बर्ष रहे, तेरह हज़ार रण ललकारे ।। १२
शस्त्रोंवर्षा से छिपा सुरथ, ज्यों धूलि से गिरि नहिं ध्रुव ऊबे ।१३
छिपगये सिद्ध करैं हाहाकार, यक्षहि समुद्र ध्रुव रवि डूबे ।। १४
गर्जते यक्ष रणमें जय लहि, कुहरे से सूर्य ज्यों रथ निकला ।१५
टंकोरि धनुष शत्रू दुखदे, बाणों से लिया बदला पिछला ।। १६

दो०—ध्रुवशर निकरे चापसे, कवचैं रिपु की फारि ।
देह माहिं प्रविशे सबै, गिरि ज्यों वज्र विदारि ।।१७

छ०—कुंडलों सहित शिरगिरैंलगे, पगतालसरिस भुजअस्त्र लिये।
आभूषण क्रीट मुकुट बहुधन, जनु सोहमही शृङ्गार किये ।।१६
मरने से बचे रण में जे यक्ष, बाणों की मार से तितर बितर ।
सब अंग भंग भागे रन से, जिमि सिंहनाद बनजीव न थिर।।२०
रण में नहिं कोई देख पड़ा, करैं पुर प्रवेश फिर नहीं गये ।
मायावीयक्ष माया न करैं, यह करतब उनकी गुनत भये ।।२१
सारथी सहित रथ पर बैठे, देखैं बैरी क्या करते हैं ।

तैसे ही धूर बहु उड़न लगी, जनु सिंधु से मेघ घुमड़ते हैं ॥ २२

दो०—बादल घिरि आये गगन, तड़पैं बिजुली जोर । २३
रुधिर मूत्र विष्टा बरषि, गिरैं कबंध न थोर ॥ २४

छं०—आकाश से पर्वत परैं टूट, मूशल त्रिशूल बहु अस्त्र गिरैं २५
फन्नाते सांप दृग वर्षि आग, गजमत्त सिंह व्याघ्रहू घिरैं ॥ २६
उमड़ै है सिंधु बढ़ि कहर लहर, कल्पांत समय सा लख आवै ।२७
भयदायक ऐसी बहु माया, हो रही प्रगट हिय घबरावै ॥ २८
यक्षों ने माया ध्रुव पै करी, सब मुनि आ कुशल मनाते हैं ।२९
मुनयऊचुः—हे हरि ध्रुव धनु सारंग धरै, रण हनै शत्रु जे आते हैं ॥
जिसप्रभुका नाम सुन मुंहसे कहि, गुन गान मनुज जे गाते हैं ।
संदेहरहित सुख लहि जग में, दुस्तर मृत्यू तर जाते हैं ॥

दो०—ध्रुव से मुनि सब कहत हैं, लेहु नरायणअस्त्र ।
अबहिं सबै माया नशै, मलविहीन ज्यों वस्त्र ॥

भजनतिताला—नामनरायण सबसुखदायक, जोनर मुखसे गाते हैं॥
लेहु विचार सुजन हिय अपने, सब दुख तुर्त नशाते हैं ॥ १
अजामील पापी और सुरापी, अंत दूत यम आते हैं ॥ २
नाम नरायण मुखसे पुकारै, हरि पारषद बचाते हैं ॥ ३
तैसेहि अस्त्र नरायण रणमें, जो धनुतानि चलाते हैं ॥ ४
विपति बिलाय जाय तेहि क्षणमें, ध्रुवको ऋषी सिखाते हैं ॥५
माधवराम रण विजय नाम से, लहि भवफंद मिटाते हैं ॥ ६

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे दशमोऽध्यायः

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकादशोऽध्यायः ।

श्लोक—एकादशे तु यक्षाणां, क्षयं दृष्ट्वा मनुः स्वयम् ।
आगत्य वारयामास ध्रुवंतत्वोपदेशतः ॥

दो०—एकादशमें यक्षक्षय, लखि मनु आये पास ।
तत्वज्ञान उपदेश करि, दीनो ध्रुवहिं सुपास ॥

मैत्रे०उ०छ०—मुनियोंके मुखसेसुनिध्रुवजी, नारायण अस्त्र चढ़ायाहै।१
ज्यों ज्ञान उदय से क्लेश नाश, होते यों नाशी माया है ॥ २
नारायण अस्त्र चढ़ा धनु में, कलहंसपक्ष शर चट निकले ।
यक्षों की फौज में घुसते हैं, ज्यों मोर शोर करि बनमें चले ॥३
पैनेबाणों से बिधे यक्ष, व्याकुल ध्रुव पर सब धाये हैं ।
फन तान सर्पगण क्रोधभरे, ज्यों गरुड़ से लड़ने आये हैं ॥ ४
आते लखि यक्षों को बाहू, शिर पैर पेट बिन प्राण किये ।
पहुंचाय दिये सब सूर्यलोक, जहँ जाते योगी योग लिये ॥ ५

दो —यक्ष मारते जब लख्यो, आये मुनिन समेत ।
कृपा करी ध्रुवपै मनू, बचन कहे करि हेत ॥ ६

मनुरु०—बसकरो पुत्र अब गुस्सा से, अपराधबिना इनको मारा ।७
यह निंद्यकर्म कुल योग नहीं, यक्षों का बध तुमने धारा ॥ ८
किया एकने मारे गये बहुत, बदले में भ्रातृ प्रिय से रनमें । ९
हरिभक्त सुजन की यह न राह, लड़ैं मान भरे पशुवत मनमें ॥१०
सब जीव बास हरि भाव किया, हरि सेवा करि ध्रुव पद पाया ।११
हरिध्यानीभक्तों के सेवी, सत ब्रत मन निंद्यकर्म लाया ॥१२

मित्रता तितिक्षा[1] दया किये, जीवों पर ईश्वर खुश होवै। १३
हरि प्रसन्न जब गुणछुटै तभी, ह्वै मुक्त जीव ब्रह्महि जोवै ॥ १४

दो०—पांच भूत से नारि नर, तिनसे कन्या पूत। १५
गुणसे ह्वै नाशै जगत, परमात्मा अनुस्यूत[2] ॥ १६

छं०—कहने भरको प्रभुसाक्षी है, चुंबक से लोह त्यों घूमै जग। १७
ईश्वर गुणप्रवाह शक्तिकाल, से काम होंय सब अलग अलग ॥
कर्ता है अकर्तापन उसमें, हंता औ अहंता आव न लख। १८
वह काल अनादि जगतनाशक, जनसे उपजावै मौत निरख ॥ १९
नहिं अपन पक्ष नहिं गैर पक्ष, मारै उपजावै समता धर।
वायू सम धावत कालरूप, सँग उड़ै जीव रज तुल्य अधर ॥ २०
आयू के नाश बढ़ाने से वह, रहित प्रभू तन में साखी। २१
कोइ कर्म स्वभावहु कर्म कहैं, कोइ कालदैव निज रुचिभाखी ॥२२

दो०—नाप नहीं अव्यक्त की, नाना शक्ती धार।
जन्म न ले करतब करै, सकै न लखि तेहि कार ॥ २३

छं०—नहिं यक्षों ने भाई मारा, प्रारब्ध स्वभावहि कारण है। २४
पैदा पालन औ नाश करै, हंकार से दुख सुख धारण है ॥ २५
भूतात्मा जीव से जीव रचै, माया से पालै मारै है। २६
उस मौतरूप औ अमृतरूप की, शरण संतजन धारै हैं ॥
ज्यों नाकबिधे पशु बेबस हैं, यों लोकपाल सेवा करते। २७
तुम पांचवर्ष के मातु छोड़, सौतेली मां की सिख धरते ॥
बन जाय तपस्या करिके लिया, त्रैलोक से उत्तमपद पाया। २८
तजि बैर देह से ध्याव उसे, निर्गुण अक्षर नहिं लख आया ॥

[1] दुःख सहन। [2] पोहा है जैसे माला में डोरा।

दो०—मुक्त आत्मा को करहु, आत्महि माहिं निहारि।
भेद किये ते जग बने, भ्रमैं जीव हो हारि ॥२९

छं०—वह पृथक रूप भगवत अनंत, आनंद मात्र सब शक्ति धरे।
मैं मोर ग्रंथि तुम ध्रुव खोलहु, भक्ती करि जपि मन हरे हरे ॥३०
करो दूर क्रोध हो भला पुत्र, औषध से रोग ज्यों जाते हैं ।३१
नहिं क्रोध के बश होवै ज्ञानी, जिससे सब जन घबराते हैं ॥३२
अपराध किया है कुबेर का, बिन कसूर यक्षों को मारा। ३३
करो प्रसन्न जल्दी स्तुति कर, सतपुरुष तेज नहिं कुलजारा॥ ३४

दो०—स्वायंभू मनु ध्रुवहि कहि, मुनिन सहित हर्षाय।
चले ध्रुवौ स्तुति करी, चरणों शीश नवाय॥ ३५

भजन—बड़ों की सीख सुखदाई, जो अपने दिल में लाते हैं।
डूबती नाव अपनी वो, पार झट से लगाते हैं॥ टेक॥
गुरू माता पिता आज्ञा, बिचारे बिन करैं शिर धर।
कठिन है गर बहुत पहले, अन्त में सिद्धि पाते हैं॥१॥
रामजी पितुबचन माना, गये बन राजतज खुश हो।
राज सारा मिला उनको, सुयश सुर सिद्ध गाते हैं॥२॥
मातु आज्ञा धारि ध्रुवजी, भजन छै मास ही कीना।
राज ध्रुवपद मिले दोनों, हरी दर्शन दिखाते हैं॥३॥
गुरू का हुक्म माधवराम, करके हर तरह जांचा।
किसी लायक न होने पर, सभी लायक कहाते हैं॥४॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकादशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषा सरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे द्वादशोऽध्यायः

श्लोक—द्वादशे धनदेनाभिनंदितः पुरमागतः ।
यज्ञैरिष्ट्वा हरेः स्थानमारुरोहेति कीर्त्यते ॥

दो०—कुबेर से बरदान ध्रुव, लै पुनि गृह में आय ।
यज्ञ किये हरिधाम गे, बरहें में यह गाय ॥

मैत्रेयउ०छ०—हिंमा से हटे तज दिया क्रोध, ध्रुवको लखके कुबेर आये ।
स्तुति करते चारण किन्नर, देखे ध्रुव झट पद शिर नाये ॥१
धनदउ०—हौं क्षत्रीसुत तुम पर प्रसन्न, बाबा के बचन से तजा वैर ।२
यक्षों ने भाई तुमने उन्हें, मारा करता जग काल शैर ॥३
मेरी तेरी अज्ञान बुद्धि, है स्वप्न तुल्य सुखदुखबन्धन ।४
ध्रुव जाव भजो भगवान, सर्वघटबासी व्यापक जगबन्दन ॥५
भवछूटै पद भजि मुक्ति होय, माया से रहित मायाधारी ।६
इच्छित वर ध्रुव मांगो हमसे, हरिभक्त आप हैं अधिकारी ॥७
मैत्रेयउ०दो०—धनपति कह बरदान लो, ध्रुव हरिभक्त सुजान ।
अचलभक्ति हरिपद लही, भवतर होवै ज्ञान ॥८
छ०—हो प्रसन्न भक्ती दृढ़सुमिरन, दे गये धाम ध्रुव आये हैं ।९
किया राज यज्ञ दक्षिणा बहुत, दी देव कर्मफल पाये हैं ॥१०
सर्वात्मा हरि में तीव्रभक्ति, करि जीव जीव में ईश लखैं ।११
ब्रह्मण्य शीलसंपन्न दीनवत्सल, पितुसम रैयत निरखैं ॥१२
छत्तिस हजार करि वर्ष राज, भोगों से पुण्य योगोंसे पाप ।१३
कृत यज्ञ महात्मा इन्द्रीजित, सुत को सौंपा नृप आसन आप ॥१४

माया से रचित जगमान स्वप्न, गंधर्वनगर सम लख आवै ।१५
तन स्त्री सुत औ मित्र सुहृद, बहु विचित्रता सब दिखरावै ॥
दो०—फौज खजाना बाग पुर, जग सुख सकल विभाग ।
त्यागि बद्रिकाश्रम गये, भजन माहिं मन लाग ॥१६
छं०—तहँ शुद्ध हृदय गंगा नहाय, दृढ़ आसन इन्द्रीजित मन बस ।
पहले विराट हरिरूप निरखि, करी सूक्ष्म समाधी तजि सर्वस ॥१७
हरि में दृढ़ भक्ती ठान नैन में, प्रेम भरे जल धार चले ।
पुलकितअति रोम खड़े नहिं सुधि, तन मुक्त लिंग हरिभक्त भले ॥१८
आते विमान लखि ऊपर से, दश दिशि प्रकाश शशि उजियारी १६
दो पार्षद चारि भुजा धारे, हैं कमलनैन कुंडलधारी ॥२०
सब शोभा लखि पार्षद जाने, करि प्रणाम हाथ जोरि मनसे ।२१
हरिभक्त नम्र हरिमें चित लखि, नंदहु सुनंद बोले जनसे ॥२२
सुनंदनंदावू० दो०—ध्रुवजी तव कल्यान हो, सुनो हमारी बात ।२३
हम पार्षद तुम्हें लेन को, आये हरिपुर तात ॥ २४
छं०—दुर्जय हरिपद तुमने जीता, मुनि सातों जिसे न पाते हैं ।
रवि चन्द्र ग्रहादिक जिस पदकी, हरदम फेरी फिर आते हैं ॥२५
नहिं पिता पितामह पाये हैं, नहिं कोई विष्णुपद यह पावैं ।२६
यह हरि विमान भेजा तुमको, चढ़ि चलौ विष्णुपद पहुंचावैं ॥२७
मैत्रेय उ०—पार्षदों की बात सुनी ध्रुवने, भगवतका संदेशा हरिप्यारे
करि मंगल शुभ स्नान, मुनिन कहँ प्रणाम शिर अशीष धारे २८
पार्षद प्रणाम पूजा कीनी, जब ध्रुव विमान पै चढ़न चले । २६
लखि समीप में मृत्यू को तभी, धरि शीश पैर ह्वै दिव्य भले ३०
दो०—शंख दुन्दुभी बजि रहे, बर्षि पुष्प गंधर्व ।
गावत गीत अनन्द ह्वै, मुदित मंडली सर्व ॥ ३१

छं०—ध्रुव चले याद करते मां की, निष्पाप मातु मम वहीं रही ३२
पार्षद ने चढ़ी विमान जाय, झट दिखाय दी तब खुशी लही ३३
सब देवो देव प्रशंसि तिन्हैं, फूलों की वर्षा करते हैं। ३४
सुर मुनिनलोक के ऊपर जा, पहुंचे हरिपद सुख भरते हैं॥ ३५
अपने प्रकाश से प्रकाश वह, त्रैलोक प्रकाश लहै जिससे।
नहिं जीव कोइ जा सके तहां, हरि भजैं भक्त शोभित तिससे ३६
जे शांतचित्त समदृष्टि शुद्ध, सब सुखद जाहिं हरिभक्त तहां। ३७
गये भक्त पुत्र उत्तानपाद, ध्रुव चूड़ामणि त्रैलोक जहां॥ ३८

दो०—ज्योतिष चक्र गंभीर बल, जिमि पशु कीली पास। ३९
फिरैं कहैं नारद सुयश, वरुण सभा में जास॥ ४०

नारद उ०—देखो सुनीति पतिव्रतानारि, केसुतकासुंदरयहतपफल
मुनि वेदपाठ करनेवाले, पहुंचैं न तहां नृप क्या कम बल॥ ४१
सौतेली मां के बचनबाण से, बिधा चित्त बन तप में हिया।
मेरी आज्ञा मानी जिसने, भक्तों से जित हरि सुपद लिया ४२
क्या कोई क्षत्री बहुत वर्ष में, ध्रुवपद तप कर चढ़ सकते।
ध्रुव पांच वर्ष छः मासहि में, लै उत्तमपद हरि कहँ लखते॥ ४३
मैत्रेयउ०—हेविदुर कहा ये ध्रुवचरित्र, जो पूंछातुम भक्तों संमत ४४
धन आयु सुयश कल्याण पुण्य, देवै सुरपुर दुख हरै बिपत ४५

दो०—श्रद्धा भक्ति से सुनहि जो, ध्रुवचरित्र मन लाय।
भक्ति होय हरिपद विमल, जगतजाल छुटि जाय॥ ४६

छं०—जे चहैं महत्पन सुनि सब गुण, तेजस्वि तेजलहि मानिहु मान ४७
विप्रों की सभा में गाके इसे, प्रातहू सांझ ध्रुवचरित सुजान ४८
द्वादशी अमावस पूर्णमास, रविदिनहु श्रवण संक्रांतिहु पात ४९
हरिभक्त चरित्र पढ़ै औ सुनै, हो आतम सिद्ध बहु करामात ५०

अज्ञान तत्व कहँ ज्ञान देत, सुनि अमृत प्रसन्न होंय सब सुर ५१
ध्रुवचरित कहा हम तुमसे सब, क्रीड़ा तजिभजि पहुंचे हरिपुर ५२
भजन—भजन गति है सब में परधान ।। टेक ।।
तप जप पूजा पाठ समाधी, बहु विधि वेद विधान ।। भजन०
करत भरत फल मरत तरत नहिं, लगै न ठीक ठिकान ।। भजन०
निजनिजमतकीयुगतिसुगतिहित, सबकोउ तानततान।।भजन०
पर्वत खनत लहत लघु मूसरि, होत बृथा हैरान ।। भजन०
माधवराम रट हठ शठता तज, भज मिलिहैं भगवान ।। भजन०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः

श्लोक—तत्र त्रयोदशे वक्तुं पृथोर्जन्म ध्रुवान्वये ।
अङ्गो वेनपिता पुत्रक्रौर्याद्गत इतीर्यते ।।

दो०—पृथुराजा ध्रुववंश में, होइहैं बहु विख्यात ।
अंग बेनकी क्रूरता, लखि गये तेरहें ख्यात ।।

सूतउ०छ०—मैत्रेयसे सुनि ध्रुवकीयात्रा, हरिभक्त विदुरफिरप्रश्नकिया।१
विदुरउ०—है कौनप्रचेता किसके पुत्र, किसबंशमें कैसेयज्ञलिया।।२
नारद हरिभक्त दिव्य दर्शन, हरि पूजन विधिका योग कहा ।३
हरिभक्त प्रचेतों से पूजित, हरि भज्यो मुनी उपदेश गहा ।। ४
जो जो नारदजी कथा कही, मैं सेवक मुझे सुना दीजै ।
दोनों हरिभक्त प्रचेता मुनि, सत्संग सुना कृतार्थ कीजै ।। ५

मैत्रेयउ०—ध्रुवसुत उत्कलहै बड़ा, पिताके बन जानेपर राज न की ।६
निःसंग शांत समदर्शी वह, जगमें आत्मा आत्मा जग को ॥ ७

दो०—आत्मा ब्रह्म मुक्त है, भेदरहित विज्ञान ।
एक आत्मरस सुखमयी, व्याप्त सकल महँ मान ॥ ८

छ०—अछिन्नयोगसे हृदय शुद्ध, थिर आत्मातजिनहिं और लखैं ।९
जड़ अंध बधिर गूंगे से रहैं, बालकगति शांतरूप निरखैं ॥ १०
जड़मत्त जानि कुलबृद्धों ने, भ्रमि सुत वत्सर को राजदिया । ११
छः पुत्र भये स्ववींथी में, पुष्पार्ण आदि शुभनाम किया ॥ १२
पुष्पार्ण की दोषा प्रभानारि, प्रात[१]र्मध्यान्ह[२] प्रभाके साम[३] । १३
दोषा के व्युष्ट निशीथ प्रदोष, पुष्करिणी व्युष्टसुत चचु नाम ॥१४
आकूति चचु से मनु पैदा, मनु विरजा से छः पुत्र भये ।
यह ध्रुवजीका है बंश विमल, नृप होय करैं यश नित्त नये ॥ १५

दो०—पुरु कुत्सहु त्रित द्युम्न अरु, सत्यवान ऋत जान ।
अग्निष्टोम अतिराच शिवि, प्रद्युम्नोल्मुक मान ॥ १६

छ०—उल्मुक पुष्करिणीसे छः सुत, गयअंग सुमनक्रतु अंगिराख्याति। १७
नृप अंग सुनीथा सुतहै बेन, जिससे दुखपाय पिता बन जात ॥१८
ऋषियों ने बेन को शापदिया, मृत शरीर उसका मथन किया ।१९
बिन राजा लूटैं चोर सबहिं, हरि अंश पृथू अवतार लिया ॥ २०
विदुरउ०—शुभशीलसाधुद्विजसेइअंग, सुत दुष्ट भया क्यों बनहिं गये २१
अपराध किया क्या बेन भूप, धर्मात्मामुनि जेहि शाप दिये ॥२२
नहिं प्रजा भूप को अपमानै, सब लोकपाल का अंशधरैं । २३
यह चरित बेनका कहियेमुनि, हम श्रद्धाभक्तिसे श्रवणकरैं ॥२४
मैत्रेयउ०दो०—अश्वमेध मख अंग करि, सुर नहिं लेवैंभाग । २५
चरितमुनिन नृपसों कह्यो, शुद्ध अहै नृपयाग ॥२६

छं०—सब शुद्ध हवी श्रद्धा से दीं, सब मंत्र शुद्ध पढ़ पढ़ देते। २७
नहिं जानै क्या अपराधभूप, नहिं यज्ञभाग सब सुर लेते ॥ २८
मैत्रेयउ०—नृप उदासहो आज्ञा लेकर, इसका कारण पूँछनेलगे। २९
नहिं आते सुर लेते न भाग, कहिये मुनि कैसे कर्म जगे ॥ ३०
सदस्पतयऊचुः—हेनृप इस तनका पापनहीं, है पूर्वपापसुततेरे नहीं। ३१
पुत्रेष्ठी यज्ञ करौ पहले, हरि प्रसन्न हो सुत देंय सही ॥ ३२
तब यज्ञभाग सुर लेवैंगे, पुत्रेष्ठी यज्ञ हरि हेत करौ। ३३
सब करैं कामना पूर हरी, फल देकै जैसी भक्ति धरौ ॥ ३४
दो०—नृप सुतहित द्विज सोचि सब, देत हरिहिं मखभाग। ३५
स्वर्णमाल निकस्यो अनल, खीर लिये अनुराग ॥ ३६
छं०—द्विजसलाह से नृपसूंघि दई, रानी को गर्भ उसने धारा। ३७
पुंसवन खीर से समय पाय, राजा के भया सुत कुल प्यारा ॥ ३८
बालकपन ही से नाना को, सुत पड़ा अधर्मी मृत्यु रहे।
मृत्यू की सुनीथा बेटी थी, सुत बेन अधर्म कुकर्म गहे ॥ ३९
ले धनुषबान खेलै शिकार, सब जीवों को दुख देता है। ४०
खेलते संग बालकहु बृन्द, तिनके भी प्राण हर लेता है ॥ ४१
लखि दुष्टपुत्र नृप शिक्षादी, भये उदास पितु सुत नहीं सुनै। ४२
सुत हेत बृथा नर सेवैं हरि, हो दुष्टपुत्र दुख हिय न गुनै ॥ ४३
दो०—दुष्ट कीर्ति बहु अधर्म महि, आधिहु बहुत विरोध। ४४
पुत्र नाम बंधन जगत, गृह दुख बुध नहिं सोध ॥ ४५
छं०—सुत अच्छेसे भल दुष्टपुत्र, होवै विराग घर छूट फिकर। ४६
यह शोच नृपति निशिमें चलिभे, सोती रानी तजिके बाहर ॥ ४७
गे भूप पुरोहित मंत्रिमित्र, ढूंढैं न लखे ज्यों कुयोगि हरि। ४८
नहिं लखिनृप पुरमें आये लौट, मुनियोंसे कहा दुख आंसू भरि ४९

दो०–बिना भूप नहिं राज हो, बढ़ै उपद्रव देश ।
पुत्र कुटिल यद्यपि अहै, कीने बनै नरेश ॥

भजन दादरा–सुजन लखो सुखमें भाग प्रधान, बृथाहोत हैरान ॥
सुख के हेत उपाय करैं सब, फिरि फिरि दुख लपटान ॥ सुजन०
पुत्रन के पीछे पागल जग, ठानत विविध बिधान ॥ सुजन०
संग रहे पितुमात फिकिर मरैं, बिछुरे व्याकुल प्रान ॥ सुजन०
यही दशा तिय गेह नेह धन, करि लो ठीक ठिकान ॥ सुजन०
माधवराम आनंद भजन करि, जाय मिलहु भगवान ॥ सुजन०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्लोक–चतुर्दशे तु दुष्पुत्रभयादङ्गे गते द्विजैः ।
अभिषिक्तस्य वेनस्य रोषात्तैर्वध उच्यते ॥

दो०–चौदहमें बन अंग नृप, राज लह्यो सुत बेन ।
लखि कुचाल मानी न सिख, शाप मुनिन मिलिदेन ॥

मैत्रेयउ०–भृग्वादि मुनी जगहित दर्शी, भये दुष्ट भूप पशु समताल लखि ।१
माता से पूछि किया नृपति बेन, है प्रजा दुखद नहिं और निरखि २
सुन चोर बेन भूपति का राज, अहि भय से मूस त्यों छिपे तहां ।३
नृप गद्दी पाई दुष्ट बेन, अपमान सतपुरुष करै महा ॥४
निरअंकुश मत्त हाथी सा बेन, पृथ्वी कांपै रथ चढ़ि डोलै ।५
द्विज यज्ञ दान नहिं हवन करो, भेरी बजाय आज्ञा बोलै ॥६

यह दुष्ट बेन का लखि विचार, करि कृपा मुनी सब सोचि रहे ।७
दोनों प्रकार से जग को दुख, नृप चोरसे कृमि ज्यों काष्ठदहे ॥८

दो०—नृपतिहीन पृथ्वी निरखि, दीन बेन कहँ राज ।
भयदायक सब को हुआ, दुहुं विधि भयो अकाज ॥६

छं०—पालकहि दुखद पी दूधसर्प, त्यों पुत्र सुनीथा बेन असत १०
ह्वै प्रजापाल भक्षक है प्रजा, समझावैं हम हो नहिं अवगति ११
समझाने पर हम सबकी सीख, नहिं मान कुकर्महिं फेर करै १२
जग धिक्कारित को भस्म करै, मुनि गूढ़ क्रोध सब गमन धरै १३
मुनय ऊचुः—नृपश्रेष्ठ हमारीबात सुनो, श्रीआयुकीर्तिबलबढ़जिससे १४
मन वाणी देह से किया धर्म, हरि प्रसन्न हों जगसुख इससे १५
वह धर्म आप से नाश न हो, जब पुण्य नाश भया दुखदाई १६
चोरहु कुराज्य से रक्षि प्रजा, भूपतिहि लोक दोउ सुखदाई १७

दो०—जिस भूपति की राज में, वर्णाश्रम के धर्म ।
नित हरि पूजहि प्रजा सब, करि निजजातिहिकर्म ॥१८

छं०—तिसराजापरभगवानखुशी, विश्वात्माहरि सबजगभावन १६
हरि प्रसन्नता से क्या दुर्लभ, सब लोकपालपूजित पावन ॥ २०
उस यज्ञरूप हरि तपोमयी, अरु द्रव्यमयी हित यज्ञ ठान ।
सबप्रजा करै पूजामखनित, तिन्हें रोकोमत हे भूप सुजान ॥२१
ब्राह्मण इस राज तुम्हारी में, करि यज्ञ विष्णु पूजैं सुर सब ।
हो प्रसन्न काम सभी पूरैं, हे बीर न रोको यह करतब ॥ २२
बेनउ०—हो बालक धर्म अधर्म गुनौ, निजपतिहि त्याग परपति सेते। २३
जे मूर्ख भूप हरि नहिं जानैं, ते दोनों लोक में दुख लेते ॥ २४

दो०—यज्ञपुरुष केहि नाम है, कैसी ताकी भक्ति ।
पतिहि त्यागि परपति भजे, नारि लहैं किमि मुक्ति ॥ २५

छं०—विधि हरिहर इन्द्रवायु यमरवि, शशि धनद इन्द्रमहि वरुण अनल ।२६
वर शाप देनवारे सुर ये, नृप देह बसैं नृप पूज्य सकल ॥ २७
तजि मत्सर मुनि पूजौ हमको, दो भेट कहां हमसे बढ़ि हरि ।
मैं अग्रभोक्ता सब में हूं, सुख पाओगे मम पूजन करि ॥ २८
मैत्रेयउ०—नृप कुमतिगही चलताकुपंथ, समझाये भी नहिं माना है ।२९
पंडितमानी से अपमानित, मुनि क्रोध हिये बिच ठाना है ॥३०
मारो मारो यह पापी दुष्ट, हुं भस्म हो जा जग नाश करै । ३१
नहिं नृप गद्दी के लायक यह, हरिनिंदा अपने मुख में धरै ॥३२

दो०—हरिनिंदा को करहि जग, बेन नृपति कहँ छोड़ ।
अस उत्तमपद प्राप्तह्वै, लियो भजन मुख मोड़ ॥ ३३

छं०—यह निश्चित मुनि हैं प्रगटकोप, हरिनिंदासे मृतको मारा।३४
गये मृतक पुत्र तन माताने, किया युक्तिसे पालन निस्तारा ॥ ३५
मुनि एक समय स्नान किये, करि हवन सभी सत्संग करैं ।३६
बहु होत उपद्रव भयदायक, लूटते चोर सब जगह फिरैं ॥ ३७
दौड़ते देखि मुनि सोचैं फिर, डाकुओं कि रज बहु छाई है । ३८
है महा उपद्रव नृप के मरे, धरि एक एक कहँ खाई है ॥ ३९
बलहीन भूमि भे चोर बहुत, मुनि लखैं सकैं नहिं करि लालन ४०
शमदर्शी द्विज हैं शांतरूप, घट तेज न हो नृप बिन पालन ४१

दो०—बिना अंगबंशी नृपति, राज लहै अब कौन ।
बली भक्त नृपबंश यह, शून्य नृपति बिन भौन ॥ ४२

छं०—यह सोच मुनीश्वर मृतक देह, गहि मथैं पैर भे बाहुकनर ४३
कारो लघु अंग छोट बाहू, लघु पद आदिक कुबेष धर कर ४४
क्या करैं दीन हो कहे वो नर, मुनि निषीद[1] कहते भया निषाद ४५

---

[1] बैठो ।

गिरि औ बनवासी निषाद भे, निकला नृपपातक मिटा विषाद ४६

दो०—ईश्वर बड़े दयालु हैं, मानैं द्विज की बात।

आप भूप ह्वै प्रगटि कै, नाश करैं उत्पात॥

भजन—हरिनिंदाफल नहिं सुखदाई, रामा नहिं सुखदाई॥

बेन प्रताप चक्रवर्ती नृप, हरिनिंदा पर निज मति लाई॥ हरि०

धर्मपाल मुनिबृंद सबै मिलि, शिक्षादीन सुशास्त्र सुनाई॥ हरि०

मानी न नीच मीच लहीआखिर, यह अधर्मफल देखहु भाई॥ हरि०

रहै न अंत अबहुं न मिलै सुख, करि कुकर्म जे करत कमाई॥ हरि०

माधवराम गुनगाय श्याम लिये, नरतन से दुहुंलोक बनाई॥ हरि०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे पंचदशोऽध्यायः।

श्लोक—ततः पंचदशे विप्रैर्मन्थनाद्वेनबाहुतः।

जातस्य तु पृथोरुक्तमभिषेकार्हणादिकम्॥

दो०—पंद्रह में मुनिबचन ते, बेन भुजा सो आय।

पृथु सरूप हरि प्रगट भे, तिलक चरित शुभ गाय॥

मैत्रेयउ०छ०—सुतहीन बेनके मथेहाथ, नरनारि युगुल जोड़ी प्रगटी।१

लखि वेदपाठि मुनि कहन लगे, हरि कला प्रगटि संदेह मिटी॥२

ऋषयऊचुः—है भुवनपालनी कलाविष्णु, पृथु विष्णू श्री अर्चा रानी।३

यशकारी राजों में हैं प्रथम, राजा पृथु पृथ्वीपति ज्ञानी॥ ४

शुभअंग सुशील अभूषण तन, ज्यों अग्नि अर्चि नृप संग रहै।५

हरिअंश लोकरक्षा के हित, प्रगटे हैं सभी मुनीश कहैं॥ ६

मैत्रेयउ०—गावैं गंधर्व प्रशंसा द्विज, सुरबधू नृत्य पुष्पहु वर्षा ।७
दुन्दुभिमृदंग आदिक बाजैं, सुरमुनि पितृ आये मन हर्षा ॥८
ब्रह्माजी सुरसँग आय लखैं, हरिचिन्ह नृपति पृथुके करमें । ९
पदकमल निरखि नृपके कहते, सुरचिन्ह अहैं ये ईश्वर में ॥१०

दो०—ब्रह्मवादि सब विप्रवर, करत भूप अभिषेक ।
सामग्री एकत्र कर, नाना विधिहु अनेक ॥ ११

छ०—सरिता समुद्र गिरि मृग पक्षी, पृथ्वी सब नृपहिं भेट दीनी १२
शुभ बसन अभूषन साजि भूप, रानीके सहित शोभा लीनी १३
सिंहासन सुघर कुबेर दिया, दै वरुण छत्र शशिशोभाकर । १४
दिये बाल व्यजन वायू ने माल, दी धर्मक्रीट सुरपती सुघर १५
यमराज दियो यमदंड, कवच दी ब्रह्ममयी ब्रह्मा आकर ।
सरस्वती हार हरि लक्ष्मी चक्र, रक्षा आनंद होय बढ़कर ॥ १६
दशचंद्र चमक तरवार रुद्र, शतचंद्र तेज असि दी गौरी ।
चंद्रमा अमृतमय अश्व दिये, रथ त्वष्टा बस्तु सब इकठौरी ॥ १७

दो०—अजगव धनु अग्नी दियो, सूर्य तेज दियो आप ।
भूमि खड़ाऊं सुमन द्यौः, जुरि गई वस्तु कलाप ॥ १८

छ०—अंतरहुध्यान खेचर अशीष मुनि, सिंधुशंख रणजयदाई । १९
नदि पर्वत सिंधु सुपथ दीना, मार्गहू सूत स्तुति गाई ॥ २०
अपने सब प्रजा विप्र गुरुजन, तिनसे पृथु नृप हँस कहते हैं ।२१
पृथुउ०—स्तुती न करिये सूतादिक, कहीं झूठ न हो हमचहते हैं २२
पीछे से सो कोई कहो भले, सज्जन न बड़ाई नर की करैं । २३
कर्ता समर्थ भावी गुण की, दुष्टहु न प्रशंसा चित्त धरैं ॥
होवै न होय सब कथन मात्र, उपहास बड़ाई की मानै ।
सुनि कीर्ति समर्थ अपनि निंदा, करने हित सज्जन रुचिठानै ॥२४

दो०—बहु उदार लज्जा सहित, सुनि निंदा हर्षात ।
कर्म विदित मेरे नहीं, गुन कस गावत तात ॥

भजन दादश—सुजन नहिं चाहत, निज यश गान ॥ टेक ॥
करहिं प्रशंसा निजमुख अपनी, तिनके हिय अज्ञान ॥ सुजन०
पीछे अयश बुराई सब कहैं, अंत में नरक निदान ॥ सुजन०
निंदा सुने प्रसन्न होत हैं, निंदक हितु अति जान ॥ सुजन०
माधवराम विशुद्ध करैं वह, धोवत पाप महान ॥ सुजन०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे पंचदशोऽध्यायः

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे षोड़शोऽध्यायः ।

श्लोक—षोड़शे सर्वलोकेशैः सत्कृतं भार्यया युतम् ।
मुनिप्रयुक्ताः सूताद्याः स्तुवंति स्मेति वर्ण्यते ॥

दो०—लोकपाल मानहिं पृथुहिं, जग में विदित अनाथ ।
षोड़श में मुनि कहे पर, गावहिं सूत सुगाथ ॥

मैत्रेयउ०छं०—सुनिनृपकीबातमुनिफेरकहैं, सूतादिक स्तुति करते हैं १
अवतार लिया हरि नृपति रूप, गुण कहि न सकैं हम डरते हैं २
है चरितउदार रूप हरि नृप, मुनि कथन करैं हम गावैं हैं। ३
रखि धर्म धर्मवानों में श्रेष्ठ, दुष्टन दै दंड दबावैं हैं ॥ ४
सब लोकपाल का तेज धरे, दोनों लोकन के उपकारी । ५
कर समय पै ले सौगुन देवैं, जल ले रवि बहु बर्षाकारी ॥ ६

दीनों के दबाने पर भी क्षमा, पृथ्वी स्वभाव चित धारन कर ७
जल बृष्टि न हो जल बरषावैं, राजा का रूप प्रगटे हरि धर ॥ ८
दो०—दर्शन दें निज रूप के, लोक तृप्त कर देहिं । ९
गूढ़ मार्ग धन गुप्त नृप, बरुण सुयश जग लेहिं ॥ १०
छं०—दुःसह रह निकट दूर से यह, अग्नी सम दुराधर्ष भारी । ११
बाहर भीतर वायू की भांति, सबकी गति मतिहु जानकारी १२
नहिं अदंड को देवैं ये दंड, दें दंड पुत्र लखि अपराधी । १३
मानस पर्वत लौं कीर्ति चक्र, ज्यों सूर्य किरन कीरति साधी १४
जग के रंजन हो निज गुन से, सुनि प्रजा नृपति से बात कहैं १५
ब्रह्मण्य दृढ़ब्रत सत्प्रतिज्ञ, सब जीव शरनप्रद सुखप्रद हैं ॥ १६
परस्त्री को माता जानैं, निज पुत्र प्रजा द्विज के किंकर । १७
आत्मा सम मित्र सुखद सबके, दुष्टों के दाता दंड जबर ॥ १८
दो०—त्रिलोकपति भगवान ही, शुद्ध आत्मा भूप ।
जगत उजेला सब करै, एक सूर्य बहु रूप ॥ १९
छं०—भूमंडल रक्षक एक बीर, नृप रथचढ़ि रविसम दिशिविचरैं २०
धनु खैंचि असह रिपु को रण में, जिमि सिंह देख बनजीव दुरैं २३
सब नृप देवैंगे भेट इन्हें, तिनकी रानी सब यश गावैं । २१
पृथ्वी दुहिकै पालिहैं प्रजा, धनु कोर से महि समता लावैं २२
शत अश्वमेधमख करने पर, आखिरी में सुरपति अश्व हरैं ।२४
सत्संग करै सनकादिक से, हरि सुमिरि ब्रह्ममय ह्वै विचरैं ॥२५
जहँ जाय प्रशंसा तहाँ सुनै, ऐसही पराक्रमधारी हैं । २६
दिशिसकल जीति दुखजगके हरैं, सुरगावैं यश जयकारी हैं ॥२७
भजन—पृथुरूपधारि हरि जग आये ॥ टेक ॥
करि उत्पत्ति करत पुनि पालन, यथायोग श्रुति मुनिगाये ॥ पृथु०

विप्रबचन प्रभु सदा सत्य करैं, मृतक देह से प्रगटाये ॥ पृथु०
लक्ष्मी सहित धर्मरक्षाहित, सुर मुनि जनके मनभाये ॥ पृथु०
करि अभिषेक तिलक गद्दीदैं, ब्रह्मादिक आनँद पाये ॥ पृथु०
माधवराम रीति लखि मन में, अपने हिय दृढ़तालाये ॥ पृथु०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे षोड़शोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ।

श्लोक—ततः सप्तदशे लोकक्षुधाः प्रशमयन् पृथुः ।
अस्तवीजां महीं हन्तुं यत्तो भीत्या तयास्तुतः ॥
दो०—सत्रह के अध्याय में, क्षुधित प्रजा सुनि बैन ।
मही दंड स्तुति नृपति, कह्यो सुनै मिल चैन ॥
मैत्रेय उ० छ०—इस भांति प्रजासे स्तुतिसुनि, पृथुकहैं लेहु जो चितचाहै १
ब्राह्मण समेत सब प्रजावर्ग, लो मांग सभी भरि उत्साहैं ॥ २
विदुर उ०—पृथिवीक्योंगऊकारूपलिया, पृथुदुहीवस्तुक्यावस्तु किया ३
महि प्रकृति विषम को सम कीना, क्यों इन्द्रने घोड़ा चुरा लिया ४
करि विज्ञानी सनकादि संग, लहि ज्ञान भूप ने क्या ठाना । ५
नृप कृष्ण रूप का पवित्र यश, कहो चरित करै हरि मनमाना ६
अनुरक्त भक्त तुव पद में रत, महि नृप की लीला कहि दीजै ।
कहि सुनि हरिचरित गती होती, उद्धार जीव करि यश लीजै ७
सूत उ० दो०—हरि चरित्र पूंछहिं विदुर, प्रसन्न मुनि मैत्रेय ।
विदुर प्रश्न उत्तर विमल, हिये माहिं गुनि लेय ॥ ८

मैत्रेयउ०छ०—पृथुतिलकभयेनृप प्रजापाल, बिनअन्नदुखीसबप्रजाकहैं ९
हम चुधा विकल जरैं खोखल तरु, अग्नी से शरण रक्षाहु चहैं १०
भूखों को अन्न दीजै राजा, नहिं मरैं जीविका बिन भूपति। ११
मैत्रेयउ०—सुनिदीनबचननृपध्यानकरैं, पायानिमित्तज्यौंछुटैविपति १२
निश्चय मति लै धनुहाथ क्रोध करि, हरसम बान चढ़ाया है १३
यह दशा देख गोरूप मही, भागी कांपै भय पाया है ॥ १४
करि क्रोध लिये धनु हाथ, लाल दृग उसके पीछे नृप धाये १५
दिशि विदिशि धावती तर ऊपर, जहँ जाय मही तहँ नृप पाये १६
दो०—डरी ठौर पायो नहीं, जिमि मृत्यू से जीव।
कंपित हिय लौटी तुरत, भय हिय तासु अतीव ॥ १७
छ०—धर्मज्ञ शरण वत्सल सब के, रक्षक नृप त्राहि करौ पालन १८
मारते दीन अपराधरहित, क्यों तुम करते सबका लालन ॥ १९
अपराधसहित अवला न हनैं, कोई भी आपतौ जनवत्सल। २०
जगधारनि नाव उखाड़ मुझे, जल बीच प्रजा रखिहौ केहि बल २१
पृथुरु०—मारैंगे मही हमसे है विमुख, लै यज्ञभाग कुछ नहिं देवै।२२
है दंड उचित देवै न दूध, जो लै सेवा तृण खा लेवे ॥ २३
बिधिरचित औषधी बीज मही, अज्ञानी लें लखि निज उर धर। २४
भूखों की भूख हो कैसे शांत, हम करैं शांति तुझे भेदन कर ॥ २५
दो०—पुरुष नपुंसक नारि हो, औरन कहँ दुख देत।
दया जीव पर जासु नहिं, नृप बधि दोष न लेत ॥ २६
छ०—जड़मतवारी महिमारि तोहिं, निजयोग से प्रजा करूं धारन।
मूरति लखि कालरूप नृप की, महि हाथ जोड़ कर उच्चारन ॥२८
धरोवा०—परपुरुष गुणमयी मायासे, नाना स्वरूप धर लीने है।
अनुभव स्वरूप को नमस्कार, क्रिया कारक सब से छीने है ॥२९

जिस हरि ने मुझे निज घरसा रचा, चरअचर रूप धर मुझमें बसे।
किस प्रभु की हम अब शरण जांय, मारनेहेत तुम कमर कसे ॥३०
माया से सृष्टि चर अचरमयी, जिस ईश्वर ने रच दीनी है।
किस और कि अबहम शरणजांय, किमि हनैं धर्ममतिलीनी है ३१

दो०—ईश्वर की करतब सबै, माया मोहित जीव।
नहीं लखै शक्ती छिपी, पर इक ईश अतीव ॥ ३२

छ०—जो पंचतत्व देवता बुद्धि, हंकार आदि से सृष्टि करै।
सब शक्तिमान परमेश्वर है, जो ज्ञानरूप पद शीश धरै ॥ ३३
तुमसे विरचित चर अचर जगत, सब तत्व औ अंतःकरणमई।
बाराह रूप धरि पताल जा, जल बाहर लाये दया भई ॥ ३४
जल में मैं नाव रहूं जब तक, है प्रजा सुरक्षित बसै सदा।
वह वीरमूर्ति पृथ्वीधर क्या, हो उग्र आज मारोगे मुदा ॥ ३५
ममतुल्य ज्ञानहीनों नर से, हरि करतब नहीं लखी जावै।
तिस ईश्वर की गुणमाया से, मोहित हम चरण शीश नावैं ॥३६

दो०—दीन भई पृथ्वी अधिक, पृथु नृप स्तुति ठानि।
ह्वै दयालु कीनी क्षमा, गये भूप तब मानि ॥

भजन दादरा—प्रभु हरि अवतार, मेरी विनय सुन लीजै ॥ टेक ॥
रक्षा करत दीनों की, बहु ले अवतार ॥ मेरी०
जल सों मोहिं हरि लाये, तन बराह धार ॥ मेरी०
सुरमुनि सदा गुनगावैं, पावहिं नहिं पार ॥ मेरी०
मैं तो सुजड़ अवला हौं, मतिमंद गवांर ॥ मेरी०
माधवराम सुख दीजै, चरणन बलिहार ॥ मेरी०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषा सरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः

श्लोक—अष्टादशे मही वाक्याद्वत्स पात्रादिभेदतः ।
पृथ्वादिभिस्तु सा दुग्धा स्वं स्वं दुग्धमितीर्यते ॥

दो०—अष्टादश अध्याय में, मही बचन नृप धारि ।
भूप सबै मिलि महि दुही, निज हित दूध सुधारि ॥

मैत्रेयउ०छ०—अतिक्रुधितभूपकीकरिस्तुति, नृपसे पृथ्वीये वचन कहै १
तजि क्रोध बचन सुनिये भूपति, सारग्राही बुध भ्रमर रहै ॥ २
इसलोक तथा परलोक माहिं, मुनि दृष्टतत्व जो योग किये । ३
वह उपाय जो जन करते हैं, पाते हैं सिद्धि सुख चित्त दिये ॥४
वह उपाय तजि जे युक्ति करैं, सब बृथा होय नहिं सिद्धि मिलै ५
बिधिने सब औषधि भूप रचीं, सब भोगैं दुष्ट सुख संपति लै ॥६
करैं भूप अनादर तजि पालन, सब लोक चोर मय लख लय की ७
सब क्षीण भई बहु काल गया, युक्ती से आपलें तुमको दीं ॥८

दो०—बछरा करिये योग कोइ, देहुं दूध सब अन्न । ९
दुहनहार करिये चतुर, लहि सब होवैं धन्य ॥ १०

छ०—समकरौ यथा सुरवर्षित जल, ठहरै बिन समयभी सबपावैं ११
यह प्यारी महि की बात गही, मनु वत्स किये औषधि लावैं १२
बुधमान सभी सारांश लिया, पृथु भावित महि से भरि इच्छा १३
करि बृहस्पती को वत्स ऋषी, वेदोंमय दूध गह्यो शिक्षा ॥ १४
सुरपति को बछरा करिके देव, लिया दूध सोम करि पात्रकनक १५
प्रह्लाद वत्स करि मद्य दूध, मिट्टी का पात्र लहि असुर सनक १६

गंधर्व अप्सरा गान दुग्ध, विश्वावसु वत्स पद्म बरतन। १७
अर्यमा वत्स पितृ कव्य दूध, मृत्तिकापात्र में गहि खुश मन १८

दो०—कपिल वत्स करि सिद्धगण, सिधि संकल्प अनूप।
पात्र अकाश माहिं दुहि, खुशी भये ज्यों भूप॥ १६

छ०—मायावी बहु मय बछरा करि, धारणामयी निज पय दुहते २०
करि रुद्र वत्स राक्षस पिशाच, रुधिर ही दूध कपाल लहते॥ २१
बछरा तक्षक विष दूध सर्प, अहि बीछी दुहिलिया पात्र स्वमुख २२
तृण हरा दूध पशुओं ने दुहा, नंदीश्वर वत्स बन पात्र निरखि २३
करि गरुड़ वत्स मांसाहारी, पक्षी दुहते चर अचर दूध। २४
बट वत्स बृक्ष जल दूध दुहा, मणि रत्न दूध गिरि हिमवत सूध २५

दो०—निज निज में मुखिया जोई, वही वत्स करि लीन।
पृथु भावित पृथ्वी दुही, पय महि सब विधि दीन॥ २६

छ०—पृथुआदिक निज २ अन्न लह्यो, बछराओदोहसेदूधभिन्न २७
नृप सर्व कामदा पृथ्वी को, पुत्री सम पालै मन प्रसन्न॥ २८
निज धनुष कोर से तुल्य करी, पृथ्वी भै बराबर बहुत सुंदर।२६
महिमंडल पर भूपति कीने, हैं बास हेत सब जगह नगर॥ ३०
पुर पत्तन ग्राम कहुं किला रचे, ब्रज घोष शिविर खर्वट खेरा ३१
इच्छा पूर्वक सब प्रजा बसै, पहले न ढंग यह पृथु केरा॥ ३२

दो०—सुख पूर्वक सब प्रजा बस, जय जय नृपकी होय।
क्षुधा हेत भोजन दिये, जो महि राखे गोय॥ ३३

भजन—धर्ममय नृप को महि सब देत।
बये एक सौगुन उपजत है, धर्म किये से खेत॥ टेक॥

मिहनत करनो सच है सबको, फलदायक है नेत।
पापी दौरि दौरि मरजावै, पावत दुख संकेत ॥ धर्म मय०
यासों कुमति कुसंग पाप तजि, सत्संगति करि चेत।
माधवराम भाग भोगे बनै, करै हरी से हेत ॥ धर्म मय०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः

श्लोक—उनविंशेऽश्वमेधांग हयापहरणात्पृथोः।
इन्द्रं हन्तुं प्रवृत्तस्य धात्रा वारणमुच्यते ॥

दो०—उनइस के अध्याय में, मख हय इन्द्र चुराय।
मारत लखि सुरपतिहिं नृप, ब्रह्मा लीन बचाय।

मैत्रेयउ० छ०—पृथुराजाकरैशतअश्वमेध, प्राची[१]सुरसतिजहँब्रह्मावर्त १
अपने से अधिक लखि कर्म इन्द्र, पृथु यज्ञ नाश हित कीनी शर्त २
जहँ यज्ञपती हरि ईश्वर ही, सर्वात्मा लोक गुरू राजैं। ३
ब्रह्मा शिव लोकपाल सेवैं, गंधर्व अप्सरा छवि लाजैं ॥ ४
विद्याधर सिद्ध दैत्य दानव, गुह्यक सुनंद नंदहु सोहैं। ५
सनकादिक नारद कपिल दत्त, भगवत सेवारत मन मोहैं ॥ ६
धर्महो दूध महि कामधेनु, मनवांछित फल नित देती है। ७
वृक्षहू फूल फल विविधि भांति, नदियां रसादि दै सेती है ॥ ८

दो०—सिंधु रत्न बहु भांति दें, गिरिहु अन्न बहु भांति।
लावहिं भेंट अनेक विधि, लोकपाल की पांति ॥ ९

१ पूर्वी।

छं०—यों ईश्वर पृथु की यज्ञ देख, ईर्षाबश इन्द्र विघ्न करते ।१०
अंतिम मखका घोड़ा सुरपति, ह्वै अंतरध्यान आय हरते ॥ ११
मखके अचार्य अत्रीजी ने, आकाश में जाते बतलाया । १२
मुनि आज्ञासे पृथुपुत्र बड़ा, भरि क्रोध सुरपती पर धाया ॥ १३
लखि जटाभस्म साधू का वेष, तिसपर नहिं बानप्रहार किया ।१४
लाया हय फिर भी हर्यो इन्द्र, मारनहित मुनिजी हुक्म दिया १५
आज्ञा पाकर पृथुपुत्र चला, ज्यों रावण पै जटायु करि क्रोध १६
तजि घोड़ा रूप इन्द्रहू छिपे, नृपसुत लाया घोड़ा अनुरोध ॥१७

दो०—अद्भुत कर्म निहारकै, लियो इन्द्र से अश्व ।
मुनि नृपसुत कहँ पददियो, नाम वीरविजितश्व ॥१८

छं०—रचि अंधकार सुरपति आकर, खंभेमें बँधा हय हरलीना१६
अत्रीने लखा कहि नृपहि फेरि, साधूलखि नाहिं दंड दीना ॥२०
अत्रीने लखाया अश्वसहित, भये इंद्र गुप्त मारा जब बान ।२१
घोड़ा ले सुत पितु मख आया, सुरपतिसरूप लें दुर्बल ज्ञान ॥२२
सुरपति ने धरे जे कपट रूप, तिन्हैं पाप औ लिङ्गखंड कहते ।२३
पृथुयज्ञ नाशहित अश्वहरन महँ, जो जो कपट बेष गहते ॥२४
नंगे भगवाधारी अधर्मि, शुभवेष चतुर नर मति को हरैं ।
कलियुगमें प्रायः बहुत होंय, दुनिया ठगने को रूप भरैं ॥२५

दो०—पृथु नृप अधिक पराक्रमी, सुरपति पर करि क्रोध ।
धनु पर बान चढ़ाव जब, मुनिन कीन अनुरोध ॥२६

छं०—सुरपति बधमें तैयार निरखि, दुःसहहै बेग नृप प्रतापलख ।
मुनि कहैं भूप करिये न क्रोध, नहिं मख में क्रोध यह नीतिहुरख२७

मुनि कहैं यज्ञनाशक हैं इन्द्र, हततेज भया सब प्रकार है।
विद्याबल से होमैंगे उसे, रिपुतुम्हरो भरो हिय विकार है ॥२८
यों पूंछि हाथ ले श्रुवा इन्द्रको, होमैं, बिधि आ मना करैं। २९
नहिं यज्ञअंग मारहु सुरपति, हरिरूप यज्ञ सुर अंग धरैं ॥ ३०
यह अधर्म है मुनि देखोतुम, यद्यपि वह यज्ञ विनाशी है। ३१
कम एक यज्ञ से नृपका सुयश, बहु हो नृप मोक्ष प्रकाशी है ३२

दो०—इन्द्र आपका रूप है, हरि हो तुम पृथु भूप।
दोनों मिलि आनंदकर, उत्तम श्लोक सरूप ॥ ३३

छं०—मम बचनसुनौ चिंतातजिदो, अपनी आत्माका आदरकर।
हतदैव कार्य में हठ ठानै, वह अंधंतम में पड़ जाकर ॥ ३४
हो देव दुराग्रह मख रोको, पाखंड रूप जो इन्द्र धरैं। ३५
ये पखंडरूपी हरैं धर्म, इनको शोधो जन चित्त हरैं ॥ ३६
समयानुसार प्रगटे हैं आप, सबही के धर्मरक्षा के लिये।
उस बेन भूप के देह मथे से, रूप हरी समझिये हिये ॥ ३७
हे प्रजापती सब देव अंश, सुरपति इच्छा को पूर करो।
पाखंडमयी सुरपति माया, अपने बल से नृप शीघ्र हरो ॥ ३८

दो०—बिधि शिक्षा मानी नृपति, इन्द्रहु कीनो प्यार। ३९
यज्ञ स्नान दान दे, बर दें नृपहि अपार ॥ ४०
द्विज प्रसन्न आशिष कहै, पायो धन सतकार।
भूपति बहु आदर किया, आप बड़े दातार ॥ ४१

भजन—सबहिं कहँ दुखदाई अभिमान ॥ टेक ॥
पृथु राजा सौ यज्ञ करैं हित, ठाने विविधि विधान ॥ सबहिं०

इन्द्र शत क्रतु नाम गयो मम, लखि किये विघ्न महान ॥ सबहिं०
राजहु हठ बश दुःख उठायो, लखिये चतुर सुजान ॥ सबहिं०
अहंकार बस करहु सुकर्महु, तेहि में व्याकुल प्रान ॥ सबहिं०
माधवराम गुमान छोड़ि भज, तब मिलिहैं भगवान ॥ सबहिं०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे विंशोऽध्यायः ।

श्लोक–विंशे तु विष्णुना साक्षात्पृथोर्यज्ञेऽनुशासनम् ।
वरदानप्रसंगेन प्रीतिश्चान्योन्यमीर्यते ॥

दो०–प्रगट विष्णु भे यज्ञ महँ, पृथु पाया वरदान ।
बिशवें शुभ अध्याय में, उत्तम कथा बखान ॥

छ०–भगवान विष्णु लै इन्द्र साथ, मखमें आये पृथु से कहते । १
श्रीभ०–सुरपतिने विघ्नकिया मखमें, अपराधक्षमापन ये चहते ॥
अपमान किया इनका तुमने, अपराधक्षमा तुम भी मांगो । २
साधू उत्तम नहिं बैर करैं, तन आत्मा नहिं हिय अनुरागो ॥ ३
तुम्हरे से माया में मोहैं, श्रम है बृद्धोंकी सेवा तब । ४
तन रचा अविद्या से लखते, नहिं देह कर्म में बुध फंसै सब ॥ ५
नहिं तन में मोह तन से पैदा, गृहसुत धनमें कब मोह करैं । ६
पर एक शुद्ध निर्गुण ज्योती, साक्षी सर्वग[1] आत्मा पकरैं ॥ ७

दो०–आत्मा महँ आत्मा लखै, माया लिपटै नाहिं ।
माया के गुण से अलग, समझु अपन हम माहिं ॥ ८

[1] सर्वव्यापी ।

छं०—फलतजि स्वधर्मकरि श्रद्धासे, भजिमोहिं शुद्धमनप्रसन्नहो६
गुण त्यागि शुद्धचित समदर्शी, लेशांतिब्रह्मसुख न खिन्नहो ॥१०
है उदासीन अध्यत्त सभी का, कूटस्थित आत्मा लख कर।
तन ज्ञान कर्म इन्द्री मनमति, इनका सात्ती हियमें थिर धर ॥११
है भिन्नदेह गुणप्रवाह सब, तन है न्यारा आत्मा न्यारा।
संपति विपत्ति दोनों समलख, ज्ञानी न गुनै जगमम प्यारा ॥ १२
उत्तम मध्यम अधमहु समलखि, सुखदुख समझै जितइन्द्रीनर।
यह लोक रचा हरिका लखकर, हे वीर करो रत्ता सब कर ॥ १३
भूपति का प्रजापालन है धर्म, छठवां हिस्सा कर ले राजा।
ज्यादा लेने से त्तीण पुण्य, ले प्रजापाप सब विधि लाजा ॥१४

दो०—द्विज आज्ञा से राज करि, धर्म सहित महिपाल।
घर आये सिधसनक मिलि, लखै सिद्धि ततकाल ॥१५

छं०—कुछ मुझसे लो वरदान भूप, तुमशीलमान के मैं बश हूं।
तप योगयज्ञ से तस न सुलभ, देता समचित को सर्वस हूँ ॥ १६
मैत्रे०उ०—पृथुनृप हरिलोकगुरू आज्ञा, शिरसे धारणकरलेतेहैं १७
निजकर्म से लज्जित चरणपड़े, मिलि इन्द्र बैर तज देते हैं ॥ १८
विश्वात्मा हरि पृथुसे पूजित, अति बढ़ी भक्तिसे चरणगहे। १६
करि दया चलन इच्छा हरि के, जनहितकारी प्रभुखड़े रहे ॥ २०
पृथु आदि भूप भरि प्रेम नैन, आंसू के मारे हरि न लखैं।
गद्गदवाणी भरि नैन अश्रु, नहिं कुछ बोलैं फिर मुख निरखैं ॥२१

दो०—आँसु पोंछि नहिं तृप्तिलखि, हरि सों बोले बैन।
गरुड़ पीठि हरि कर धरे, निरखि हरी लहि चैन ॥ २२

पृथुरु०छं०—बरदानी मालिक ईश्वर हो, प्रभु क्या तुमसे मांगैं वरदान।
संसारी सुख इन्द्री के नाथ, सब जगह मुक्तिदाता भगवान ॥२३

छं०—नहिं कुछ मांगौं इतनादीजै, जहँ कथासुयश सुनने जाऊँ।
कहें संत महात्मा तब मेरे, दश हज़ार कान प्रभू पाऊँ ॥ २४
प्रभु संतमुखच्युत हरिपद यश, अम्मृत की हवा लगै जिसके।
भूलेहु तत्त्वपथ फिर पावैं, बरदान से क्या आगे इसके ॥ २५
सत्पुरुष संग में यश सुनना, कहीं दैवयोग इक बार सुनै।
हो पार चतुर कैसे मानै, पशुबिना रमा तव सुयश गुनै ॥ २६

दो०—हे पुरुषोत्तम भजहुं पद, गुणमंदिर भगवान।
सुरपति औ मोहिं में प्रभू, होय न कलह प्रमान ॥ २७

छं०—माया में होय विरोध प्रभू, हम दोनों ने यह ठाना है।
थोरी सेवा को बहुत करैं, नहिं प्रताप प्रभु का जाना है ॥ २८
साधूजन तुम को भजन करैं, गुण माया उदय दूर करके।
तवचरणसुरति तजकर साधू, नहिं मनमें राखैं कुछ धरके ॥ २९
जनमोहनि बाणी प्रभु तुम्हारि, बरदान लेहु मुझ से कहते।
बाणी कि डोरि से बँधा जगत, कुछ करनसकै जो मन चहते ॥ ३०
माया मोहित हर गया ज्ञान, जो नर बरदान चहै मन से।
बालक का हित पितु स्वयं करै, हैं मूरख खुश लै सुख धन से ॥ ३१

मैत्रेय उ० दो०—पृथुप्रणामस्तुति करी, दीन भक्ति बरदान।
ऐसिहि बुद्धि सदा रहै, माया तरहु सुजान ॥ ३२

छं०—हो सावधान आज्ञा पालो, मेरी सब जगह भला होवै। ३३
मैत्रेयउ०—इस भांति पृथू से हरि कहकर, पूजा लहि चलने को जोवै ॥ ३४
देवता पितर मुनि चारण सब, गंधर्व अप्सरा देखि रहे। ३५
हरि चले गये सब लै पूजा, नृप पूजा से भगवान लहे ॥ ३६
भगवान भूप के देखतही, मन हर के अंतरध्यान भये। ३७
आत्मादिखाय छिप गये हरी, करि प्रणाम भूपति भवन गये ॥ ३८

दो०–व्रत तप यज्ञ समाधि से, है हरिभक्ति प्रधान ।
भक्तिकिये पृथुभूप को, दर्श दिये भगवान ॥

भजन–सभी नियमों में भक्ति प्रधान ॥ टेक ॥
व्रत तप नियम अनेकों ठानै, करै विविधि विधि दान ॥सभी०
मिलैं लोकमत्सर तहँ छाया, सुख में दुःख निदान ॥ सभी०
पृथु राजा ने करी यज्ञ बहु, भये अंत हैरान ॥ सभी०
तजि अभिमान भक्ति हरि धारी, दर्श दिये भगवान ॥ सभी०
माधवराम श्यामपदपंकज, भजलो तजि अभिमान ॥ सभी०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे विंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ।

श्लोक–एकविंशेतु पृथुना प्रजानामनुशासनम् ।
महासत्रे सुरादीनां महासदसि वर्ण्यते ॥

दोहा–इकइस के अध्याय में, पृथु नृप प्रजा निदेश ।
देवयज्ञ महती सभा, किया कथन व्यासेश ॥

मैत्रेयउ०छं०–मोतीकी झालर फूलमाल, पट धूप दीप से सभा लसै ।१
चंदन जलसे सींचे हैं मार्ग, पुष्पाक्षत फलादि छवि विलसै ॥२
केले के खंभ शुभ पूगवृन्द, तरु पल्लव माला बहु सोहैं ।३
आरती उतारैं नृप की प्रजा, सजि कन्या मंगल मन मोहैं ॥४
दुन्दुभी शंख ध्वनि वेदन की, होरही सभा महँ नृप आये ।५
सबसे पूजित द्विज सुरहि पूजि, प्रिय बोले सबके मन भाये ॥६

वह पृथु जिनका है सुयश बड़ा, करिकर्म पालिमहि परपद गे।
पृथ्वीपर छाया यश जिनका, करि नाम यहां पर सुरसम भे॥७

सूत उ० दो०—आदि भूप पृथु कर सुयश, सब गुण बढ़े नवीन।
मान योग पूंछत विदुर, मैत्रेय लवलीन॥ ८

वि०उ० छ०—विप्रोंसे तिलक लहि पृथुभूपति, शोभापाई पृथ्वीदुहिकर।९
को सुयश सुनैनहिं विष्णु तेज, दिगपालसेपूजित भूपतिबर॥१०

मैत्रेय उ०—गंगा यमुना के मध्यबास, जो ब्रह्मावर्त कहावै है।
तहँ बस के भूपति पुण्य खर्च हित, भागके भोग भोगावै हैं॥११
कहिं आज्ञा जिनकी लंघितनहिं, सातहूद्वीपमें द्विज जनतजि १२
देवोंकी सभाभइ एक दिवस, मुनि भूपति सब तहँ आये सजि॥१३
आसनों पै पूजा लहि बैठे, शशि सम भूपति बर हुये खड़े।१४
आजानुबाहु दृगकमल गौर, नासिका सुमुख छबि अंगमढ़े॥१५

दोहा—वक्षस्थल दीरघ त्रिबलि, उदर नाभि गंभीर।
कंचन वर्ण सुघर चरण, ओजस्वी बलवीर॥ १६

छ०—अतिकोमल चिक्कन घुंघरारे,कचकंबुकंठ शुभवसनसजे १७
तनमें लक्ष्मी का प्रकाश अति, मृगचर्म हाथ कुश सहित रंजे १८
संतापहरनि हेरनि जिनकी, करि सभा हर्ष नृप कहते हैं। १९
पद विचित्र मीठे गूढ़ शुद्ध, सब का उपकारहि चहते हैं॥ २०

राजो०—सज्जन जे सभामहँ हैं सुनिये, जिज्ञासू संतसे धर्म कहै।२१
मैं भूप प्रजा का दंडहु धर, रक्षक जीवों का दुःख दहै॥ २२
जो ब्रह्मऋषी ने कहा मुझे, हरिलोक देहिं जब खुश होते।२३
कर लेवै राजा प्रजा धर्म, नहिं पापी बनि खावै गोते॥ २४

दो०—प्रजा सुनहु जिमि मृतक कहँ, पिंडदान सुत देत।
मैं पितु सम मम हित करहु, इक हरि सेवा लेत॥ २५

छ०—हे पितर देवमुनि संमति दो, कर्ता शिक्षक गुरुसम फल लें २६
हे पूज्य सज्जनो मखपति हरि, हैं लोकदोऊ तन सुख गति दें २७
उत्तानपाद पितु मनु ध्रुव नृप, प्रियव्रतहु अंग बाबा मेरे। २८
औरहू रुद्र बिधि प्रह्लादहु, बलि आदि भक्त हैं हरि केरे॥ २९
मृत्यू के कन्या पुत्र बेन, आदिक तजिकै सब कुछ दानी।
सुख स्वर्ग मोक्ष जो कुछ चाहो, हरि से ले लीजै मन मानी ३०
जिनकी पदसेवा किये, अनेकों जन्म पाप छुट जाते हैं।
बढ़ती है बुद्धि सतमारग में, नख से गंगाजल आते हैं॥ ३१

दो०—पाप धोय मन विमल ह्वै, हो असंग विज्ञान।
हरिपद महँ घर किये ते, फिर नहिं जन्म जहान॥ ३२

छ०—तुम भजो सभी मन चित देकर, वाणी काया से सेइ हरी।
तजि कपट कल्पतरु हरिपद को, सेवैं सब पावैं सिद्धि खरी॥ ३३
वह निर्गुण गुणमय यज्ञरूप, गुण[1] द्रव्य[2] क्रियादिक[3] हो करके।
[4]अर्थाशय[5] लिंग[6] नाम[7] वाला, विज्ञान सरूप सदा धरके॥ ३४
छ०—माया औ काल अरु अन्तःकर्ण, मयं शरीर में विभु चेतन लहिं।
करतब फलसे शोभा पावै, ज्यों अग्नि काष्ठ महँ तन्मय गहिं॥ ३५
ये द्विज मुझ पर करते दाया, हरि गुरु सुरके मालिक ईश्वर।
सो ईश्वर को पूजे मख से, ये विप्र भूमि पर दृढ़ ब्रत धर॥ ३६

दोहा—बहु समृद्धि विद्याहु तप, दीपित कुल द्विज जान।
भक्तहु कुल कहँ भूलि कै, नृप कुल हरहिं न मान॥ ३७

छ०—जिन द्विजपद हरि बंदनाकरी, ब्रह्मण्यदेव पदवी पाई।
अनपाइनि लक्ष्मी जगतसुयश, अतिपवित्र सुरमहँ अगुवाई॥ ३८

१ ब्रह्मादि अत्र २ शुक्लादि ३ अवघातादि। ४ अंगसाध्य उपकार ५ संकल्प ६ पदार्थ शक्ति ७ ज्योतिष्टोमादि।

सबघटवासी ईश्वर स्वराट, ब्राह्मणप्रिय खुश द्विज सेवा से।
अति नम्र विप्र हरि धर्म करैं, सब विधि से लगैं हरि देवा से॥३९
आत्मा हो शुद्ध आपही पुरुष, शीघ्रहि शं मुक्ती पा जावै।
द्विज सेवा औ संबंध किये, द्विजमुख सम हरिमुख कहँपावै॥४०
हरि खावैं द्विजज्ञानी मुख से, जो श्रद्धा से होमै लाकर।
नहिं तैसे चेतनरहित अग्नि में, परमहंसवानी कह घर॥ ४१

दो०—धारहिं वेदसनातन, श्रद्धा तप बहु नेम।
विप्रसमाधिहु धरत हैं, चाहत हैं जग क्षेम॥ ४२

छ०—तिन विप्रों की पदरज कोहम, जीवन भर शिर पर धारैंगे।
जिमसे सब गुन आपही बसैं, सब पाप नाश कर डारैंगे॥ ४३
गुणी शीलवान वृद्धहु सेवी, जन के ढिग संपति आवै है।
गौ द्विजकुल मुझपर प्रसन्न हों, हरिजन हरिदाया लावैं हैं॥ ४४
मैत्रेय उ०—यों कहते नृप को पितृ देव, द्विज साधु प्रशंसा करते हैं। ४५
सुत से पितु जीतैं लोक श्रुती कह, सुत से पितु भव तरते हैं॥ ४६
हिरनाकश्यप हरि निंदि नर्क परि, सुत प्रहलाद तारि दीना। ४७
हे वीर भूप चिरजियौ, भूमिपालन कर हरिकीर्तन लीना॥ ४८

दोहा—नृप पवित्र अति आप पृथु, दर्शन दीने नाथ।
विप्रदेव हरि कर सुयश, गायो सुंदर गाथ॥ ४९

छ०—शिक्षा ये प्रजामें प्रीतिदया, धारी महात्ममें नहिंअचरज ५०
कर्मों से नष्ट दृष्टी भ्रमते, तुम पार लगायो हरिपद भजि॥ ५१
वर्द्धित है सत्वगुण महतपुरुष, पृथुरूप आपको नमस्कार।
क्षत्री का रूप धरि ब्रह्मधारि, निजतेज प्रकाशित बारबार॥५२

दोहा—जब जब संकट धर्म महँ, लेहिं विष्णु अवतार।
धर्महानि लखि ईश हरि, लीना नृप तन धार॥

भजन धुनि बहार—सब विपति निवारत हरि सुमिरन ॥ टेक ॥
सब त्यागि कुटुम परिवार प्रीति, हियमें सुमिरै पदकमलसुजन ॥
जबलग न प्रेम प्रभुपदहिकीन, फललह्यो काह धरि यह नरतन ॥
धन दौलत अंत न चलै संग, चलै संग एक सुमिरन शुभधन ॥
कहुंखेल कहूं तियमें लपट्यो, करिमोह कुटुम गये तीनहुं पन ॥
दुख विपति अनेकन धाय मिलैं, नहिं चेत करै अब से जड़मन ॥
माधवराम प्रणाम करै सबको, अब देहु हुकुम भजूं नंदनँदन ॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ।

श्लोक—द्वाविंशे तु परं ज्ञानं पृथवे हरिशासनात् ।
सनत्कुमारो भगवानुपादिशदितीर्यते ॥

दो०—बाइस के अध्याय में, हरि की आज्ञा पाय ।
सनत्कुमार पृथुहि नृप, ज्ञान दिया है आय ॥

मैत्रेय उ० छ०—पृथु नृपकी स्तुति करैं प्रजा, रविसम चारोमुनिआयेहैं १
आते अकाश से लखि भूपति, हरैं लोक पाप लख पाये हैं ॥ २
दर्शन हित आतुर प्राण तुल्य, जिमि जीव प्रभू हित ठाढ़े हैं ३
आये आसन दै विधिसो पूजि, करि प्रणाम आनँद बाढ़े हैं ॥ ४
द्विज चरणामृत शिर पर चढ़ाय, आचरन शीलमानों के घर । ५
कंचन चौकी पर अग्नि तुल्य, बैठे नृप बोले श्रद्धा धर ॥ ६
पृथुरु०—क्या पुण्य आचरनहै मेरा, दुर्दर्श महात्मा दरश लहे । ७

नहिं दुर्लभ उनको कुछ जगमें, द्विज प्रसन्न जापर मन उमहे ८
दो०—सबही थल विचरत अहैं, दर्शन कोउ न पाव।
सबको देखै आत्मा, सो नहिं काहु लखाव ॥ ९
छं०—सज्जन गृहस्थ बिन पैसे भी, जल फलही से साधू सेव । १०
सांपों के बिलसम धन से भरे, घर हैं साधुहि नहिं कुछ देवैं ॥ ११
द्विजबर स्वागत है मुक्त सबे, बालक से महा व्रतधारी हैं । १२
है कुशलप्रश्न हम लोगों की, जिन कर्म असे दुख भारी हैं ॥ १३
है आप आत्माराम तहां, नहिं कुशल अकुशल वृत्ति कोई । १४
विश्वास धारि पूंछैं तुम से, जेहि विधि भव से निकसबहोई ॥ १५
आत्मा की आत्मा हरि ही आप, जीवोंपै दया धरि बिचरि रहे। १६
मैत्रेयउ०—पृथुकी मृदु सारबातसुनिकै, मुसकाय सनकजीवचनकहे १७
सनत्कुमार उ०—दो० सबजीवों हित होयनृप, भलो प्रश्न यह कीन।
पंडित साधू आप हैं, मति नहिं अहै मलीन ॥१८
छं०—श्रोता वक्ता दोनों को सुखद, सत्संग शास्त्र में गाया है।
पूंछने औ कहने से राजन, आनँद सबके हिय छाया है ॥ १९
छं०—हे राजन मधुसूदन हरि के, पदकमल सुयश जो गाते हैं।
अंतरमल हिरदे का धोकर, दुर्लभ भक्ती चट पाते हैं ॥ २०
शास्त्रों का निश्चय निश्चित है, जीवों का मंगल इसमें है।
आत्मासे पृथक सबसे असंग, निर्गुणी प्रीति दृढ़ जिसमें है ॥२१
शुभ श्रद्धा हरिके धर्म सेइ, योगहु निष्ठा आत्मा की चाह।
योगी की सेवा नित्य करै, नित हरिचरित्र सुन भरि उछाह ॥ २२
दोहा—इंद्रिन के विषयी तजे, तिनके संगिहु त्याग।
रुचि एकांत संतोष दृढ़, अमृत कथा मन लाग ॥ २३

छ०—हिंसा तजि पारमहंस धर्म, हरि नाम कथामृत सुरति लगै।
यम नियम धारि निंदा तजिकै, सुख दुःख सहै इच्छाहु भगै ॥२४
हरिकथा कान परिपूरित हो, भक्ती प्रवाह हिय प्रबल बहै।
जगसे असंग मन ब्रह्म अगुण, महँ रति पावै सुख परम लहै ॥२५
छ०—जब निर्गुण ब्रह्ममहँ भइनिष्ठा, गुरुसे लहिज्ञान विरागप्रबल।
योगाग्नि पंचमय जीव कोश, हिय जारि आत्मा होय अचल २६
जरि अंतःकरण गुणसे हो मुक्त, नहिं आत्मा अंतर बाहिर हिलै।
परमात्मा रूप भया निश्चय, ज्यों जागे स्वप्न भरम निकलै २७

दो०—आत्मा इंद्रिय अर्थ जग, दोनों पर हंकार।
अंतरकरण उपाधि वह, तेहि बिन ब्रह्म अपार ॥

छ०—द्रष्टा अनुरंजित दृश्य माहिं, दृश्यहु द्रष्टा के सहारे है।
है अहंकार साक्षी दुहुं का, यह नाशै तो भव पारे हैं ॥ २८
जल दर्पण आदि निमित्त भये, सब रूप आत्म महँ भेद परै।
यह अंतःकरण जल दर्पण सम, मिटि आत्मब्रह्म कहँ एक करै २९
विषयों से खिंचीं इन्द्रियां तुरत, मन बुद्धि चेतना को हरतीं।
ज्यों जल तट तरु की मूल, कुंड से जल को गुप्त खींच धरतीं ॥३०
छ०—बुद्धी बिगड़े गइ चित्त सुरति, स्मृती नाश से ज्ञानहु नाश।
है भवबंधन पण्डित कहते, बंधन भ्रमही है आत्मविनाश ॥ ३१

दो०—जग में इह सम हानि नहिं, नरकहँ स्वार्थ विनाश।
आत्म चिंतवन त्यागिकै, इन्द्री विषयन आश ॥ ३२

छ०—विषयों की आश है सर्वनाश, ज्ञानहु विज्ञान तुरत नासैं।
पशु कीट वृक्ष योनी पावै, बहु जन्म फिरै न छुटैं फांसैं ॥ ३३
भव तरा चहै तो कुसंग तजि, धर्मार्थ मुक्ति जहँ नाशी है। ३४
आत्यंतिक ज्ञान से मुक्तिलेय, धर्मादिक भोग विनाशी है ॥ ३५

गुणक्षोभसे सब लोकहुकेभाव, है काल विनाशक सबसुखका ।
कसलोकहेत पचपचके मरै, ज्योंक्षीणपुण्य नहिं कोइ तिसका ३६
हे राजन सार गहो तरु नर, पशु कीट आदि तनुधारी है ।
सब में क्षेत्रज्ञ सोइ तू है, भगवान एक अविकारी है ॥ ३७

दो०—सत अरु असत सरूप जग, माल सर्प इमि भान ।
नित्य मुक्त परिशुद्ध अज, प्रकृतिहीन मन मान ॥ ३८

छं०—जिहके पदपंकज भक्ती से, कर्माशय ग्रंथि संत छोरैं ।
कोरे ज्ञानी योगी तस नहिं, भज वासुदेव चलु तेहि ओरैं ॥ ३९
भवसिंधु कठिन अति दुस्तर है, कामादिक नक्र उभरते हैं ।
हरिपद नौका गह लो राजन, सब इससे पार उतरते हैं ॥ ४०
मैत्रेय उ०—बिधिपुत्र सनक सो ज्ञान पाय, पृथु नृपति प्रशंसा करते हैं
सच है दुनियां में सत्य संत, परमार्थ हेत तन धरते हैं ॥ ४१
राजोवाच—मुझपर हरि दीनदयालु भये, सो पूर करैंको आये आप ४२
हो दयालु तुम सब पूर्ण किया, क्या दूं तुम्हार सब तेज प्रताप ४३

दो०—प्राण तिया तन पुत्र धन, राज्य कोश महि सर्व । ४४
राज्य लोक राजहु सकल, ज्ञानी हित है खर्व ॥ ४५

खावैं अपना बसैं अपने में, द्विज देंय अपन सब लायक हैं ।
क्षत्री आदिक द्विजदाया से, खाते जीते जगनायक हैं ॥ ४६
ऐसी गति आत्मज्ञान में है, एकांतिक ज्ञान मुझे दीना ।
वे प्रसन्न हैं निज करतब से, क्या देहुं सबै विधि आधीना ॥ ४७
मैत्रेयउ०—पृथुराजासे पूजितज्ञानी, नृपशील कहत गये सनकादिक ।४८
नृपश्रेष्ठ आत्मस्थिती पाय, भे आतमरूप तजि मायादिक ॥४९

सब देशकाल बल यथा उचित, धन यथाकर्म करि ब्रह्मार्पन ।५०
फल ब्रह्म राखि निःसंग आप, कहँ लखै साक्षि दीपक दर्पन ।।५१

दो०—चक्रवर्तिराजा गृही, इन्द्रीसुख सब त्यागि ।
अहंकार तजि सूर्यसम, साक्षीनृप धनि भागि ।। ५२

छ०—अध्यात्मयोगरत कर्म करैं, रानीमें सुत उत्पन्न किये ।५३
विजिताश्व धूम्रकेशौहर्यक्ष, द्रविणवृकहू है शुद्ध हिये ।। ५४
हरि आत्मा धरि सृष्टी रक्षक, सुत समान रैयत पालन कर ।५५
ह्वै सोमराजसम पृथु राजा, रवि तुल्य देत धन नृप लेकर ।। ५६
दुर्धर्ष अग्निसम अजय इन्द्र सम, मही क्षमा सम सुखदाई ।५७
बर्षतहै मेघसम सबहिं काम, वारिधिअगाध गिरि थिरताई ।।५८
शिक्षामें धर्मसम धन कुवेरसम, वरुणतुल्य रह गुप्त समान ।५९
वायू समान सबकी आत्मा, है असह शत्रु कहँ रुद्र प्रमान ।।६०

दो०—काम सरिस सुंदर अहैं, शार्दूल सम वीर ।
प्रजापाल मनु तुल्य हैं, बिधि सम प्रभुता धीर ।। ६१

छ०—हैं ब्रह्मवाद में बृहस्पती, हरि आप आत्मका तत्व लखैं ।
गो विप्र संतमें भक्तिमान, परमार्थ आप सम सब निरखैं ।।६२
त्रैलोक्य में छाई कीर्ति जासु, नर सुयश सदा नृप का गावै ।
नारीचरित्र सुन कानोंसे, रघुवीर सुयश सम सुख पावैं ।। ६३

दो०—पृथु प्रताप जाहिर जगत, पालै द्विज गौ संत ।
तजि गुमान हरिपद भजै, हिय धरि ईश अनंत ।।

भजन—भूप हैं पृथु हरिभक्त सुजान ।। टेक ।।
करिकै यज्ञ विष्णु अर्पण की, हिय न धारि अभिमान ।
याही से दाया करि नृप पर, मिले आय भगवान ।। भूप हैं०

दशहजार हों कान कथाहित, माँगि लियो बरदान ।
तापीछे सनकादिक आये, भूप कियो सन्मान ॥ भूप हैं०
सतसंगति महिमा वर्णन करि, दियो नृपति को ज्ञान ।
माधवराम प्रताप भक्त लखि, करैं सदा गुन गान ॥ भूप हैं०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः

श्लोक—त्रयोविंशे सभार्यस्य बने नित्यसमाधितः ।
विमानमधिरुह्याथ, वैकुण्ठगतिरीर्यते ॥

दो०—तेइस महँ नृप नारिसह, सावधान बन जाय ।
योगसाधि तन त्यागि कर, हरिसरूप गे पाय ॥

मैत्रेयउ०छ०—पृथुनृपज्ञानी तनबृद्धदेखि, सुतराज्य सृष्टि तनसेदेखी ।१
सत धर्मपाल चरअचरपाल, हरि आज्ञा पूर्ण भइ हिय लेखी ॥२
पुत्रों को पृथ्वी सौंपि नारि सँग, प्रजा त्यागि बनहेत गये ।३
तहँ बानप्रस्थ ह्वै नियम साधि, जग विजय हेत तप करत भये ॥४
करि कंद मूल फलहू अहार, सूखे पत्ते फिर खाये हैं ।
जल पीकर फिर कछु दिवस रहे, वायू अहार हिय लाये हैं ॥ ५
गर्मी में पंचअग्नि तापैं, बर्षा सहि शीतकाल जल में । ६
सुखदुःख सहैं बस वाक् दांत, हरि हेत करै तप उस थल में ॥७

दो०—क्रम क्रम तपकरि सोधिहिय, प्राणायाम चढ़ाय ।
छै शत्रुन कहँ जीतिकै, बन्धन दीन बहाय ॥ ८

छ०—जो आत्मयोगकह सनकादिक, उसहीसे नृप हरिभजते हैं।९
हरि धर्मधारि श्रद्धा से भजै, लही अचलभक्ति जगतजते हैं ॥१०
हरिभक्ती से है शुद्ध कर्म, मन सुमिरन में पूरी भक्ती।
बैरागसहित भयो ज्ञान जौन, निज जीवकोश[१] हरि दे मुक्ती॥११
औरों से बुद्धि भई छिन्न, आत्मगति लहि अनइच्छापन लीना।
तज दिया यत्नहू पीछे से, नहिं योग से गति हरि यशचीन्हा॥१२
आत्मामें आत्मा लाय नृपति, ह्वै ब्रह्मरूप तनु तजिदीना।१३
एड़ी से गुदा दबायवायु, नाभी से हृदय गल शिर कीना॥१४

दो०—क्रम से शिर महँ लायकै, वायु वायु महँ कीन।
महिमें तनु सब चाह तजि, तेज तेज महँ लीन॥ १५

छ०—आकाश गगनमहँ जलमहँ जल, फिर महि जलमें अग्नी में जल।
अग्नीको वायु महँलयकीना, वायू अकाश लयकीन अचल॥१६
इन्द्रियों में मन मात्रों में इन्द्रि, सब महत्तत्व में लय करके।१७
उस महत्तत्व को जीव में धर, परमात्मा महँ जीवहिं धरके॥
वैराग ज्ञानबल से तनु तजि, निजरूप ब्रह्मगहि गति पाई।१८
अर्ची रानी सुकुमारि अधिक, नहिं योग चलै पद बन आई॥१९
पतिव्रता धर्म की निष्ठा से, मुनिभोजन कंद मूल फल जल।
दुर्बल तौभी नहिं कष्ट गिनै, पतिपद सेवै तन गिनै सुफल॥२०

दो०—महिपति पति तजि दीन तनु, चेतनरहित विचारि।
कुछ विलाप करि सती वह, गिरि पर चिता सवांरि॥२१

छ०—जलमें नहाय जलदिया पतिहि, देवनप्रणाम परदक्षिणकर
पतिपद सुमिरनकर अग्नि माहिं, करिप्रवेश हिरदे सतपनधर॥

---

१ बंधन।

पृथु के पीछे ही जाते लखि, देवी औ देव स्तुति करते। २३
बाजे बजाय बहु पुष्प वर्षि, आपस में हर्ष मन में भरते॥ २४
देवाऊ० छ०—है धन्यधन्य रानी को, प्रानपति संग रमा ज्यों हरिसे मिली।
सतपन से हमसे ऊपर यह, शुभ कर्म साधि हम लखैं चली॥२६
उन नरोंको जगमें क्या दुर्लभ, तन चलसे कर्म करि हरि साधैं।२७
सो आत्मद्रोहि बंचित[1] जगमें, फँसि विषय मुक्ति नहिं आराधैं॥

दो०—तरु नरतन मुक्ती फलै, साधन शुभ जल सींच।
विषय बेलि जिन पै चढ़ी, फलै नर्क भवकीच॥२८

मैत्रे०उ० छ०—सब देवी स्तुति करैं, गई पतिलोक सती पहुंची पतिपद।
हरिमें चितधारी पृथुनृप जहँ, जो पद है योगीजनों की हद॥२९
ऐसे प्रभाववाले हरिजन, नृप पृथु का चरित बखाना है। ३०
जो सुनै सुनावै पुण्य चरित, तेहि अन्त पृथू पद पाना है॥३१
द्विज ब्रह्मतेज क्षत्री महिपति, धनपति सुवैश्य सुख शूद्र लहै। ३२
नर नारि सुनै जो तीन बार, सुतहीन पुत्र धन अधन गहै॥ ३३
शुभकीर्ति होय शठहो पंडित, कल्यानदायि अरु अशुभहरन।३४
सुनि चरित विजय को भूपचलै, पृथुसम नृप लागैं भेंट धरन॥३६

दो०—धन यश आयू स्वर्गप्रद, कलिमल हर प्रदकाम।
धर्म अर्थ मुक्तिहु चहै, सुनै लहै विश्राम॥ ३५

छ०—तजि और कथा करि विमलभक्ति, शुभचरित जोसुनैं सुनाते हैं।३७
बड़ महात्म उग्रविचित्रवीर्य, सुनिचरित पृथू पद पाते हैं॥ ३८
प्रति दिवस सुनै आदर से जो, पृथुचरित कहै सँग और तजै।
भवसिंधु नाव हरिपद भक्ती, लहै अंतगती नर जगत विजै॥ ३९

[1] ठग गया।

दो०—पृथुचरित्र वर्णन किया, नृप हरिभक्त सुजान ।
अनुमोदन करि सुनि पढ़ैं, भला करै भगवान ॥

भजन—कियो पृथुचरित पवित्र बखान ॥ टेक ॥
नृप कीरति मख हरि हरिजन मिलि, कीन्हे योग विधान ॥ कियो०
रानी पतिब्रता की करनी, लहे लोक भगवान ॥ कियो०
नर तन पाय सुनौ नरनारी, ठानौ ऐसिहि ठान ॥ कियो०
यहां कीर्ति परलोक परमसुख, आवागमन नशान ॥ कियो०
माधवराम उपाय सरल यह, सदा करहु गुन गान ॥ कियो०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः

श्लोक—चतुर्विंशे प्रपौत्रात्तु पृथोः प्राचीन वर्हिषः ।
प्रचेतसां जनिस्तेभ्यो रुद्रगीतं च वर्ण्यते ॥

दो०—पृथु प्रपौत्र प्राची वर्हिष, पुत्र प्रचेता तास ।
गये तपै पितु बैन सुनि, मिलि शिव ज्ञान विकास ॥

मै०उ० छ०—विजिताश्व पृथू सुत भूप भये, भाई वत्सल दिशि भाइहिं दी । १
हरियश्व पूर्व यम[1] धूम्रकेश, पच्छिमहु वृकहि द्रविणोत्तर ली ॥ २
गति अंतरध्यान इन्द्रहु से पाय, सुततीन शिखंडिनि तिय जाये । ३
पावक पवमान शुचि अग्निनाम, लहि शाप बशिष्ठ जन्मपाये ॥ ४
सुत हविर्धान नभसुती माहिं, जो इन्द्र अश्वहर बध न किया । ५

[1] दक्षिण ।

भूपों की वृत्ति कर लेब दंड, शुक्लादिक दारुण छोड़ दिया ॥६
तहँ हंस पुरुष परमात्महि लखि, करि समाधि पूजा लोक गये।७
नृप हविर्धान से हविर्धानि, छै सुत वर्हिष गय आदि लये ॥ ८
छ०—हविर्धानीसुत जो वर्हीषद, क्रियाकांड योग महँसदामगन।६
मुखपूर्व कुशोंसे बसुधातल, सब पूरि दिया मखमाहिंलगन ॥१०
दो०—शतद्रुति सिंधुसुता बरी, बिधिवाणी नृप मान।
सुघराई लखि डुकी जिमि, मोहे अग्नि सुजान ॥ ११
सुर असुर देव गंधर्व आदि, वह रूपवती लखि मोह गये। १२
शतद्रुती में दशबेटा नृप से, भे तुल्य नाम ब्रत धर्म लये॥ १३
पितु बचन प्रचेता पुत्रमानि, तप हेत सहसदस सिंधु चले। १४
मारगमहँ शिव उपदेशपाय, सोइ ध्यान जाप पूजते भले॥ १५
विदुरउ०—नृपपुत्र प्रचेता शिवका संग, जो कहा शंभु स्वामी कहिये।१६
शिवसंगति मिल तनुधारी कहँ, मुनिध्यावैं दर्श नहीं लहिये॥१७
है आत्माराम शिव शक्तिसहित, जन पालन हेत विचरते हैं।
भगवान सकल भयहर भव हैं, जो शरण गहैं भय हरते हैं॥ १८
मैत्रेयउ०दो०—पिता बचन शिरधार सब, पुत्र प्रचेता संत।
पच्छिम सिंधु विचारि हिय, भजे चले भगवंत ॥१६
छ०—मारगमें विमलसरबड़ा बहुत, सज्जनमनसम निर्मल जलहै२०
नीले औ लाल सब विधि के पद्म, हंसादि पक्षिगण उज्वल हैं॥२१
भूले हैं भ्रमर लखि सुमन बेलि, कमलों की रज ले वायु बहै।२२
सुनि गानमनोहर नृपके पुत्र, शुभवाद्य सहित आश्चर्य लहैं॥२३
तैसेही निकले तड़ाग से, गणसहित सदाशिव योगीराज। २४
लखि तप्तमोन सी छटा नीलगल, तीन नेत्र शिर गंगविराज॥२५

जन दुखहर धर्मवसल शिवजी, धर्मज्ञ शीलयुत लखि कहते ।२६
श्रीरुद्रउ०—हेनृपतिपुत्र जानूँकरतब, दर्शन दें भला कियाचहते२७

दोहा—त्रिगुण सृष्टि से श्रेष्ठहरि, वासुदेव भगवान ।
तिन्हैं भजै जो जीवजग, सो प्रिय हमैं सुजान ॥ २८

छ०—निज धर्मनिष्ठ सौ वर्ष मनुज, विधिपन लै जा विधिलोक बसै ।
फिर मैं ही रुद्रपदवी देता, हरिभक्त वैष्णवी पद में लसै ॥
अव्याकृत[1] सर्व प्रपंचहीन हैं, देव और हम अधिकारी ।
जब होय कलात्यय लिंगभंग[2], तब भक्त विष्णु पदवीधारी ॥२६
तुम भक्त हरी सम प्रियमुझको, ज्यों भक्तों को हरि हम प्यारे ।३०
एकांत भजन जपना पवित्र, मंगल सुखकर सुनो निरधारे ।।३१
मैत्रेयउ०दो०—दयावान भगवान शिव, नारायण लवलीन ।
कर जोरे नृपपुत्र लखि, बोले बचन प्रवीन ॥ ३२
श्रीरुद्रउ०—उत्कर्ष आपकी आत्मज्ञान में, निष्ठा मंगलहेत सदा ।
सुख स्वस्तिहोय आनंदरूप से, आराधित सर्वात्म मुदा ॥ ३३
हरि नाभिकमल सूक्ष्मेन्द्रिरूप, कूटस्थ शांत नम वासुदेव । ३४
संकर्षण सूक्ष्म दुरन्त अन्त, संसार बोध प्रद्युम्नदेव ॥ ३५
छ०—अनिरुद्ध तुम्हैं नम इन्द्रीपति, सबकी आत्मा परिपूर्ण हंस ।
स्वर्गहू मुक्ति के द्वार शुद्ध, नम हिरणगर्भ चातुर्होत्र तंतु[3] ।।३७
नम ऊर्ज पितर के अन्न प्रभू, इष देव अन्न हरि सोम आप ।
जीवों के तृप्तिदायक रसात्म, जलरूप हरत संताप पाप ।।३८
सब जीवकी आत्मा देह मही, नमो विराट वायू और प्रान ।३६
ज्ञापक अकाश बाहर भीतर, नम पुण्यलोक[4] बहु तेजवान ।।४०

---

[1] निर्विकार ।
[2] सूक्ष्म देह त्याग ।
[3] हंस शुचिषत् इति श्रुतेः ।
[4] एषवै ज्योतिषमंतं पुण्य-लोकयति श्रुतिः ।

निरवृत्ति प्रवृत्ति कर्म पितृ सुर, नम धर्मरूप मृत्युहू दुखद । ४१
आशीर्वाद मनु कारणात्म, नम धर्म वृहत श्रीकृष्ण सुखद ॥४२
दो०—तीन शक्ति युत रुद्र नम, अहंकारमय रूप ।
चित्त ज्ञानमय बाचवहु, नम सब सृष्टि सरूप ॥४३
छं०—दर्शन चाहै दीजै दर्शन, जनसे पूजित जनप्रिय मनहर ।४४
घनश्याम शोभयुत चारिभुजा,मुखकमल विराजतअधरसुघर ४५
शुक नाक भौंह शुभ कमलनैन, मुख दंतकपोल कानकुंडल ।४६
प्रियहँसनि लखनि अलकैं सुंदर, तन पीतवसन लखि मनहो अचल ॥ ४७
कंकणकर शस्त्र मेखला कटि, पगनूपुरमणि बनमाल हिये ।४८
गल कौस्तुभ सिंह कंध शोभा, श्रीअनपायिनि उरबास किये ॥४६
स्वांसा से उदर त्रिवली हलरै, गंभीरनाभि जग उपजि नसै ।५०
कटि दुकूल किंकिणिस्वर्णमणी, पदजंघ जानु अति शुभविलसै ॥
दोहा—शरत्कमलद्युति पदकमल, नख द्युति हर हिय पाप ।
संशयहर पद दर्श दै, हरौ सकल सन्ताप ॥ ५२
छं०—निजधर्मधारिको आत्मशुद्धि हित, भक्तियोगप्रद उचितध्यान ।
ज्ञानी की राह राजहु चाहैं, मिलै भक्ति से जगदुर्लभ भगवान ५४
वह दुराराध्य हरि संत मिलैं, दृढ़ भक्ति से इक हरिपद चाहैं ।५५
जहँ काल न बाधा करै कभी, भ्रूफेरि विश्व पल महँ दाहैं ॥ ५६
होवै न बरोबर स्वर्ग मुक्ति, नर सुख राजादिक है कितनी ।
आधा छन हरि के भक्त संगकरि, गति होवै जनकी जितनी ॥५७
निष्पाप चरण हरि कीर्ति तीर्थ, गंगा हरियश से छूटै पाप ।
सत दयावान शुभशीलसंत का, संग प्रभू देते हैं आप ॥ ५८
दो०—बहिर अर्थ भ्रम तजै चित, करि संतन कर संग ।
अंधकारमय जगगुफा, घुसै न पड़ि सत्संग ॥

छ०—हरिभक्तियोगसे युक्त चित्त, मुनि हरिपदगति झट लखिपावै ।५९
जहँ प्रगट विश्व फिर भासमान, वह तत्व ब्रह्म पर हिय आवै ॥६०
जो माया से यह जगत रचै, पुनि पालि हरै अविकारी है ।
नहिं आत्म लखै जहँ भेद बुद्धि, हरि आत्मतंत्र बलिहारी है ॥६१
श्रद्धा से योगी क्रिया साधि, बहु सिद्धिहेतु पूजते जिन्हें ।
तन इन्द्री मनका मालिक हरि, करि वेद तंत्र बुध भजें तिन्हें ॥६२
तुम आदिपुरुष हो एक शक्ति, सोवै तुममें जागेसे त्रिगुन ।
पुनि महत्तत्व हं गगन वायु, अग्नि जल भूमि तत्वहु सुरगन६३
आत्मांश स्वशक्ती से रचकर, यह चार भेद सृष्टी सारी ।
तिस में प्रवेशकर सुखदुख लहि, हो जीव[1] आत्मगतिहै न्यारी ६४

दो०—चंडबेग प्रभु काल तुम, करत लोक संहार ।
मेघमंडली वायु ज्यों, जीवहि जीव विदार ॥ ६५

छ०—यह करैंगे इस चिंतामें मत्त, अतिलोभ बढ़ा विषयों में पड़ा ।
प्रभुकाल तके तुम झटपछार, मूसेको ज्यों अहि चटपकड़ा ॥६६
अपमान का घर यह देह धार, को पण्डित प्रभुपदकमल तजै ।
तजिशंका दृढ़ विश्वासधारि, गुरुब्रह्मा चौदह मनुजी भजै ॥६७
गति परमात्मा है आपब्रह्म, भय सहित जगत रुद्रहु भय से ।६८
नृपपुत्र शुद्ध हिय होकै जपै, निज धर्म साधि हरि आशयसे ॥६९
आत्मा स्थित सब जीवों में, वह हरि पूजो ध्यावो गावो । ७०
यह योगसाधि धारणकरिकै, मुनिव्रत मतिथिर आदतलावो ॥७१

दोहा—जगकर्ता ब्रह्मा हमैं, सुत भृगु आदि बुलाय ।
सृष्टि हेत सब सों कह्यो, दियो सबहिं समझाय ॥७२

[1] तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न अभिचाकशीति ।

छं०—सृष्टीके हेत हम सब प्रेरित, इसही से तम हरि सृष्टिकरी ।७३
ह्वै सावधान नर युक्त जपै, कल्यान शीघ्र धरि आश हरी ।।७४
सब कल्याणों में ज्ञान श्रेष्ठ, भवसिंधु ज्ञान नौका तारै ।७५
श्रद्धायुत यह शुभ रुद्र गीत, पढ़ै शीघ्र दुलभ हरि हिय धारै ।।७६
इसमें नहिं शीघ्र करै थिर ह्वै, मम रुद्र गीत कर इच्छा पूर ।७७
उठि प्रात नम्र श्रद्धा से पढ़ै, सुनै छुटै कर्मबन्धन सब दूर ।।७८

दोहा—राजपुत्र परमात्म कर, गायो स्तुति गीत ।
एक चित्त जपि तप करौ, मिलिहैं हरि हो जीत ।।७९

भजन—कह्यो शुभ रुद्रगीत सुखदाई ।
हरि को ध्यान अंग अंगत सब, सुघर मनोहरताई ।। टेक ।।
बार बार प्रभु की शुभ स्तुति, भक्तन मन हरषाई ।
राजसुतन कहँ शिव समुझायो, तपहित दीन पठाई ।। कह्यो०
पढ़ै सुनै यह चरित मनोहर, अविरल भक्ती पाई ।
माधवराम श्याम मिलिबे हित, हरिजन दियो सुनाई ।। कह्यो०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः ।

श्लोक—प्रचेतस्सु तपस्तीव्रं तप्पमानेषु नारदः ।
पुरंजनकथाकूटं प्राह प्राचीनवर्हिषे ।।

दो०—पचीस के अध्याय महँ, प्रचीन बर्हिष भूप ।
कथा पुरंजन व्याज सुनि, पायो ज्ञान अनूप ।।

मैत्रेयउ०छ०—सुनि रुद्रगीत पूजा कीनी, शिवशीघ्रहिं अंतर्ध्यान भये। १
नृपसुत हरि स्तुति दशहजार, बरषों तक पढ़ते शुद्ध हिये ॥ २
प्राचीनवर्हि नृप कर्म मग्न, तिन्हैं नारद आत्मज्ञान दीना । ३
कर्मों में क्यों नृप भूले हो, दुख जाय मिलै सुख नहिं चीन्हा ॥४
राजो०—कर्मोंमें फँसी है बुद्धि मेरी, दोविमलज्ञान छुट कर्मफाँस ।५
धन पुत्रमें मति गृहमाहिं फँस्यो, भ्रमि जगत मार्ग नहिं मिलै उसाँस ॥६
नारदो०—नृप लखो हजारों पशुमारे, बहुयज्ञोंमें दाया तजिकै । ७
वे मरने को परखे हैं तुम्हैं, छेदिहैं मरे पर रिस भजिकै ॥ ८

दो०—सुनहु पुरंजन नृप चरित, समझौ मन धरि ध्यान ।
अति पुरान इतिहास यह, झट हो आतमज्ञान ॥ ९

छ०—थे भूप पुरंजन बहुतयशी, अविज्ञात नाम का तासु सखा ।१०
ढूंढ़ते फिरै पृथ्वी पै शरन, नहिं मिलै मलिन मन बहुत झखा ॥११
जितने पुर लखे प्रसन्न नहीं, कामना चाह काम ही चहै । १२
हिमवान के दक्षिण भरतवर्ष, नवद्वारपुरी लखि मन उमहै ॥ १३
खायां उपबन कोटहु सुवर्ण, चांदीमय गृह सों शोभा है । १४
नीलममुक्ता बैडूर्य फटिक से, रचित महल मन लोभा है ॥ १५
चौराहा मार्ग क्रीड़ाघर भी, मंदिर ध्वजपताक अति विलसैं । १६
बाहर उपबन में तरु शोभा, पक्षी औ भ्रमर गुंजरैं बसैं ॥ १७

दो०—झरना शीतल सुगंधयुत, चलती त्रिविधि बयारि ।
सर में फूले कमल हैं, मन खुश होत निहार ॥ १८

छ०—बन मृग सब बाधारहित चरैं, कोकिल जनु राहगीर टेरैं ।१९
तहँ दैवयोग से लखी नारि, दश नौकर सांथ नृपति हेरैं ॥ २०
फण पांच धरे अहिसे रक्षित, है युवा रतीसम नारि लखै । २१

नासिका दंत मुख सुंदर हैं, कानन कुंडल महँ छवि बरषै ॥२२
श्यामा सुंदरि कटिमें किंकिणि, पगनूपुर शोभा अति प्यारी।२३
देवी मानो सब अंग ढके, लज्जित गजचाल सुघर न्यारी ॥२४
मुसक्याती लखि भूपति बोले, घूंघट में तिरछी दृष्टि लखी ।२५
किसकी बेटी हो कमलनैनि, ह्यां करो काह लिये संग सखी ॥२६
हैं कौन ये ग्यारह संग बीर, ये सखियां सपंहु बतलावो । २७
हैं आप भवानी सरस्वती, लक्ष्मीजी पति ढूंढन जावो ॥

दो०—आप्त काम त्रैदेव हू, करैं तुम्हारी चाह ।
कमल कहां कर से गिरा, कहदो है उत्साह ॥ २८

छ०—इन तीनों से दूसरी नारि, इस पुरी में आसकती कैसे ।
शुभकर्मयुक्त नरबीर संग, रहने के योग हरि श्री जैसे ॥ २९
लज्जित युत भाव फिरी भौहैं, से विकल मुझे अपना कीजै ।
तुमने उपजाया कामदेव, वाधा करता दुख हर लीजै ॥ ३०
तिरछी भौहैं शुभ नैन अलक, नीली लम्बी लटकै मुख में ।
मुखबोलै मीठबचन हँसनमधु, दिखलादीजै करि सन्मुखमें ॥३१

नारदउ० दो०—इहविधि दीन पुरंजन, याचक हैं तजि धीर ।
लखिनारी स्वीकारकरि, कीन ब्याह तदबीर ॥३२

छ०—बोली नहिंजानूं अपनपिता, नहिंगोत्र अपनपर जानाहै ३३
जिसने सुन्दरि यह पुरी रची, आत्माभी नहीं पहिंचाना है ॥३४
नर नारि हैं सखा सखी मेरे, जब सोती अहि रहता रक्षक । ३५
तुम भागसे मेरी आय गये, सबमिलि सुख देहौं करि शिक्षक ॥३६
नवद्वारपुरी में बसौ आप, संग मेरे बरष सौ भोगो सुख । ३७
अतिसुखद चतुरतुमकहँतजिकै, मूरखपति करिको भोगैदुख ॥३८

धर्मार्थ काम सुत मोक्ष सुयश, शुभ लोक गृहस्थी में प्यारे ।३६
पितृदेव ऋषी नर सभी जीव, आसरे गृही के हैं द्वारे ॥ ४०
दोहा—दानी प्रिय दर्शन सबल, प्रिय आपहि से आव ।
को मेरी सी नारि जग, तुम पति नाहिं मनाव ॥४१
छ०—किस नारी का मन भुज तुम्हार, अहिफण सम लखि जिय नहिं मोहै।
आपहि अनाथ के दुखहारी, मुसकाय लखै अस जग कोहै ॥४२
नारदउ०—इसभांति समयकरि ठीकदोउ, सौवर्ष पुरीमहँ वास लिया।
गायक शुभ गावैं नारि युक्त, जल क्रीड़हि सर स्नान किया ॥४४
उस पुरी में ऊपर सात द्वार, द्वे नीचे विषय सब नृप लेते । ४५
पूरब को पांच इक इक दक्षिण, उत्तर दो पच्छिम कह देते ॥४६
खद्योत[1] विर्मुखी[2] पूर्वद्वार, जन पदको द्युमत्सख[3] नृप देखैं। ४७
नलिनी[4] नालिनी पूर्वद्वार, संग वायु मित्र सुगंध लेखैं ॥ ४८
दो०—मुख मुखिया पूरब दिशा, द्वार गनायो जात ।
रसना इन्द्रिय साथलै, नृप बतात अरु खात ॥ ४६
छ०—पितृद्वार हैं दहिना कान, पितृ के कर्मकांड श्रुतधर[5] सुनिये।
पितृकार्य करै पितृदायासे, सुखभोगि यानचढ़ि सुरगुनिये ॥५०
है देवहूय उत्तर का द्वार, देवोंका सुख[6] नृप लेते हैं ।
सुन उत्तर श्रुति से देवकर्म, करने में सुजन चित देते हैं ॥ ५१
पच्छिमी आसुरीद्वार, भोग इन्द्री से भोग सुख नृपति धरै । ५२
गुद इन्द्री द्वारा मल का त्याग, कर पुरी सफाई नित्य करै ॥५३
इन में अंधे दो हाथपांव, जिनसे चलना औ क्रिया बनै । ५४

१ कमज्योति ।
२ वहु ज्योति ।
३ चक्षु इन्द्रिय सहित जीव ।
४ नलनालशब्दौ छिद्रवचनौ तद्वती ।
५ श्रवणेन्द्री जीव ।
६ देवआराधन कर उत्तम सुख ।

रनिवास में राजा नारिसिंग, नितरहै हर्ष सुख मोह सनै ॥ ५५

दो०—फँसा कर्म महँ कामबस, रानी के आधीन ।
जोजो मंगति मोहबस, लायलाय सो दीन ॥ ५६

छ०—रानी मद पीवै पिवै आप, रानी खावै तो खाते हैं ।५७
गावै गाते रोवै रोते, हँसती हँस बोल बताते हैं ॥ ५८

अयं वै नरो वानरोऽभूद्धिलोके, गुरुस्तस्य नारी सुशिक्षाप्रदात्री ।
नचप्राप्यते सावकाशः कदाचित्, गतायुर्भवेन्नित्यशो नर्तमानः १

कवित्त—भयो नर बंदर कलंदर भई है नारि, सांस नहिं पावै दिनरातहू नचावती । अन्नवस्त्रलाव धन गहनागढ़ाव, नेक पुत्रहू खेलाव लाव २ ही मचावती ॥ माधवराम स्वबस रहै तो पावै नाहिं जीव, फेरि फेरि दुखपावै तौनही जँचावती । चेत जाव चित्त याकेफंद सों निकर जाव, अंतमाहिं ठेलि तोहिं नरक पठावती ॥ १

नाकदम करकै बनायदेत नक्कू नित्य, नेक न लगावै वार नाकहू कटावती । धाव धाव लाव लाव नरको पढ़ाय खूब, खाव खाव करती है ओठहू चबावती ॥ खाय नाहिं खान देति न्हाति न नहान देति, क्रोधभरी आप चित्त क्रोध उपजावती । माधोराम रामकी दोहाई मैं पुकारि कहौं, जियत नचावै मरेनर्कहूपठावती ॥२

दो०—नारी बनी कलन्दर, बन्दर नर भयो आय ।
चेतो तो सुधरै सही, नाहीं सबै नशाय ॥

छ०—धाये धावैं ठहरे ठहरैं, सोये सोवैं बैठे बैठैं । ५९
सुनते ही सुनैं देखे देखैं, छुए छुऐं सूंघि सुगंध पैठैं ॥ ६०
शोचत शोचैं धरि दीन रूप, हर्षे हर्षैं मनमोदभरैं । ६१
रानी से ऐसे ठगे गये, बन्दर बनिकै नृप नाच करैं ॥ ६२

दो०–जीव पुरंजन बनगया, रानी बुद्धि फँसाय।
देह पुरी नवद्वार की, विषयों में लपटाय॥
भजन–पुरंजनी राजहि नाच नचावै॥ टेक॥
पुरंजनी है बुद्धि जीव नृप, निशि दिन हुक्म चलावै॥पुरंजनी०
बुद्धि जागती जीवहु जागै, सोये चट सो जावै॥पुरंजनी०
बोलै बुद्धि जीव तब बोलै, वह खावै तब खावै॥पुरंजनी०
जस जस भाव बुद्धि महँ आवै, जीव सोइ सोई लावै॥पुरंजनी०
यासों जन्म लेत जग मरि मरि, छुट्टी कबहुं न पावै॥ पुरंजनी०
माधवराम जीवपन छूटै, रामकृष्ण गुन गावै॥ पुरंजनी०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः।

श्लोक–षड्विंशे मृगया व्याजात्स्वप्नजागरणोक्तितः।
सद्बुद्धित्यागयोगाभ्यां संसृतिः सा प्रपंच्यते॥
दोहा–छब्बिस के अध्याय में, जागृत स्वप्न विधान।
शिकार मिससों मुनि कह्यो, सतमतिगै दुखजान॥
नारदउ०–इकबार महाधनुले रथ चढ़ि, ज्ञानेन्द्रि पांच घोड़े जिसमें।
हंता ममता दो धुरा पाप, औ पुण्य चक्र दो हैं तिसमें॥
है एक प्रधान माया सुचक्र, ध्वज त्रिगुण है बंधन पांचहु प्रान।१
मन एक है जिसमें बागडोर, मति है सारथि हिय गादी मान॥
द्वे शोक मोह गुंबज प्रहार, हैं पांच विषय चाबुक जानो।
सब सामग्री रथ सात धातु, पंचेंद्री कर्म चाल मानो॥२

है कवच रजोगुन सोने का, हंकार वासनायुत तरकस।
मन सेनापति गिरि शिखर, विषय है पांचभोग बन सपने बस ॥३
दोहा—रागादिक के रूप शर, भोगवृत्ति धनु जान।
सद्बुद्धी रानी तजी, विषयी मनहि सुहान ॥४
छं०—राजसीवृत्तिमय घोरात्मा, निर्दयी बान से मृग बेधै।
हैं विषय बाण बन भजन ठौर, हरि भजन मृगीगण अनुरोधै ॥५
श्राद्धादि विषय में जीव का बध, मतलब भर वाजिब भूप करै।
पहले तो हिंसा निषेध है, यदि यज्ञ में राजा बन विचरै ॥
तहँ पवित्र पशु सो कर्म मात्र से, अधिक नहीं राजहु मारै।
कलियुग में श्राद्ध में मांस मने, यह नियम सत्य दिलमें धारै ॥६
विद्वान कर्म जो नियत करैं, हिय ज्ञान धरैं नहिं बंधै कर्म ॥७
अभिमान से उलटा करिकै कर्म, जाते हैं नर्क बिगड़ता धर्म ॥८
दोहा—बानों से तन बिधा है, दुःखित हैं सब जीव।
दयावान को असह है, नाशै जीव अतीव ॥९
छं०—शश बराह भैं से गवय शल्य, बहु जीवमारि श्रम पाया है।१०
भूखा प्यासा लौटा राजा, श्रम खोय न्हाय घर आया है ॥११
तन साजि वस्त्र आभूषन से, रानी की यादगारी कीनी ।१२
मनहर्ष काम से व्याकुल हो, है रानी कहां अस मति लीनी ॥१३
रनिवास में दासीजन पूंछी, कहो कहां मालकिन है तुम्हरी।
जिसके बिन घरकी नहिं शोभा, जो उदासता हरती हमरी ॥१४
जो घर में मा प्रियनारि नहीं, रथ टूटे सम गृह दुखदाई ।१५
दुख हरनेवाली प्रिया कहां, पग पग में हम कहँ सुखदाई ॥ १६
रामाऊ० दोहा—राजन हम समझैं नहीं, करतब रानी केर।
बिना बिछौना भूमि पर, सोय रहीं मुहँ फेर ॥१७

नारदउ०छं०—महिपरी पुरञ्जन लखिरानी, संग सुमिरि विकलता छाई है।
दिल कँपै मधुर कहि समझावै, तनपर्श प्रिया नहिं पाई है ॥१६
रानी को मनाते बड़े चतुर, पग सेवा करके कहते हैं।
जे कामी नर ते इसी भांति, तिरिया की बातें सहते हैं ॥२०
पु०उ०—ईश्वरसे पुण्यहीन वे हैं, अपराध पै शिक्षा दंड नहीं ।२१
सेवक पै दंड मालिक की कृपा, मूरख नहिं लखते इसे सही ॥२२
हे सुघरदंतवाली प्यारी, शुभ भौंह लाज युत मुख सुंदर।
अलकावलि नकबेसर सुधार, दिखलाव हमैं कुछ कहो मधुर ॥२३

दोहा—को अपराधी है तेरा, ताहि देहुं मैं दंड।
द्विज हरिजन को छोड़िकै, ये सब भांति प्रचंड ॥२४
तिलकहीन अति मलिनमुख, हर्षहीन भरिक्रोध।
शोकयुक्त सब अंग हैं, लखि हिय होत न बोध ॥२५
बिन पूंछे मृगया गया, क्षमौ मोर अपराध।
अपने बश ग्रस्यो कामशर, प्यारी अब लो साध ॥२६

भजन—नारीमुख पै पुरंजन दिवाने भये ॥ टेक ॥
सब सतकर्म शिकार मारिकै, सजिकै रानी मनाने गये ॥ नारी०
विषय विचार मनाउब बहुविधि, करि उपाय बहु नये नये ॥नारी०
पगसेवा आधीन नारि के, ठाढ़े थर थर काँपैं हिये ॥ नारी०
मुख मलीन जब लखी पुरंजनि, तबतो तीनहु ताप तये ॥नारी०
जसजस ताहि मनावत चित दै, तस तस बिष के बीज बये ॥नारी०
माधवराम कृष्णपद लपटे, आपन सर्वस सौंप दये ॥ नारी०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे सप्तविंशोऽध्यायः ।

श्लोक—सप्तविंशे प्रियापुत्राद्यासक्त्या विस्मृतात्मनः ।
कालकन्याद्युपाख्यानैर्जरारोगाद्युदीर्यते ॥

दो०—सत्ताइस अध्याय में, सुत तिय नृप करि मोह ।
बृद्धापन बहु रोग से, व्याकुल ह्वै मन छोह ॥

नारदउ०छं०—इस तरह पुरंजननृप बशकरि, नितपुरंजनी सुखभोगकरै। १
हो प्रसन्न सजकै न्हायधोय, करि मङ्गल नृप मन हर्ष धरै ॥ २
तिसमें रमि सलाह से बस हो, नहिं काल कराल नृपति जाना ।
मद करनेवाली प्रमदासंग, दिनरात शौक ही में साना ॥ ३
पलकों पर सोये गले हाथ, रानी सँग है खुश होते हैं ।
अपना परावं कुछ समझ नहीं, सुख विषय में खाते गोते हैं ॥ ४
सुख भोग काम से व्याकुल चित, आधे छन सम सब उमरगई । ५
रानी में सैकड़ों सुत कन्या, भये आधी बयस झट पार भई ॥ ६
लड़की लड़के गुण शीलवान, निज मातु पिता के यशकारी । ७
लड़की लड़कों के ब्याह किये, बर कन्या सुभग शीलधारी ॥ ८

दो०—पुत्रों के फिर पुत्र भे, सौ सौ इक इक माहिं ।
बढ़्यो पुरंजय बंश बहु, कतहूं नाहिं समाहिं ॥ ९

छं०—तिस कुटुंब घर धन आदिक में, नृपजू करि मोह भये मति गुम १०
करि यज्ञ मारि बहु जीवों को, पितृदेव मनाये जैसे तुम ॥ ११
इस भांति कुटुम में फँसा चित्त, अप्रिय प्रियनारि काल आया १२

गंधर्वपती[१] है चंड वेग, सौ तीन साठ योधा लाया ॥ १३
गंधर्वी[२] भी उतनी ही संग, काली[३] उजली[४] पुर लूट रही । १४
नृप सेवक भागे वह लूटै, तब प्राण सर्प तहँ लड़ै सही ॥ १५
हैं बीस सात सौ सब मिलि कै, सौ वर्ष लड़े पुररक्षक सँग । १६
संबंध कुटम का छूट चला, भे विकल पुरंजन बिगड़ा ढँग ॥ १७

दो०—भूपति निज पंचालपुर, भेट सबन सों लेत ।
स्त्रीजित भूले सबै, दुख में चित्त न देत ॥ १८

छ०—पति ढूढै काल सुता त्रिलोक महँ, कोई न ब्याह करै उसका । १९
निज कुभागवस दुर्भगा बनी, पुरु ने ली नृपपद बर तिसका २०
विधिलोक से आते लख मुझको, मुनि लखि मोहित ह्वै पति चहती २१
नाहीं सुन कहीं न थिर बैठो, क्रोधित ह्वै शाप मुझे कहती २२
हमने बतलाया भय पतिको, चट रोगों के पति पास गही । २३
पति मेरे तुम भय हो जावो, संकल्प न खाली जाय सही ॥ २४
दुनियां में दोहैं शोचनीय, नहिं देंय न दाता से लेवैं । २५
मैं भजूं तुम्हैं तुम भजौ मोहिं, करि दया दीन पर सुख देवैं २६

दो०—काल सुता के बचन सुनि, भय बोले मुसकाय ।
देव गुप्त कारज चहै, तासों देत बताय ॥ २७

छ०—मैं ने चितसे निश्चय कीना, तुवरूप देखि नहिं लोक चहै २८
छिपके तुम भोग करो जगको, है कर्म विवश नहिं दोष कहै ॥
जावो संग फौज लेहु मेरी, गंधर्व गंधर्विनी की भारी ।
सबलोक प्रजा का नाश करो, रैयत तुम्हारि दुनिया सारी ॥ २९
प्रज्वार ये मारक विष्णुज्वर, भाई मेरा तुम बहिन भई ।
तुम दोनों को संग ले विचरो, हर ठौर गुप्त सँग सेन लई ॥ ३०

१ दिन २ रात ३ अंधेरी ४ उजियाली

दादरा—बुढ़ाई जीवन को दुखदाई ।
बालकपन तो जात न जानो, ज्वानिहु मारि भगाई ॥ टेक ॥
कील कील भै ढील देहकी, टेढ़ कमर ह्वै जाई ।
खाल सुखाय गई मुखकी सब, दांतन दीन दोहाई ॥ बुढ़ाई०
पग पग धरत परत मुशकिल है, नस नस सबहिं पिराई ।
पूत पतोही घरवारे सब, तापर डाट बताई ॥ बुढ़ाई०
तिनका टरै नाहिं टारे से, तृष्णा नित्य सवाई ।
माधवराम निवाह करैंगे, गुण गावैं हरषाई ॥ बुढ़ाई०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे अष्टाविंशोऽध्यायः

श्लोक—अष्टाविंशे तु वैदर्भ्याख्यानेन स्त्री विचिंतया ।
स्त्रीत्वं प्राप्तस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिरुच्यते ॥

दो०—अट्ठाइस अध्याय में, भये पुरंजन नारि ।
पीछे से द्विज मित्र हरि, लीनो ताहि उबारि ॥

नारद उ०—भय भूप की सारी फौज, बुढ़ापा कालज्वर सेनापति है ।
संसार माहिं विचरैं मारे, सब कहँ नहिं उन पर आपति है ॥ १
इकबार पुरंजन की नगरी, घेरी सुखमय अहि से रक्षित । २
तब कालसुता ने भोगापुर, जिस संग से होता हीन बलित ॥ ३
उसने भोगी तब यवन रोग, सब घुस द्वारों से भगदर की । ४
तब नृपति पुरंजन पीड़ित भे, अभिमान कुटुम ममता घरकी ५

कन्या[१] हरलीनी श्री तनकी, गंधर्व रोग मिलि सब संपति। ६
सब पुरी चूर सुत पौत्र दुखी, उलटे बिन प्रेम नारि है विपति ७

दो०—कालसुता पकरे नृपहि, पुत्रन घेरो रोग।
चिंता से निशि दिन मरै, कुछ न बनै संयोग॥ ८

छं०—कन्या से ग्रसित चाह भारी, गतिहीन दीन सुत तिय पालै ९
गंधर्व यवन से दबी पुरी, राजा से छूटि न मन हालै॥ १०
भय का जेठा भाई आया, प्रज्वार हेत जारी है पुरी। ११
तब नारि सुता सुत कूटुम सहित, नृप व्याकुल सेना काल जुरी १२
उस कन्यारोगने घेरा घर, लखि पुरी जरी पुरपाल[२] विकल। १३
कांपै पुर रक्षा करि न सकै, ज्यों जरो वृक्ष लखि सांप निकल १४
गंधर्व हरयो बल छीन अंग, घेरे हैं यवन (रोग) राजा रोवै १५
सुत कन्या पौत्र जमाई सब, घर धन तन छूटै सब खोवै॥ १६

दो०—बनि गृहस्थ मैं मोर घर, शोचत नारि वियोग। १७
यह अनाथ मेरे मरे, कहां लहैं सुख भोग॥ १८

छं०—न्हाते न्हावै खाते खावै, क्रोधित लखि चट चुप हो रहती।१९
हो दुखी दुःख में समझावै, मरिहै पीछे नहिं दुख सहती॥ २०
कैसे बेटा बेटी ये दीन, जल टूटि नाव बिन मेरे रहै। २१
यों दीनबुद्धि से नृप सोचै, भय सेनापति यहि गहा चहै॥२२
पशुसम क्षय को ले चले रोग, सब संगी चले शोचि रोवै। २३
तजि पुरी सर्प भी भाग गया, तब पुरी गिरी महिमय[३] होवै॥२४
खींचता नृपति को यवन[४] जोर, अंधे नहिं लखैं पुरान[५] सखैं २५
निर्दयी यज्ञपशु छेदैं इसे, शस्त्रों से नृप फल पाप चखैं॥ २६

[१] वृद्धावस्था। [२] प्राण। [३] पंचतत्व। [४] काल। [५] ईश्वर।

दो०—नृप रानी के संग से, बुद्धि नष्ट तम माहिं।
बहुत वर्ष लगि दुख सह्यो, छुट्टी पावत नाहिं॥ २७
छं०—रानी ही मनमें धरी इसी से, विदर्भ नृपकी कन्या बन। २८
मलयध्वज पांच जीति ब्याही, राजा पण बलही दीनो रन॥ २९
तिसमें कन्या इक कृष्ण[१] दृष्टि, सुत सात[२] द्रविडपति उपजाये। ३०
फिर एक एक में अर्बन भे, मलयध्वजवंशी महि छाये॥ ३१
धृत वृत असितेक्षण[३] बेटी को, दृढ़व्रत अगस्त्य[४] ने ब्याह लिया।
जो इध्मबाह[५] के बेटे हैं, गुरुभक्तिहि से उत्पन्न किया॥ ३२
मलयध्वज पृथ्वी सुतहिंबांटि, भजिबेको कृष्णकुल गिरिहिचले ३३
घर भोग पुत्र सबतज रानी, शशि संग कांति चलि संगहि ले ३४
दो०—चंद बसा सु बटोदका, ताम्रपर्णि जल माहिं।
निर्मल जल स्नान करि, अंतरपाप नशाहिं॥ ३५
छं०—फल मूल कंद पत्ता तृण जल, खा तपसे देह सुखाते हैं। ३६
जल गर्मी जाड़ा भूख प्यास, सुख दुख सम मन में लाते हैं ३७
यम नियम ज्ञान तप से शुचिमन, इन्द्रीजित आत्मा ब्रह्म धरैं ३८
खंभे से एक थल सौ वर्षों तक, खड़े कृष्ण में प्रेम करैं॥ ३९
आत्मा को सबमें आत्म में सब, सब जगत स्वप्न साक्षी निरखैं ४०
हरिरूप गुरुके शुद्ध ज्ञान से, विश्व आत्मा ब्रह्म लखैं॥ ४१
दो०—परब्रह्म में आत्मा, आत्मा में परब्रह्म।
नृप तनु तजि सोई भये, छोड़्यो जगत अरम्भ॥ ४२
छं०—वैदर्भी मलयध्वज पतिकी, नितसेवा पतिव्रता करती ४३

---

१ कृष्ण स्मृति। २ सात पुत्र श्रवण मननादि।
३ कृष्ण सेवा रुचि ही कन्या। ५ अग्निरूप ईश्वर।
४ अगानि निष्क्रियाणि गात्राणिस्त्यायति संयातयतीति-अगत्यो मनः।

तजिभोग चीर धरि जटाकेश, ब्रतकृश स्वाहा अग्नी धरती ४४
पति मृतक न जाना रानी ने, पहिले की भांति सेवाहु करी ४५
गर्मी न पाय तन मृतक जान, जिमि यूथभ्रष्ट मृगि विकलपरी ४६
अपना को सोचै कुटुमहीन, अतिदीनविकल रोदन ठाना ।४७
उठिये राजन पृथ्वी पालिय, तुम नहीं शत्रु करैं मन माना ॥ ४८
इस भांति कहै रोवै बन में, चरणन में परी आंसू ढारै । ४९
रचि चिता देह धरि पति की तहां, जरिबे को संग मनमें धारै ५०

दो०–पूर्व मित्र ब्राह्मण कोई, आयो आतमवान ।
रोवति रानी धीर दै, समझायो विज्ञान ॥ ५१

ब्राह्मणउ०छं०—कोतुमकिसकी यहकौन, मित्रमैंअगलासँगविचरौंजानो ५२
नहिं मित्र जानता निज सरूप, तजि मोहिं भोगरत मन मानो ५३
हम तुम हैं हंस मानसबासी, दोउ मित्र संग बर्षों से रहे । ५४
तुम हमें छोड़ जगसुख भोगे, नारी से रचित पुरबास चहे ॥ ५५
पुरमें है विषय पांच उपबन, नव छिद्र द्वार पुर पाल प्रान ।
अग्नी जल तेज है तीन कोष्ठ, मन ज्ञानेंद्रिय छै कुलौ बखान ५६
कर्मेंद्रिय पांच दुकानदार हैं, प्रकृति प्रजा सब तत्वहु जान ।
स्त्री है बुद्धि मालिक जिसमें, ऐसा यह पुर नरदेही मान ॥५७

दो०–कुल इन्द्रिन को वृन्द है, माया क्रिया प्रधान ।
शक्ती का पति पुरुष है, बसिकै आप भुलान ॥ ५८

छं०—पुरमें रानीसंग रमिके तुम, शुधिभूलि नारिमय नारि भये ५९
नहिं विदर्भ कन्या तुम न पती, तुम नृपति पुरंजन भूलि गये ६०
नारी को पुरुष नरको नारी, पतिमानै छल हरि की माया । ६१
हम तुमहैं तुम हो मेरा रूप, नहिं ज्ञानी भेददृष्टि लाया ॥ ६२

दर्पण में नेत्र से जैसे नर, दो रूप लखै हम तुम तैसे।
यह समझो रानी हो राजा, नहिं नारी हो देखो ऐसे॥ ९३

दो०—हंस ईश उपदेश सुनि, जीव हंस गइ शूल। ९४
वर्हिष नृप यह गुप्त है, ज्ञान विष्णु अनुकूल॥ ९५

भजन—लगे मन जहां मरे सोइ होय।
नारि रूप भे नृपति पुरंजन, रानी मनमें गोय॥ टेक॥
जे सुत धाम देह महँ अटके, आपन सर्वस खोय।
घर में मूस बिलारि कीट हों, देखहु शास्त्र टटोय॥ लगै०
कर्महीन तन नीक न पावै, कुकर्म बीजहि बोय।
भूख प्यास बहु विपति उठावै, मरि मरि रोना रोय॥ लगै०
याते करै सुसंग जन्म भरि, या पड़ि जावै सोय।
माधवराम कृष्ण गुन गावै, हियरा डारै धोय॥ लगै०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे अष्टाविंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः

श्लोक—ऊनत्रिंशेपरोचार्थव्याख्यानेनोपसंहृतम्।
स्त्रीसंगतो भवस्त्वीशसंगान्मुक्तिरितिस्फुटम्॥

दो०—उनतिस के अध्याय में, नारद ज्ञान समेटि।
कह्यो ईश संग मुक्ति नर, नारि होय तिय भेटि॥

प्राचीन वर्हिरु० छं०—हेनारदजी हम नहिं समझे, नृप कहै ये ज्ञानीनर जानैं।
हमतो कर्मों से मोहित हैं, दिन रात यज्ञ कर्महिं ठानैं॥ १

नारद उ०—नृप जीव पुरंजन है जानो, चौरासीलक्षयोनि पुर हैं २
ईश्वर है अविज्ञात साथी, गुण क्रिया से नहिं जानै नर है ॥ ३
माया के तन सब पुर देखै, दो हाथ पांव नरतन भाया । ४
बुद्धी नारी हंकार मोर मैं, करैं कर्म फिरि दुख छाया ॥ ५
ज्ञानहु कर्मेंद्री सखा सखी, तिनकी बृत्ती सर्पहु है प्रान । ६
मालिक मन दोनों बृंदका है, पंचाल विषय द्वारहु नवजान ॥७

दो०—आंख नाक मुख कान हैं, गुदा मेढ़ू विख्यात ।
इन्द्री युत दो द्वार से, बाहर आवत जात ॥ ८

छ०—दो नाक आंख दो मुख ये पांच, पूरब दरवाजा सब जानो ।
दक्षिण दरवाजा दहना कान, उत्तर बायां कानहु मानो ॥ ६
पच्छिमी द्वार हैं गुदा मेढ़ू, खद्योताविर्मुहं नैन अहे ।
तन का स्वामी यह जीव लखै, इन्द्रीयुत नेत्र सरूप लहैं ॥ १०
नालिनि नलिनी नाकहुसे गंध, मुख विपण स्वादले बचनकहै ११
आपण व्यवहार अन्न बहु मुख, पितृहू सुरहु दोउ कान रहै ॥ १२
पितृ कर्म प्रवृत्त निवृत्त देव, पितृ देव यान कर्मी पावैं । १३
आसुरीद्वार दे भोग लिंग, यह दुर्मद गुदा निरिति गावै ॥ १४

दो०—गुदा प्राणगत नर्क मिल, तहँ अंधे दो और ।
हाथ दोउ से कर्म करि, पांव फिरैं सब ठौर ॥ १५

छ०—रनिवासहृदयमनसूचकहै, सतरजतमगुण ममताहै प्रसाद १६
बुद्धी रानी जस करै वही, नृप जीव करै लखै मानै याद १७
रथ देह अश्व इन्द्री संबत गति, कर्मचक्र ध्वजा गुन तीनो ।१८
बंधन हैं प्रान मन बागडोर, सारथी बुद्धि थिति हिय लीनो ॥
सुख दुख गुम्बज सब विषय बान, सातहु धातू सामग्री सब ।१६

बाहरी विषय रुचि है शिकार, इन्द्री सेना मृगया करतब ॥ २०
है चंडबेग यह काल साल, रात्री गंधर्वी गंधर्व दिन ।
सब साठ तीन सौ उमर हरैं, करके मासहु निशिदिन पल छिन २१

दो०—कालसुता है वृद्धपन, आदर करै न कोय ।
बहिन बनाई मृत्यु तेहिं, लोक नाश कर सोय ॥ २२

छ०—आधी[1] व्याधी[2] हैं यवन रोग, दो प्रकार ज्वर प्रज्वार भया २३
तन से ही भये बहु दुख भोगै, अज्ञान फँसे सौ वर्ष गया ॥ २४
मन इन्द्री प्राण के धर्म आत्म महँ, गुनि सुख संसारी सुमिरै २५
भगवान गुरू निज आत्म न लखि, मायाके गुण में जीव परै २६
गुण मानी कर्म नर करै बिवश, उत्तम मध्यम निकृष्ट ठानै ।२७
शुभलोक लहै कहुं भूमिलोक, भटकै चौरासी दुख छानै ॥ २८
कहुं स्त्री पुरुष नपुंसक कहुं, सुर मनुज देह तिर्य्यग लेवै । २९
ह्वै दीन भूख मर प्यास सहै, घर २ कूकर ज्यों दुख सेवै ॥ ३०

दो०—काम भरो तिमि जीव यह, ऊपर नीचे जाय ।
सुर नर कीट पतंग महँ, भाग भोगते धाय ॥ ३१

छ०—देहिक दैविक भौतिक हैं ताप, तिनमें नहिं एकहु जड़से जाय
जो प्रतिक्रिया करता है जीव, उससे नहिं एकहु दुख नशाय ३२
जैसे शिरमें बहु भार लिये, थकि कांधे धरि तैसी करतब । ३३
नहिं कर्म का कर्म से प्रतीकार, ज्यों स्वप्न स्वप्न में देखै सब ३४
नहिं अर्थ सत्य संशय न जाय, मन लिंग रूपसे स्वप्न है सच ३५
आत्मा है अर्थ संसृति अनर्थ, गुरु हरि में भक्ति करके ले जच ३६
भगवत श्रीवासुदेवजी में, करि भक्ति ज्ञान वैराग गुनै ।३७
जब भक्ति होय हरि कथा सदा, श्रद्धा से पढ़ै नित कथा सुनै ॥३८

१ मन रोग २ देह रोग ।

हे राजन जहां साधु होवैं, भगवत गुन कहैं सुनैं वारे। ३९
तिनके मुंह से हरि कथा, अमृत की बहती हैं नित प्रति धारें॥
दो०—कान द्रोण करि पियैं जे, पीवत नाहिं अघाहिं।
भूख प्यास भय शोक सब, तिन्हैं नहीं समुहाहिं॥४०
छ०—मोहादिकसे यह विकलजीव, हरिअमृतकथामें रति न करै४१
बिधि रुद्र दक्ष मनु प्रजापती, सनकादिक निष्ठा हिये धरै॥४२
अत्री मरीचि पुलहौ पुलस्त्य, क्रतु भृगु वशिष्ठ हम सब ज्ञानी ४३
विद्या तप समाधिहू ठानै, हरि लखैं सबहिं तेहि नहिं जानी॥४४
विस्तार वेद बहु में विचरैं, मंत्रों में गुप्त नहिं भजेहु मिलै।४५
जिसके ऊपर हरि दया करै, तजि लोक वेद निष्ठा निकलै॥४६
तिससे नृप अर्थप्रद जे कर्म, उन पर तुम दृष्टी नहिं लावो।
बंधन करनेवाले हैं सबी, सुनि सुख गुनि मत धोखा खावो॥४७
दो०—जानत नहिं निज लोक तुम, जहां बसैं भगवान।
कर्ममयी वेदहु कहैं, धूम बुद्धि अज्ञान॥४८
छ०—महि भरमें मख के कुश फैले, बँधि जीव कर्मके अभिमानी।
वह विद्या है बुधि हरि में करै, है वही कर्म मिलैं धनुपानी॥४९
जीवों के आत्मा प्रकृति हरी, गहु चरणकमल जन सुखदाई।५०
वह हरिको प्रिय जो अभयदेय, सो पंडित गुरु हरिकहँ पाई॥५१
नारदउ०—तब प्रश्नोत्तर सब पूर भये, निश्चित कहना मेरा सुनिये।५२
गुञ्जरित भ्रमर शुभबाग तहाँ, व्याधहु वेधित शर मृग गुनिये॥
पर जीव प्रान लै तन पोषहि, अज्ञानी नर नहिं कुछ लेखैं।
भेड़िया मौत आगे न लखै, नहिं काल वधिक पीछे देखैं॥५३
दो०—सधर्म वाली नारि महँ, पुष्प गंध सम जान।
लव सुख इसही देह के, ढूंढि रह्यो अज्ञान॥

छ०–नारी ही में मन प्रवेश करि, इन्द्री के बस ह्वै गान सुनै।
आगे दिन निशि दोउ बयस हरैं, अरु काल बधिक पीछेसे धुनै॥
प्राचीन वर्हि नृप भिन्न हृदय, निज आत्मा को तुम बेगि लखो।
कहना सुनि मेरा चेत जाव, नहिं बार बार भव परिकै झखो ५४
मृगसम निज भितरी चित्त लखो, कामों की धार सरि दिलमें धरो
खोटामारग नारीसँग तज, हंसोंकी शरण हरि हिये करो॥ ५५
राजोवाच–कहना तुम्हार सम झा स्वामी, पंडितजेहि जानैंक्योंनकहैं ५६
संदेह हमारा दूर भया, बिन इन्द्रिय के मुनि मोह रहैं॥ ५७

दो०–कर्म करै नर त्यागि तन, फिर दूसर तन पाय।
भोगत हैं परलोक महँ, सुख दुख यहां उठाय॥ ५८

छ०–यह वेद वाद जहँ तहाँ सुनै, कृत कर्म मरे फलदायक है।
कृत पुराय लोक होते हैं छीन, कर्ता जो कर्म विधायक है॥ ५९
नारदउ०–स्थूलदेहसेकर्मकरै, भोगै तनधरि नहिंसूक्ष्मविनास।६०
तन जीवहिं सोवत छोड़मनहिंमें, स्वप्न माहिं सुखभोग विलास ६१
सुत आदि करैं कृत लेय पिता, त्यों जीव कर्म गहि जन्मै जग ६२
कर्महु ज्ञानेंद्री कृत चित ले, चित गहै कर्मफल जाता ठग॥ ६३
इस देह से देखा सुना न है, भोगै आत्मा गुमान लावै। ६४
तिसहीसे जीवको देह मिलै, निज अनुभव लखु तन नहिं पावै ६५

दो०–भल अनभलहू होन की, नर को मन कहि देत। ६६
बिना सुने दीखे ये मन, देश काल कृत नेत॥

छ०–औरहीदेशगिरि समुद्रहू, निशिदिवसनखत निज शिरछेदन
यह अदृष्टश्रुत कहिये राजन, सोवत में लखि नहिं लहि भेदन ६७
बिनक्रम इन्द्री मनमें आवै जावै, सब मनवाले हैं जगप्रानी।६८

हरि निकटवर्ति शुध सत्वमयी, मनमें भी विषयगति लपटानी ॥
ज्यों शुद्ध सत्वगुणमयी चन्द, तमराहु ग्रसै त्यों हिय आनै ।
त्यों ज्ञानी भक्तों के दिल में, अज्ञान प्रबलताई ठानै ॥६६
स्थूल देह नाशे न मुक्ति, मेरा मैं भाव जीव धारै ।
जब तक ये सूक्ष्म तनु मन इन्द्री, बुद्धी अनादिपन नहिं टारै ॥७०
मृत्यू दुख शोकहु औ मूर्छा, ज्वर आदिक में नहिं अहं फुरै ।
स्थूल देह का कम है ख्याल, मन विकल कौन अब अहं करै ॥७१

दो०—गर्भ वाल्य ज्वानी जरा, जीव में ग्यारह भाव ।
सच्चे नहीं ज्यों चन्द्र में, बढ़ घट कला दिखाव ॥७२

छ०—नहिं अर्थ तहूं संकट न जाय, ज्यों स्वप्न में कष्ट अनेक लहै ।
जल में डूबै पर्वत से गिरै, स्वप्ने में मरै कोइ गला गहै ॥७३
ये पांच तत्व गुण तीन देह, सोलह विकारमय जीव गँसा ।७४
गहि देह तजै इसही से जीव, भयहर्ष शोक दुख जाल फँसा ॥७५
तृण जोंक चलै पद जमायकै, त्यों जीव मरे नहिं अहं तजै ।७६
कर्मों से फिर भी देह गहै, जीवों का मन ही बंध भजै ॥ ७७
इन्द्री कर्मों की सुरति धरै, करि कर्म अविद्या जीव गँसै । ७८
यह झगड़ा हटने को हरि भज, उपजै विनसै जग हरिमें बसै ७६
मैत्रेय उ० दो०—जीव ब्रह्म दोउ हंस गति, नारद दीनि लखाय ।
आदर आज्ञा पाय कै, सिद्धलोक गे धाय ॥८०

छ०—प्राचीन वर्हि नृप राज्य सुतनदै, कपिलाश्रम तपहेत गये ८१
हरिपद में चित्त लगाय देह तजि, शीघ्र नृपति हरिरूप भये ८२
अध्यात्म गुप्त गाया भूपति, पढ़ि सुनि यह जीव मुक्ति पावै ।८३
हरि मुकुंद यश नारद गाये, आत्मा पवित्र सुनि हो जावै ॥

कीर्तन करि उत्तम गति पावै, नहिं भ्रमै भूलि भ्रम माया से।
हो मुक्त संग विचरै जग में, गति मिलै संत की दाया से॥ ८४
शुकदेव कहैं सुनिये राजन, अध्यात्म ज्ञान मैं धारे हूं।
स्त्री आश्रम तज दिया, आत्म कहँ बंधन से उद्धारे हूं॥ ८५

भजन—दादरा—कठिन बंधन नारी है जग माहीं॥ टेक॥
नारी नहिं छोड़ै जबलौं नर, तजै प्रान तन नाहीं।
करत गुलामी पुरुष दिवस निशि, ताहू पै धरि खाहीं॥ कठिन०
मनमानी करैं बार न लावैं, सपनेहु नाहिं सकाहीं।
सुधरैं तो अपने ही मन से, गुरुहू की गुरु आहीं॥ कठिन०
फंसै फेर में जो कोउ इनके, घोर नर्क महँ जाहीं।
संगत से गुनहू यह उपजैं, औगुनमूल दिखाहीं॥ कठिन०
बँधे कृष्ण औरों की गति क्या, हम पद शीश नवाहीं।
माधवराम दया करो हम पर, कृष्ण गहो मेरी बांहीं॥ कठिन०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकोनत्रिंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः।

श्लोक—तत्र त्रिंशे तपस्तुष्टादीशाल्लब्धवरास्ततः।
आगत्य वार्क्षीमुद्वाह्य राज्यं चक्रुरितीर्यते॥

दो०—प्रचेतसहुं बरदान लहि, हरिपद कीन्हा ध्यान।
वार्क्षी कन्या ब्याह गहि, राज तीस में जान॥

विदुर उ० छं०—नृपपुत्र प्रचेता हे ब्रह्मन, हरिप्रसन्नकरिकिमिसिद्धिलही १

शिव मिले भक्ति पाई हरि की, मुक्ति तो मिलै अस पंथ गही २
मैत्रेय उ०—पितु आज्ञाकारी प्रचेतसा, भीतर समुद्र के हरि सुमिरैं। ३
दशहजार बीतीं वर्ष, हरी प्रकटे भक्तों के दुःख हरैं॥ ४
जिमि सुमेरु ऊपर सूर्य, गरुड़ चढ़ि पीतांबर हरि धारे हैं।
घनश्याम कंठ मणि लसै स्वच्छ, दशदिशा प्रकाशनवारे हैं॥५
शिर क्रीट मुकुट कानन कुंडल, शुठि झलक कपोलन छाई है।
सब अंग मनोहर आठ भुजा, अनुचर सँग कीरति गाई है॥ ६
बनमाल भुजों की शोभा गहि, लक्ष्मी से स्पर्धा लीनी।
शरणागत नृप सुत वरदाता, गम्भीर बोलि दाया कीनी॥ ७

दो०—शिव जापर दाया करैं, तापर हरिहु दयाल।
भेद भाव तजि भजन कर, ताहि मिलैं नँदलाल॥

श्रीभगवानुवाच—नृपपुत्रसबैबरमांगिलेहु, भाइनमेंप्रेमलखिप्रसन्नहम८
तुम भाइन की सुमिरै जो सुमति, भाइयों में सपने न होय गम ९
जो रुद्र गीत से प्रात साम, स्तुति कर बरबुद्धिहु पावै। १०
पितु आज्ञाकारी तुम सब सुत, लोकों में कीर्ति जाय छावै॥११
ब्रह्मा के गुण वाला शुभ सुत, हो त्रिलोक में कीरति जाई।१२
कंडू मुनि प्रम्लोचा कन्या, जो वार्क्षी कन्या जग गाई॥ १३
बालक थी विकल तहां रोवै, मुखमें शशि आय अङ्गुली दै।१४
सृष्टीहित पितुआज्ञा भजिहरि, सब करौ सृष्टि ये कन्या लै॥१५

दो०—अलग धर्म नहिं सबहिं कर, सबही करियो ब्याह।
अष्टक् धर्मशील यह, कन्या मम सल्लाह॥ १६

छ०—देवों की वर्ष हजारों तक, सब दिव्य भोग भोगे महि पर।
है मेरी कृपा पूरी तुम पर, तप भजन करो हरि हिय में धर॥१७

जो नाश न होवै दृढ़ भक्ती, करि चित्त शुद्ध जैहौ ममधाम १८
घरमें भी रहि शुभ कर्म करौ, नहिं गृह बंधन सुमिरे हरि नाम १६
त्यागी ज्ञानी जो पूर्ण ब्रह्म, लहते गृहस्थ कैसे पावै।
तहँ मोह शोक दुख हर्ष नहीं, हरिचरित सुने सब हो जावै॥ २०
मैत्रेयउ०—नर मतलब पूरक बानी सुनि, कर जोर प्रचेता कहन लगे
दर्शनसे निर्मल चित्त भया, गद्गद बानी दृग बहन लगे ॥२१
प्रचेतसऊचुः दो०—गुण उदार दुखहरन कहँ, बारंबार प्रणाम।
जेहि बिन बाणी इन्द्रियां, लहैं राह नहिं धाम ॥२२

छं०—हरि शुद्ध शांत निज निष्ठा से, मनसे हरि निष्फल जगकारी।
माया गुण से ब्रह्मादिक बन, जग पालन थिति लय बलिहारी २३
शुचि सत्वगुनी हरि शुद्ध बुद्धि, भक्तनपति वासुदेव नृहरी ।२४
प्रभुकमलनाभि धरि कमलमाल, पदकमल कमलदृग दयाकरी २५
हैं कमल केसरी पीत वस्त्र, जग वासी साक्षी नमस्कार। २६
सब दुखहर रूप दिखाय हमें, दुख हरे न इहसम है उपकार॥ २७
दीनों पर बड़ों की दाया है, करि भक्त सुरति मंगलकारी। २८
हम तुच्छ चाहनावालों की, नहिं छिपी हिये बस बनवारी॥ २६

दो०—हमें यही बरदान है, प्रभु प्रसन्न भे आप।
मुक्ति गती दाता गुरू, मेटन भव संताप॥ ३०

छं०—यह है बरदान मिलै तुमसे, नहिं पार विभूति अनंत अहै ३१
लहि पारिजात[1] तरु पुष्प भ्रमर, कुछचहै न हरिलहि कुछन चहै ३२
जबलों मायाबस भ्रमहिं नाथ, प्रति जन्म भक्त तव संग मिलै ३३
मोक्षहू स्वर्ग सुख लव सम नहिं, करि भक्त संग हरि प्रेम पिलै ३४

[1] कल्पबृक्ष।

हरि कथा भक्त संगति में हो, सुनि तृष्णा जगकी दूर भगै।
निर्वैर होय दिल भीतर से, मन घबड़ाहट सपने न जगै॥ ३५
प्रत्यक्ष त्यागि गतिदायक, हरिकी कथा संग तजि जन गावैं।३६
पैरों से तीरथ महँ विचरैं, अघ हरैं संग जग नहिं भावैं॥ ३७

दो०—हम क्षण शिव के संग से, जो शिव तुम्हरे मीत।
बिन औषधि भव वैद्य शुठि, हरि पाये गत भीत॥ ३८

छ०—जो वेद पढ़ा गुरुजन से ये, सच्ची वृत्ती से वृद्धमान।
भाई आर्यहु[1] सब मित्रादिक, ईर्षा तजिकै कीन्हें सन्मान॥ ३६
बहुकाल अन्न बिन जलमें तप, ह्यां सब भाई मिलि कीना है।
सब साधन भूमा पुरुष आप, के प्रसन्न हित हम लीना है॥४०
मनु ब्रह्मा शिव मुनि ज्ञान शुद्ध, प्रभु महिमा पार न पाते हैं।
ताहू पर निज मति तुल्य, सभी गाते हैं हम भी गाते हैं॥ ४१
सम शुद्ध परपुरुष कहँ प्रणाम, तुम वासुदेव कहँ नमस्कार।
भगवत्सरूप हैं आप नमो, हौ पूज्य हरी सब विधि हमार॥ ४२
मैत्रेय उ० दो०—स्तुति कीन प्रचेतन, शरणागत प्रतिपाल।
तृप्ति न तिनके देखतहिं, गये धाम गोपाल॥ ४३
छ०—जलसे निकले वृक्षों से ढकी, सबने देखी महि क्रोध किया ४४
मुखसे पैदा कर अग्नि वायु, तरु बिन पृथ्वी हो यत्न लिया ४५
जलते वृक्षों को ब्रह्मा लखि, आ नीतिसे सबहि शांति सिखई।४६
ली सीख वृक्ष बचि पुत्रों को, कन्या वार्क्षी ही ब्याह दई॥ ४७
विधि आज्ञा पा सबने ब्याही, जिसमें सुत दक्ष जन्म लीना।४८
चाक्षुष मन्वंतर में वो दक्ष, बहु सृष्टि रची शुभ यश कीना॥४६

[1] श्रेष्ठ।

सब तेजस्विन के हरे तेज, तेजस्वी दक्ष पद शीघ्र लिया । ५०
ब्रह्माजी सृष्टि हित दक्ष किया, यह और प्रजापति नियत किया ५१
भजन—प्रचेतन जल महँ बहु तप कीन ॥ टेक ॥
दश हजार लौं करी तपस्या, तब हरि दर्शन दीन ।
भक्ति मुक्ति नारी बर पायो, दक्ष जन्म तहँ लीन ॥ प्रचेतन०
यह तप भजन प्रताप निहारहु, नित नव सुयश नवीन ।
माधवराम भजन से रीझत, करि सब संशय छीन ॥ प्रचेतन०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकत्रिंशोऽध्यायः

श्लोक—एकत्रिंशे सुते दक्षे धुरं न्यस्य वने सताम् ।
नारदोक्तेन मार्गेण मुक्तिरुक्ता प्रचेतसां ॥

दो०—इकतिस के अध्याय में, दक्षपुत्र पर भार ।
धरि प्रचेतसा भजन करि, मुक्ति लही भे पार ॥

मैत्रेय उ० छ०—हुआ था ज्ञान हरि शिक्षासे, तियतजि सुतगद्दीदे बनगे १
पच्छिमदिशिसमुद्रतट हरिभजि, जहँसिद्ध जाजलो मुनि मन भे २
जितप्राण मनो दृग बाणी से, आसनजित शांतसरूप अहे ।
आत्मा लगाय सतब्रह्म माहिं, नारदजी दिया उपदेश चहे ॥३
मुनि आवत देखि प्रणाम किया, आसन दै पूजन करि कहते ४
प्रचेतसऊचुः—स्वागतमुनिदर्शनभागसेहै, रविसमविचरौनिर्भयचहते५
शिवजी का शुभ उपदेश, गृहस्थी में भूला मुनि दायाधर । ६
तत्व प्रकाश अध्यात्म ज्ञान, समझा दीजै जावें भव तर ॥ ७

दो०—करी प्रचेता प्रार्थना, सुनि नारद हरषान ।
हरिपद में लागी सुरति, तिन्हें कहत शुभज्ञान ॥ ८

नारदउ०छ०—वह जन्म सत्य वे कर्म, उमरसो बानीसचसबहैं नर की
हरि ईश्वर विश्व आत्मा प्रभु, जिनसे प्रसन्न लय तजि घरकी ६
क्या जन्म शौक्र सावित्र याज्ञ, वेदोक्त कर्म क्या सुर की उमर १०
श्रुत तप बानी चित्तहु वृत्ती, बल इन्द्री वश बुद्धिहू चतुर ॥ ११
क्या योग सांख्य करि वेद पाठ, दूसरे श्रेय करि क्या करिहैं ।
निज आत्माप्रद जो हरि न भजे, हरिबिन सबविपदा नहिं हरि हैं १२
सुख देनहार सब में आत्मा, सब जाय चहै हम सुखी रहैं ।
वह आत्म के दाता हरि प्रियहैं, कोउ नहिं दूसर उनकी सरि है ॥१३

दो०—जैसे सींचे मूल के, डाल पात हरिआंय ।
हरि के अर्पण किये त्यों, सबै तृप्ति ह्वै जाय ॥ १४

छ०—रविवार से होते सब दिन हैं, रविवारहि माहिं समाते हैं ।
सब जीव चर अचर हरिपद में, हर क्षण में थिरता पाते हैं ॥१५
जगदात्मा हरि का प्रकाश पद, यह जीव देह से अलग रहै ।
प्राणहू अवस्था तीन क्रिया, सत्वादि भिन्न सब वेद कहैं ॥ १६
जैसे अकाश में बादल तम, दिखते तौभी नहिं रहते हैं ।
त्यों परब्रह्म महँ तीनहु गुन, शक्ती भ्रम है श्रुति कहते हैं ॥१७
सब जीवों की आत्मा प्रधान, हरि कालपुरुष वह कहलावै ।
निज तेज से गुण प्रवाह नाशै, भजो एक भाव से सुख आवै ॥१८

दो०—सब जीवों पर दया करि, ज्यों त्यों करि संतोष ।
सब इन्द्री को शांत करि, प्रभुवशहोंय न दोष ॥१६

छ०—सबचाहैं जिसकी नाशभई, हियशुद्ध विरागी मति जिसकी ।
वश होके बोलाये से आवैं, अक्षर ह्वै रुचि पूरत तिसकी ॥ २०

पूजा न असत की लें ईश्वर, निर्धन जन निज धन मानैं हैं।
विद्या धन कुलादि अभिमानी, भक्तों का निरादर ठानैं हैं॥ २१
लक्ष्मी ग्राहक राजा औ इन्द्र, वह लक्ष्मी पूर्ण के संग फिरै।
सेवक स्वतंत्र हरि ताहि न लें, को अस पंडित प्रभु त्याग करै॥२२
मैत्रय उ० दो०—प्रचेतसहिं औरहु कथा, नारायण की गाय।
ब्रह्मलोक नारद गये, अनेक विधि समुझाय॥ २३
छं०—सुनिपापहरन हरियश मुनिसे,हरिपदध्यावहिंगतिपाई है २४
यह प्रचेतसा नारद चरित्र, महिमा हे विदुर सुनाई है॥ २५
उत्तानपाद नृप वंश कहा, प्रियव्रत का वंश सुनावै हैं। २६
जो नारद से लहि आत्मज्ञान, महिसुत तजि हरिपद पावैं हैं २७
मैत्रेय से वर्णित हरिचरित्र, सुनि विदुर हिये हरषाये हैं।
उमड़ा है प्रेम बहै नैनधार, चरणों परि शीश नवाये हैं॥ २८
विदुर उ०—हैं योगी दयावान मुनिजी, तमपार लखायाहरि जहँमिल २९
श्रीशुक उ०—करिप्रणाम आज्ञा पाय विदुर, निज कुटुंब देखन निजपुरचल ३०
दो०—हरि भक्तों भूपतिन की, कथा सुनै मन लाय।
धन आयू यश स्वस्ति गति, विभव पाय हरषाय॥

भजन—जगत में रामभजन है सार।
करतब कोटि चहै कोउ साधै, करै विवेक विचार॥ टेक॥
सबै भांति पचि मरै यतन करि, छुटै न जगत विकार।
सूध उपाय छोड़ि नर नारी, खोदत फिरैं पहार॥ जगत में०
विषय छोड़ि चित साफ कृष्ण भजि, होवै भव से पार।
माधवराम रटत निशि वासर, राखत श्याम अधार॥ जगत में०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ चतुर्थस्कंधे एकत्रिंशोऽध्यायः।

इति चतुर्थस्कंध समाप्तः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ।

श्लोक—तत्रतु प्रथमेऽध्याये ज्ञानिनो राज्य निर्वृतिः ।
पुनश्च ज्ञाननिष्ठेऽतिप्रियव्रतकथाऽद्भुता ॥ १ ॥
वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृप सत्तम ।
यो नारदादात्मविघामधिगम्य पुनर्महीम् ॥ २ ॥
भुक्त्वा निभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥ इति

दो०—छब्बिस शुभ अध्याय सों, पंचम स्कंध बखान ।
तहां प्रथम में प्रियव्रतहिं, दीनो ब्रह्मा ज्ञान ॥

राजोवाच छं०—प्रियव्रत हरिजन हैं आत्माराम, जहं कर्म बँध क्यों गृही बने ।१
ऐसे जो मुक्त संग ज्ञानी, नर भूलि न मायाजाल सने ॥ २
जो लगे महात्मा हरिपद में, नहिं गृह कुटुंब में चाह करैं । ३
संदेह अहे फँसि तिय सुत में, कस लही सिद्धि मति हरि में धरैं ॥४
श्रीशुक उ०—नृप ठीक कहा पर हरिपद में, जिनका चित प्रवेश है हरदम ।
वह परमहंस गति विघ्न पड़े, नहिं तजैं भजनपथ सुख दुख सम ५
नृपसुत प्रियव्रत हरिभक्त जबै, नारद पद सेवहिं ज्ञान लहैं ।
मनु इनको दिया चहैं गद्दी, लखि योग पुत्र नहिं लेन चहैं ॥
हरिपद में चित्त सब क्रिया तजीं, सच्चे हरि में हैं अनुरागी ।
गृह जाल झूंठ झट देत हारि, लख त्यागी यासों बड़भागी ॥ ६

दो०—जगबृद्धी चहे बिधिहु नित, चढ़े हंस मुनि संग ।
ब्रह्मलोक से चल भये, लखि यह उलटा ढंग ॥ ७

छं०—शशितुल्य गगन में सोहिरहे, सब सुरमिल पूजा करत जांय ।

श्रीमान् लाला भवानीशंकरजी के पौत्र

श्रीमान् लाला माठूमलजी कपूर (४ घर) के पुत्र

श्रीमान् लाला ब्रजमोहनलालजी

श्रीमान् लाला जगमोहनलालजी,

श्रीमान् लाला राममोहनजी
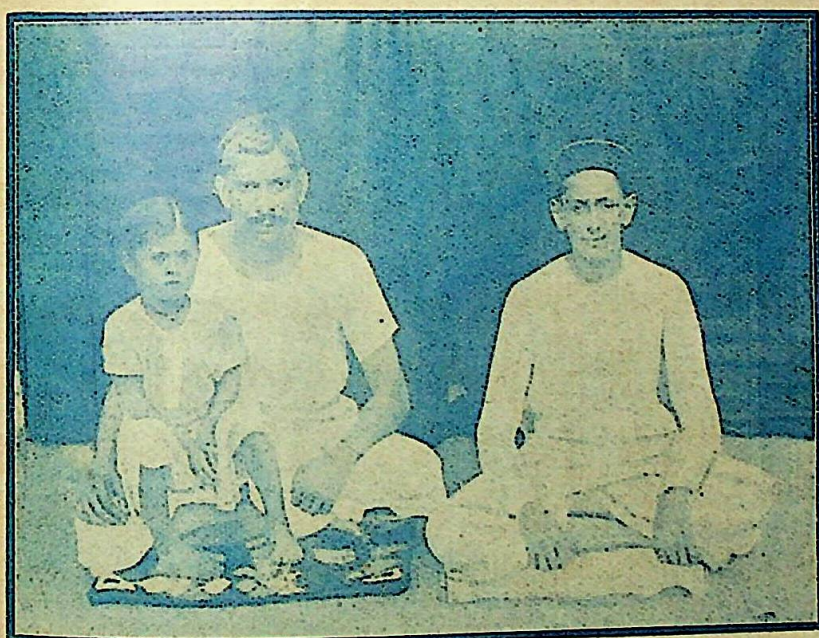
आप तीनों भाई बड़े धर्मात्मा हैं। आप सब की धर्मपत्नी सती पतिव्रता हैं। आपके जगदीश्वर राममूर्ति पुत्र तथा मुन्नी बाई शुद्ध सती बहिन है। आप सब ने पञ्चम स्कन्ध की वितरणार्थ ५०० पुस्तकों की छपाई में अच्छा धन दे सहायता की है।
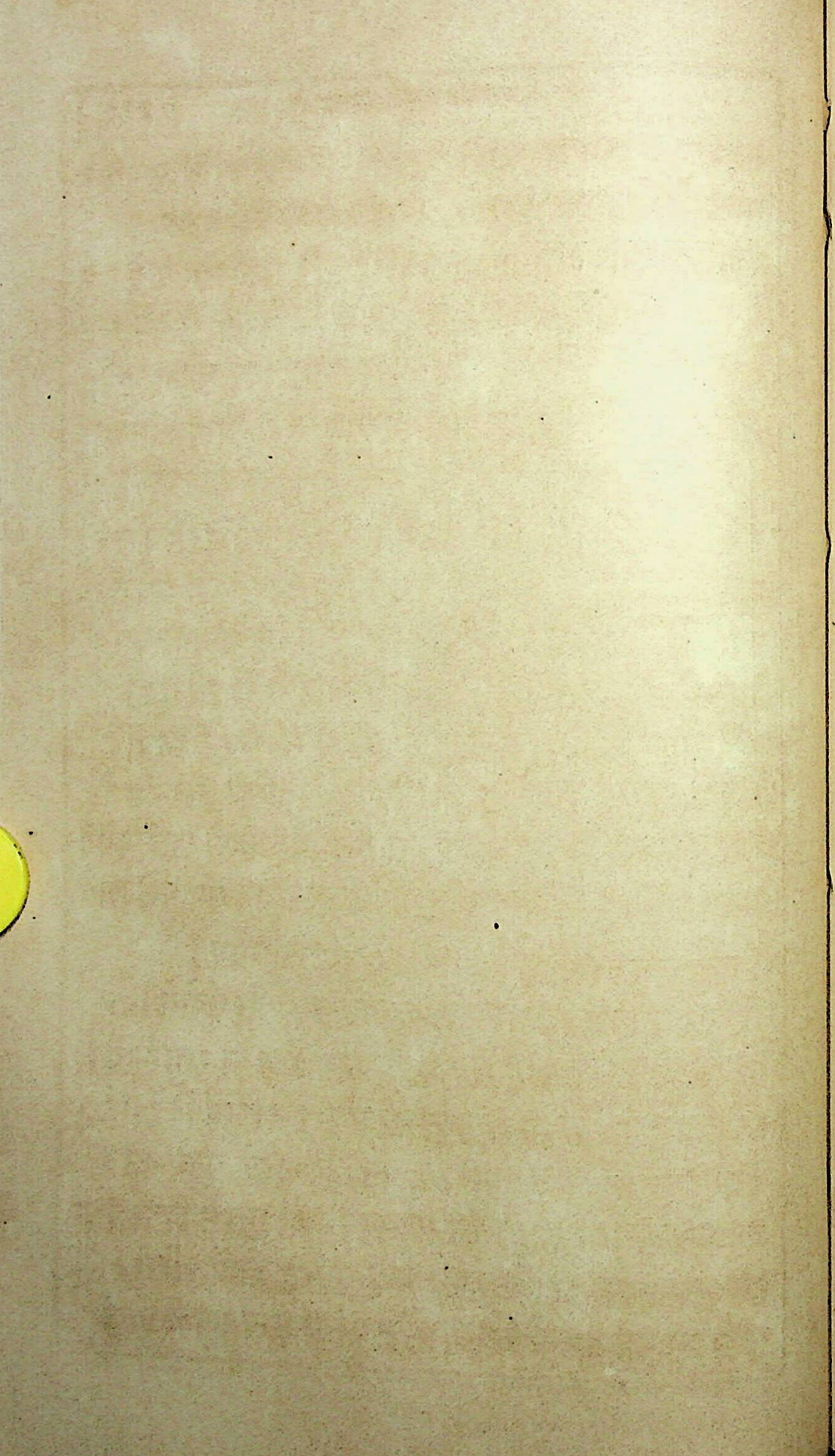
गंधर्वसिद्ध मुनि कर स्तुति, मादनहुगंध गिरि पहुंचि आय॥ ८
नारद लखि हंसचढ़े पितुको, पदपूजि नमन करि हरषाये।
स्वायंभूमनु भी आय गये, सुत सहित पूजि बिधि शिर नाये॥ ६
दै पूजा भेंट करी बिनती, बिधि प्रसन्न ह्वै प्रियव्रत से कहैं।
हैं आदिपुरुष सृष्टीकर्ता, हँसि कै बहु दाया कीन चहैं॥ १०

श्रीभग०उ०दो०—पुत्र कहैं हित बात हम, सुनि संशय जनिधार।
हम सब मुनि पालन करैं, हरि आज्ञा गहि पार॥ ११

छ०—तप योग बुद्धि विद्या बलसे, नहिं अर्थ धर्म से हरि करतब।
अपने पर से नहिं टारसकै, तनुधारी निश्चय लखलो अब॥ १२
पैदा औ नाश भय शोक मोह, सुख दुःख हेतु नर तन धारे।
प्रारब्ध भोग भोगना परै, कर कोटि यतन न टरै टारे॥ १३
दुस्तर गुण कर्ममयी रस्सी, हरि बानी में सब बँधे हैं हम।
ज्यों नाथा पशु है पर अधीन, सेवा करते हरिकी हरदम॥ १४
गुण कर्म संग से ईश रचित, दुख सुख सहि बाणी पालैं भले।
आज्ञा जो प्रभु की होय करैं, ज्यों अंध सुलोचन संग चले॥१५

दो०—जीवनमुक्तहु देह धर, करै भाग को भोग।
मानरहित गुनि स्वप्नसम, नहिं तन और संयोग॥ १६

छ०—मतवारे को बनमें भी भय, है काम क्रोध षट शत्रु लिये।
इन्द्रीजित घरहू में न दुखी, कुछ करै न घर मन हरिमें दिये॥ १७
छै रिपु कामादिक जीतन हित, घरही में पहिले यतन करै।
जब प्रबलशत्रु यह जीति लेय, तब बनमें जाय सुख से विचरै॥ १८
हरिचरणकमल का कोट रचौ, घरही में रिपु जीतो पहिले।
सुखभोग सबै प्रारब्ध विवश, ह्वै मुक्तसंग सुस्वभाव ले॥ १६

श्रीशुक॰उ॰—सुनि महाभक्त प्रियव्रत विधिसे, अपने को लघुकरि जानै हैं।
उपदेश आत्म हितकारी गुनि, हाँ करि शिर धारण ठानै हैं॥ २०
समझाय प्रियव्रत को ब्रह्मा, अरु सौंपिमनुहिं निजधामगये। २१
नारद सलाह से सुतहिं राज दै, स्वायंभू उपराम भये॥ २२

दो॰—हरि इच्छा से राज लहि, युक्ति सो पालन कीन।
सब जग बंधन नाशक, प्रभुपद महँ चित दीन॥ २३

छ॰—व्याही है वर्हिष्मती नारि, विश्वकर्मा की जो कन्या है।
दश पुत्र एक कन्या जन्मी, सब भागवंत अति धन्या है॥ २४
आग्नीध्र इध्मजिह यज्ञ वाहु, सुहिरण्य रेत घृतपृष्ठ सवन।
मेधातिथि बीतिहोत्र कविये, अरु महावीर दश निधान गुन॥ २५
कवि महावीर सुत सवन तीन, गति परमहंस ब्रह्मचर्य धरैं।
आतम विचार दृढ़ धारि हिये, भे विरक्त नहिं मन दिया करैं॥२६
उस आश्रम में हो परम शांत मुनि, जगनिवास हरिपद ध्यावैं।
सब जीवों को अपने समान, लखि ईश्वर हिय आनँद पावैं॥ २७

दो॰—उत्तम रैवत तामस, तीनहु पुत्र उदार।
दूसरि रानी में भये, मन्वंतर सरदार॥ २८

छ॰—नृप ग्यारह अर्व राज कीनी, पुत्रहु सुयोग सब पाये हैं।
रानी सुशील आज्ञाकारी, सुरपुर सुख यहां उठाये हैं॥ २९
निशिमें अँधेर दिन में प्रकाश, तप से रथ शीघ्र सजाया है।
दूसर सूरज बनि सबै ठौर, आपन प्रकाश फैलाया है॥ ३०
फिरे सात वार रवि रथ जलाव, नृप दूना रथ सजवा लेते।
भे सात समुद्र सात द्वीपहु, इक इक से दूने रच देते॥ ३१
जंबू औ प्लक्ष शाल्मली कुशहु, क्रौंचहु शाक पुष्कर ये सात।
योजन इक दोय चार आठहु, सोलह बत्तिस चौंसठ लखतात॥३२

दो०—सिंधु एक से इक दुगुन, राखत निज मर्याद।
द्वीपहु तैसे समझ लो, यामें नाहिं विवाद॥

छं०—क्षारोद ऊखरस सुरोद घृत, क्षीरोद सिंधुदधि शुद्ध सुजल
ये सात समुद्र भूमि खावा, इक दीप सिंधु पुनि दीप सुथल॥
जंबू में हैं आग्नीध्र भूप, अरु प्लक्षकों इध्मजिह्वा पाये।
पुनि शालमली में यज्ञ बाहु, कुश में हिरण्य रेतहु गाये॥
घृत पृष्ठ क्रौंच में शाकहु में, मेधातिथि बीतिहोत्र पुष्कर।
हैं बड़े प्रतापी अग्नि नाम, जिनके सुकर्म अतिही दुस्तर॥ ३३

दो०—उर्जस्वती कन्या सती, नृपं प्रियव्रत विख्यात।
शुक्राचार्य बिवाह ली, देवयानि की मात॥ ३४

छं०—जित कामादिक हरिभक्त जौन, तिनमें करना संदेह नहीं।
हरि नाम लेतही बंध छुटै, जन हरिहि भजैं दिनरात सही॥३५
बेतौल पराक्रम प्रियव्रत में, नारद मुनि से शुभ ज्ञान लहा।
माया में बँधा सा आत्मा लख, गहि विराग मुखसे बचन कहा ३६
नहिं ठीक किया विषयों में फँस, गृह अँधकूप में पड़े रहे।
धिग् धिग् मुझको तिय का बंदर, नृप ह्वै नौकर से अड़े रहे ३७
प्रभु प्रसाद से विज्ञान भया, पुत्रों को पृथ्वी बांट दई।
मुरदा सी रानी त्यागि आप, मुनिशिक्षागुनि हरिप्रीतिलई॥३८
प्रियव्रत के कर्म इक ईश्वर बिन, करिसकै कौन जिन सिंधु रचे।३९
द्वीपहि द्वीपहि में गिरि समुद्र, सीमा हित राजा ने विरचे॥४०

दो०—स्वर्ग पताल भूमिसुख, कर्म योग सों जौन।
हरि हरिजन प्रिय भूप वह, गिनै तुच्छ सब तौन॥ ४१

भजन—प्रियव्रत भूपति जाहिर जहान, मुनि नारदसों जिन लियो ज्ञान ॥ टेक
आये ब्रह्मा उपदेश दीन, घर बसि हरि भजि सुख है महान।
छै शत्रु जीतलो घरमें बैठि, हरिपद सुकोट रचि है ठिकान ॥प्रिय०
सुनि घर आये मनु राज दिया, रानी घर आई ब्याह ठान।
सुतदश दूसरिमें तीन पुत्र, कन्याहू एक गुणशील खान ॥ प्रिय०
रथचक्र से सात समुद्र दीप, विरचे सातहु सुत करि प्रधान।
करि हिय विराग गृह राज त्यगि, भजि माधवराम करै सुयशगान ॥ प्रिय०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः।

श्लोक—द्वितीये प्रोक्तमाग्नीध्रचरित्रं स्त्रैणसंमतम्।
पत्न्यां हि पूर्वचित्यां यो नाभिमुख्यानजीजनत् ॥१
अस्मिन्वंशे प्रसिद्धोऽयमाग्नीध्रः स्त्रैणपुंगवः।
विहसन्निव तस्येदं चरितं मुनिरब्रवीत् ॥२

दो०—स्त्रीबश आग्नीध्र नृप, दूसर यह अध्याय।
पूर्व चिती अप्सरा महँ, नाभि आदि सुत पाय ॥

श्रीशुकउ०छं०—पितुजानेपर आग्नीध्रभूप, जंबुद्वीपमें राजकिया १
सुत इच्छा से मंदरगिरि पै, तपसाज साधि प्रभु भजन लिया २
बिधिने यह समझ पूर्व चित्ती, अप्सरा भूप ढिग भेज दई। ३
तरु लता बेलि जल पक्षि हंस, आदिकसों रुचिर थल आयगई ४
सुनि नूपुरधुनि भूपति कुमार, तप तजि दृग खोलि बचन कहते ५

भ्रमरी सुपुष्प हित त्यों सुनारि, छवि अंग निरखि थिर नहिं रहते ॥
मृदु हास अंग सबही सुंदर, झट चलत चाल हिय काम धरै ।
लखि भूप काम के विवश भये, जड़ सम नारी सों बात करै ॥ ६

दो०—मुनिबर काह करो चहौ, की माया हौ आप ।
भौंह धनुष धरि मृगन कहँ, का देहौं संताप ॥ ७

छं०—यह भ्रमर शिष्य पढ़ सामवेद, शिरसों गिरि पुष्पबृष्टि लहते ।
मुनिवृन्द वेद शाखा ज्यों लहि, मनसे नहिं और सुखहि चहते ॥ ९
पद पिंजड़े में नूपुर तीतर, सुखदायक शब्दहि गावैं हैं ।
कांची कटि वस्त्रहु भ्रमसों लखि, कहँ बल्कल प्रश्न सुनावैं हैं ॥ १०
दो शृङ्ग हृदय में कटि पतली, अद्भुत शोभा यह धारी है ।
तन सुगंध सों आश्रम सुगंध, कर रही छबी बलिहारी है ॥ ११
हे मित्र ठौर निज दिखलादो, यह बेष लिये जहँ बास करो ।
हम सम नरके मनक्षोभक दृग, मुखमाहिं सुधामृत आप धरो ॥ १२

दो०—मुख सुगंधयुत वायु बह, कुंडल मकर समान ।
नैन मीन मुख सिंधु छवि, कमल भ्रमर लपटान ॥ १३

छं०—यह गेंद उछाल रही हो तुम, मम नैन चपल झट कर देवे ।
छुट गये बाल नहिं ख्याल करो, हर वायु वसन चित हरलेवे ॥ १४
तपधारिन को तपहरननहार, यह रूप कहां से पाया है ।
हमरे संगहि तप करो आप, हो प्रसन्न मम मन भाया है ॥ १५
बिधि दीन तुम्हें प्यारे न तजें, मन नैन न हटना चहते हैं ॥
हों सखी तुम्हारी सुघर जहां, ले चलो वहां हम कहते हैं ॥ १६
श्रीशुक उ०—नारी प्रसन्न करनेवाली, बाणी से भूपति खुशी किया १७
वह भी मोहित नृपरूप देखि, रानी बनि सँग में बास लिया ॥ १८

दो०—नाभि किंपुरुष हरि वरष, इलाबृत रम्यक नाम।
कुरु भद्राश्व हिरण्यमय, केतुमाल गुनधाम ॥ १६

छं०—नव पुत्र वर्ष वर्षहि में भे, नृपतजि यह बिधि के धाम गई।२०
नृप नव सुत कहि नवखंड दिये, अपनी अपनी सब राजलई ॥२१
आग्रीध्रतृप्त नहिं जगसुख सों, नारी को रात दिन याद करैं।
करि यज्ञ उसी के लोक गये, जहँ पितर आदि बसि हर्ष धरैं ॥ २२

दो०—सुता मेरु की नव भईं, नव भाइन लीं ब्याह।
प्रतिरूपा रम्या लता, श्यामा भरी उछाह ॥
मेरुदेवि है पांचवीं, नारी भद्रा नाम।
उग्रदंष्ट्रिहू एक है, देवबीति गुणधाम ॥

भजन—जगतमें काम की महिमा, अनोखी शास्त्र गाते हैं।
जगै जब काम की अग्नी, ज्ञान सब जल बुझाते हैं ॥ टेक०
किला नारी का तन इसको, नैन मोखा नजर शर हैं।
पड़ै जब मार मुनियों पर, ठौर ढूंढे न पाते हैं ॥ जगत में०
नृपति बाबू साहबों की, है क्या गिनती जो बच जावैं।
नारि के दास बन हरदम, हाज़िरी नित बजाते हैं ॥ जगत में०
कहैं क्या हाल हम तुमसे, हाथ धर दिलपै चुप देखो ।
धड़कता याद आतेही, यार सच्ची सुनाते हैं ॥ जगत में०
भये दागी हैं सब इससे, बृथा अरमान मन धारै।
बचै यह एक माधवराम, मन घनश्याम लाते हैं ॥ जगत में०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः

श्लोक—तृतीये चरितं नाभेः परं मंगलमीर्यते।
यस्य यज्ञे प्रतीतः सन् पुत्रोऽभूदृषभो हरिः॥

दो०—तृतीय महँ वर्णन करैं, नाभि यज्ञ जिमि कीन।
मुनि स्तुति सुनि भूप कहँ, बर सुत हित प्रभु दीन॥

श्रीशुकउ०छ०—नाभीनृपसुतकीइच्छाकरि, हरिहित यज्ञ शुभ ठानी है १
हिय शुद्ध बढ़ी श्रद्धा जिनके, सामग्री उत्तम आनी है॥
मुनि हवन करैं हरि भे प्रसन्न, है अजित भक्त से हारे हैं।
मनहरन सुघर छबि रूप धारि, दर्शन हित तहां पधारे हैं॥ २
भुज चारि चारु छबि पीतांबर, हिय रमा चिन्ह प्रभु धारे हैं।
धरि शंख चक्र गदा पद्म माल, गल क्रीट शीश अति प्यारे हैं॥
लखि राजा रानी मगन भये, ज्यों जन्मदरिद्री धन पावै।
करि प्रणाम पदमें सब मुनिवर, कर जोरि सबै स्तुति लावै॥ ३

ऋत्विजऊचुः दो०—पूज्य योग्य सब भांतिसों, बारंबार प्रणाम।
पुरुष अनीश प्रकृति विवश, किमि जानै तवधाम॥

छ०—पर ईश्वर हैं प्रभु आपरूप, किमि रूप निरूपण माया से।४
निज जनके दुख हरि लेत हरी, गुणधाम देहु सुख दाया से॥५
जन से अर्पित जल तुलसिपुष्प, संस्तुतही से प्रसन्न होवैं। ६
बहु भार युक्त यह यज्ञहु से, हर्षित ह्वै मिले नैन जोवैं॥ ७
यज्ञादि से क्या तुम आत्म रूप, व्यतिरेक भाव से आप अहैं।
कामनाधारि सब मख ठानै, है नाथ उचित यह संत कहैं॥ ८

बालक नहिं जानै हित अपना, पितु मातु करै नित अपने से।
नहिं जानैं आपकी महिमा हम, प्रभुही रक्षक जग सपने से ॥ ६

दो०—हम सबको बर मिल चुका, मख महँ दर्शन दीन।
योगीजन पावैं नहीं, भूपति दर्शन कीन ॥ १०

छ०—गहिज्ञान असंग खड्ग करमें, जग काटि शुद्धहियमुनिमनमें।
जे आत्माराम न दर्शपाव, गुणगन गावहिं जनबृन्दन में ॥ ११
गिरि भूख प्यास जमुहात विवश, ज्वर मरण दशामें जे सुमिरै।
सब दुःख हरतहैं कीर्तिनाम, प्रत्यक्ष दर्श लहि क्यों न तरै ॥ १२
हे प्रभू भूप यह तुम्हैं तुल्य, सुत चहै इसी से मख ठानी।
निर्धन जन ज्यों धन अन्न चहैं, प्रभु बिचार लीजै बरदानी ॥ १३
तुम अजित प्रबल माया तुम्हारि, बसह्वै विषयों हित पदसेवैं १४
मतलबी मंद तुमको बुलाय, अपराधकिया जनि हिय लेवैं ॥ १५

श्रीशुक उ० दो०—ऐसी संस्तुत सुनिप्रभू, हिय सों अति हरषाय।
दया धारि गंभीर स्वर, बोले मृदु मुसकाय ॥ १६

श्रीभगवानुवाच—हे मुनी सत्यवादी हैं आप, बर कठिन भूपहित याच लिया।
हमरे समान हमही जगमें, मेरामुख द्विज नहिं झूठ किया ॥ १७
इससे आग्नीध्र भूप घरमें, निज अंशकला से अवतरिहौं।
अपने समान कहँ मिलै हमें, नृपसुतहित निज तन में धरिहौं १८
श्रीशुक उ०—रानी राजा सुनि रहे वचन, प्रभु कहिकै अंतरध्यान भये। १९
मुनियों ने प्रसन्न करि हरि को, हरि भक्त भूप बरदान लये ॥

दो०—राजा के प्रिय करन हित, मेरु देवि में आय।
परमहंस की गति गहैं, प्रगटे हरि हरषाय ॥ २०

भजन—भक्तवत्सल प्रभु दयानिधान ॥ टेक ॥
प्रेम निहारत जन अपने को, लख तन विविध विधान ।
जल फल पुष्प पत्र जो अर्पण, करत कीर्ति गुनगान ॥ भक्त०
प्रगट होत दुख दूर करत हरि, अस दयालु भगवान ।
मख में लख तिल भर नहिं तिनको, केवल प्रेम प्रधान ॥ भक्त०
ज्ञानिन के हित ज्ञानी होवैं, मूरख हेत अजान ।
बड़े बड़े मूरख प्रभु तारे, जिनके हृदय पखान ॥ भक्त०
धारत एक प्रेम को नाता, और करै नहिं कान ।
माधवराम आश दर्शन की, धारे पुत्र अयान ॥ भक्त०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः ।

श्लोक—चतुर्थे शतपुत्रस्य राज्यं तस्योपवर्ण्यते ।
यस्य राज्ये जनः सर्वः संतोषामृत निर्वृतः ॥
दो०—चार पांच छै में कह्यो, ऋषभ चरित्र महान ।
चौथे में सौ पुत्र भे, प्रजा सुखी नित गान ॥
श्रीशुकउ०छ०—भगवानपुत्र पैदाघरमें,वैरागशांतिसिद्धीसबगुन
लखि प्रजा ब्राह्मण पालन हित, इनही को ईश्वर मानैं मन ॥ १
बल कीर्ति वीर्य सूरता देह, लखि पिता ऋषभ यह नाम किया ।
सुत नारायण घर में आये, चित में सुख लै आराम किया ॥
मत्सर करि इन्द्र नहीं बरषे, करि योग राज में बरसाया । ३
नाभी इच्छित सुत हरिहि पाय, सुत तात वत्स कहि सुखपाया ४

लखि प्रजाप्रेम नृप ऋषभ देव, को पालन हित सब राजदिया।
द्विज आश्रमदै रानी सँगलै, भजि नारायण पदमुक्त लिया ॥५

दो०—राजऋषी नाभी नृपति, सम होवै जग कौन।
पुत्र भाव विष्णू लह्यो, कीर्ति रमा के भौन ॥ ६

छ०—ब्रह्मण्य नहीं नाभी से और, विप्रों ने प्रभू मिलाये हैं। ७
द्विज आज्ञा से निज खंड पालि, सबको निज धर्म सिखाये हैं॥
दी इन्द्र जयंती कन्या निज, तिसमें सौसुत जन्माये हैं। ८
भारत यह खंड प्रसिद्ध भया, सुत भरत जेष्ठ शुभ पाये हैं ॥ ६
पुनि कुशावर्त इलावर्त मलय, अरु ब्रह्मावर्त केतु गाये।
इंद्र स्पृक भद्रसेन कीकट, अरु विदर्भ नव मुखिया पाये ॥ १०
कविहरी अन्तरिक्षहु प्रबुद्ध, पिपलायन आविर्होत्र द्रुमिल।
करभाजन चमस नव योगेश्वर, जगत्यागी शुद्धहृदय निर्मल ११

दो०—योगेश्वर हरिभक्त नव, चरित विशुद्ध महान।
श्रीनारद वसुदेव के, मिलन सुचरित बखान॥१२

छ०—इक्यासी सुत आज्ञाकारी, करि यज्ञ योग तप विप्र भये।१३
भगवान ऋषभ प्रभु ह्वै स्वतंत्र, अनुभव निवृत्त चितमाहिं लये॥
विपरीत कर्म करिकै दिखाव, गति परमहंस की दिखलाई।
सम शांत दया मित्रता धारि, जीवनमुक्ती घर में पाई ॥ १४
जो बड़े करैं आचरण वही, छोटे आपहि सिख जाते हैं।
तिस पर है अचरज बड़े मूर्ख, आचरण शुद्ध नहिं लाते हैं ॥ १५
जानत सब ब्राह्म धर्म द्विजसे, शम दम करि प्रजा आपपाली १६
धन देश काल श्रद्धा विधान, धरि अश्वमेधसौ करि डाली १७
रक्षित यह खंड ऋषभजीसे, नहिं किसी को कुछ भी चाह रही।
राजा में नित नव नेह बढ़ा, नृप भला होय यह सुमति लही॥१८

दो०—ऋषभदेव विचरैं कभी, ब्रह्मावर्तहिं आय।
सुनैं सभा ब्रह्मर्षि सब, पुत्रन रहे सिखाय ॥ १६

भजन—भये प्रभु ऋषभदेव गुणखान।
नाभि प्रसन्न करत नित लालन, सुत पायो भगवान ॥ टेक
बड़े होत ही राज दिया नृप, बहु प्रताप अधिकान।
इन्द्र न बर्षहिं मेघ योग करि, बरषायो बलवान ॥ भये०
कन्या दीन जयंती सुरपति, सौ सुत तहँ प्रगटान।
माधवराम देत शिक्षा शुभ, हैं गुण ज्ञान निधान ॥ भये०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचमोऽध्यायः।

श्लोक—पंचमे मोक्षधर्मोपदेशैः पुत्रानुशासनम्।
उक्तं पारमहंस्यं च तस्य द्वन्द्वतितिक्षया ॥

दो०—मोक्ष धर्म उपदेश बिधि; सुतहिं दीन समझाय।
परमहंस सुखदुख सहन, पंचयें माहिं लखाय ॥

ऋष०उ०छ०—विषयों के हेत नहिं है नरतन, सुखविषय सूकरों को होवे।
तप दिव्य करै यह तन पाकर, सुख अनंत लै मुक्ती जोवै ॥ १
संतों की सेवा मुक्तिद्वार, अरु नर्कद्वार सेवा नारी।
हो शांत क्रोध बिन मित्र संत, तनमन से सबके उपकारी ॥ २
जे प्रभु मुझ में करते हैं प्रीति; तजि नारी सुत में फँसे कुजन।
उदरंभरजन का संग छोड़ि, मतलब भर जग सेवैं सज्जन ॥ ३

मतवारे ह्वै करते कुकर्म, इन्द्रीसुख को नर अज्ञानी ।
है ठीक नहीं आत्महि दुखदें, यह देह तुच्छ सुख लहि प्रानी ॥४

दो०—हारि मिलै अज्ञान सों, जबलौं नहिं विज्ञान ।
मूढ़ कर्म जबलौं करै, तबलौं जग बंधान ॥ ५

छ०—आत्मा में अविद्या छाई जब, तब कर्म के बश मन नरहि करै ।
मैं वासुदेव में प्रेम नहीं, तबलौं तन योग छुटै न तरै ॥ ६
ज्ञानी ह्वै सावधान जबलौं, गुण इंद्रिय की करतब न लखै ।
निजरूप सुरति तजि दुःखसहै, स्त्रीगृह सुखलहि मूढ झखै ॥ ७
मिलि स्त्री पुरुष सों देह बनी, मेरा मैं हिय में गांठि परी ।
घर खेतपुत्र धन मित्र आदि, सबही में मोह करि बिपति भरी ॥८
दिल में कर्मों की बँधी गांठ, मन रूप शिथिल हो युक्ती से ।
तब जीव जगत से विरागले, हरि भजै लगै निजमुक्ती से ॥ ६

दो०—हंस गुरू में भक्ति दृढ, दुख सहि तृष्णा त्याग ।
दुखमय सब ब्रह्मांड लखि, धारै तप वैराग ॥ १०

छ०—मम हेत कर्म करि कथा सुनै, हरि देव मानि गुणगान धरै ।
तजि देह गेह सों आत्मबुद्धि, निर्बैर शांतसम ह्वै विचरै ॥ ११
एकांत बैठि धरि आत्मयोग, इन्द्री औ प्राण को जीति भले ।
शुभश्रद्धा ब्रह्मचर्य दृढ़ धरि, तजि प्रमाद बानी संयम ले ॥ १२
सब जगह भाव ईश्वर देखै, विज्ञान से अनुभव किया करै ।
करि धैर्य हेतु युक्ती सुयोग, हंकार त्याग हित यतन धरै ॥ १३
निज कर्म भरो जो अंतःकरण, माया से सावधान देखै ।
सतयोग से जीवपना मेटै, योगहि तजि आत्मा परिपेखै ॥ १४

दो०—नृप गुरु निजसुत शिष्यको, मिलब सिखै भगवान ।
कर्महु में जोरै नहीं, नहिं समझै अज्ञान ॥

छं०—नहिं शुद्ध बुद्धि सुत शिष्यों की, क्या लाभ मिलै कर्महि लगाय।
अंधहि डारै जिमि कूप माहिं, कोइ भला कहै जिह को दिखाय १५
कामनामाहिं जग फँसा आप, कल्यान न सत्य लखै अपना।
कर बैर परस्पर लघुसुख हित, दुखसिंधुमें रात दिना खपना ॥१६
जो फँसा अविद्या माहिं आप, अस पंडित कौन ताहि नाशै।
अंधे को उलटी राह कहै, नहिं दया धरै दुख में गाँसै ॥ १७
वह गुरू नहीं नहिं स्वजन पिता, वह मातु नहीं नहिं देवपती।
उपदेश सांच जीवहिं न देत, हरि लेय न जन्म मरन विपती ॥१८

दो०—तर्कहीन मम मनुज तन, हृदय सत्य जहँ धर्म।
कहत ऋषभ ज्ञानी हमें, त्यागो सकल अधर्म ॥ १९

छं०—मम हृदय से सब सुत पैदा हो, करिमेल परस्पर बैर तजो।
निज भाई जेष्ठ भरत सेवो, यह प्रजा पालिबो ताहि भजो ॥२०
जीवों में बृक्ष तिनमें तिर्यक, तिनमें पशुहू सुबोध पाये।
तिनमें मनुष्य फिर गन्धर्वहु, किन्नर सिद्धहु उत्तम गाये ॥ २१
फिर देव दैत्य से इन्द्रबली, ब्रह्मा सुत दक्षादिक जानै।
तहँ शिव ब्रह्मा से विष्णु श्रेष्ठ, ब्रह्मण्यदेव हरि द्विज मानै ॥ २२
विप्रों के तुल्य नहिं और लखो, कुछ भी नहिं द्विजके तुल्य अहै।
हो तृप्ति विप्रमुखसे जैसी, नहिं अग्निहोत्र में कभूं लहै ॥ २३

दो०—वेद धरहिं जे हृदय में, जिनसे होवै ज्ञान।
शम दम सत्य दया धरे, तप तितिक्षु विज्ञान ॥ २४

छं०—तजि हरिको स्वर्ग न मुक्तिचहैं, परसे पर एक मोहिंजानैं।
नहिं कुछ इच्छा भक्ती चाहैं, मुझसे इक सत्य प्रेम ठानैं ॥ २५
चर अचर जगत हरिमय नितही, दिल में अपने लेना चहिये।

एकांत बैठि करके विचार, शुभ भेट प्रेम देना चहिये ॥ २६
मन बानी तन से कर्म करै, ईश्वर अर्पण सब कर देवे ।
इसके बिन मोह फाँस से जन, सपने में नहीं छुट्टी लेवे ॥ २७
श्रीशुक०उ०—सुत आपसिखे तौभी सिखाय, जग शिक्षा हित उपदेश किया ।
सबही के सुहृद भगवान ऋषभ, दृढ़ परमहंसही धर्म लिया ॥
समशील महामुनि कर्म त्यागि, भक्ती विराग विज्ञान भरे ।
जेहि लेहिं सोइ लै भरत सुतहिं, गद्दी दीनी हरिभक्त खरे ॥

दो०—नग्न मत्त केशहु खुले, अग्निहोत्र हिय धारि ।
ब्रह्मावर्तहि तजि चले, आतम रूप सँभारि ॥ २८

छ०—पुरखेर ग्राम खर्वट गिरि ब्रज, जड़ अंध बधिर गूंगे से फिरैं ।
गहि मौन न जनसों बोलैं चुप, अवधूत बेष धरिकै विचरैं ॥ २६
जन दुष्ट निरादर करैं भले, ज्यों मक्खी से बन गज न हिलैं ।
डर पावैं मारैं मूत्र करैं, थूकैं रज पत्थर से न चलैं ॥
मम मेरा तजि सरूप में थिर, कुछ गिने न सुख से महि विचरैं ।
अपमान देह नहिं आत्मा के, अनुभव सरूप विज्ञान धरैं ॥ ३०
कर पद सुकुमार सबै तन है, सुंदर स्वभाव मृदु हास लसै ।
छवि शरद कमल से नैन, कर्ण नासा मुख शोभा सुख विलसै ॥

दो०—नारी तन लखि मोहहीं, होहिं विवश लखि देह ।
यह मतवारे से फिरैं, तजि जग के संदेह ॥ ३१

छ०—जब लोग योग में विघ्न करैं, तब अजगर ब्रत दृढ़ ह्वै धारा ।
पौढ़े खावैं मल मूत्र करैं, बिष्ठा से लेपित तन सारा ॥ ३२
मलसे सुगंधयुत वायु चलै, दश योजन लौं सुगंध जावै । ३३
पशु मृग कौवा की चाल गहैं, तैसहि खावैं बैठैं आवैं ॥ ३४

बहु योगक्रिया दिल में धारे, अनुभव सत सुख अंतर लावैं।
आत्मा में सब जग देखि रहे, हरि वासुदेव मय सब ध्यावैं॥
मन वेग चाल आकाश गमन, परदेह प्रवेशादिक सिद्धी।
आईं सपने नहिं ग्रहण करैं, त्यागी दोउ लोकन की ऋद्धी॥

दो०—पाय गये निज रूप जब, को इनमें लपटाय।
सत्य रतन पावै नहीं, फिरि इत उत भटकाय॥ ३५

भजन—ऋषभ मुनि सुतहिं दीन उपदेश।
नरतन को फल यह नहिं भाई, भोगै विषय हमेश॥ टेक॥
करै अपन उद्धार देह लहि, धारो हिये सँदेश।
सांचा गुरु करि आतम ढूंढै, धारण करै निदेश॥ ऋषभ०
वह गुरु मात पिता नहिं सांचो, घरै फाँसि दे क्लेश।
माधवराम श्याम सो मिलिहैं, धरिकै सत्य सुबेष॥ ऋषभ०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः।

श्लोक—षष्ठे लीनाभिमानस्य देहत्याग क्रमाभिधा।
प्रदहंतं दवाग्निं यः पश्यन्नपि न पश्यति॥

दो०—मान त्यागि तनहू तजो, बन दवाँरि लहि दाह।
छठयें में वर्णन किया, लखै न बेपरवाह॥

राजो०छ०—हे मुनिजे आत्माराम अहैं, जिन ज्ञानसे कर्मबीज जारे
दुखदायक नहिं सुख भोग तिन्हैं, जो भाग विवश आवैं सारे १

ऋषिरुवाच—राजन कहतेहैं सत्यआप, विश्वासयोग यहमननाहीं
मृग ज्यों किरात से कष्ट लहै, उसके ढिग सपने नहिं जाहीं॥ २
मनसे कबहूं मित्रता न करि, विश्वास से तप पुरान छीजै। ३
कामादि शत्रु को ठौर देत, पुंश्चली नारि सम गुनि लीजै॥ ४
मद काम क्रोध भय शोक मोह, सब कर्मबंध की जड़ मन है।
विश्वास करै जो इस मनका, जगमें न कोइ अस सज्जन है॥५

दो०—लोकपालहू से सुघर, धरि अवधूत सुवेष।
आत्मा में आत्मा लखैं, देह त्याग निर्देश॥ ६

छ०—धरि मुक्त चिन्ह तन ऋषभदेव, प्रारब्ध भोग से धारे हैं।
दक्षिण कर्णाटक कोंकबेंक, कुटकाचल माहिं पधारे हैं॥
मुख में पत्थर को खंड धारि, पागल समान लीलाधारी।
खुल बाल नग्न विचरैं महिपै, प्रारब्ध सुखहिं दुख अनुसारी॥७
वायू से घर्षण बांस भये, प्रगटी अग्नी तन जरा सही। ८
नृप कोंकबेंक कुटकाचलको, अर्हन यह रीति अधर्म गही॥
भावी से मोहित पखंड गहि, कलियुग में अधिक प्रचार चले।९
माया से मोहित कलियुग नर, उलटे ब्रत धारण करहिं भले॥

दो०—जैनीधर्म प्रचार हो, वेद विप्र मख त्याग।
केशलुंच स्नान नहिं, हरि में नहिं अनुराग॥ १०

छ०—जे अंधपरम्परा गहैं लोग, आपहि सब अंधनर्क परिहैं।११
राजसी पुरुष की मुक्ति हेतु, अवतार भया शिक्षा धरिहैं॥ १२
सब द्वीप समुद्र युक्त महिमें, धनि भारतखंड देव कहते।
कल्याण करनहारे जगके, अवतार हरी जहँ बहु गहते॥ १३
है शुद्ध बंश प्रियब्रत नृपका, जहँ पुरुष पुराण प्रगट आये।

प्रभु आदिपुरुष अवतार धार, निष्कर्म धर्म जिन प्रगटाये॥ १४
मनसे भी और नहिं पाय सकै, यह दशा ऋषभ योगी धारे।
लखि तुच्छ योगसिद्धी त्यागीं, नहिं यतन किये पर निस्तारे १५

दो०—सबके ऋषभदेव गुरु, तिनका चरित विशुद्ध।
सुनैं सुनावैं पढैं जन, हरिभक्ती हो शुद्ध॥ १६

छ०—जगतापतपे मनको कविजन, जिस भक्ती में नहवाते हैं।
कैवल्य मुक्ति आवे निबृत्ति, पुरुषार्थ न लें हरि भाते हैं॥ १७
हे नृप तुम्हरो यदुवंशिन को, प्रिय कुलपति किंकर बनो हरी।
जो भजैं मुक्ति देवैं मुकुंद, नहिं भक्त कभी यह हिये धरी॥ १८
अनुभव से आत्मसरूप लाभ, सब तृष्णा जिनकी दूर भगी।
देहादि भोग रचना में बुद्धि, सो रही रूप देखन में जगी॥

दो०—जग के ऊपर दया धरि, निर्भय आत्म सरूप।
दिखरायो कल्यान हित, नमो ऋषभ हरि रूप॥

भजन ब०—गति परमहंस जग में प्रधान, होवै तन में जब मुक्ति ज्ञान।
जर गईं कर्म की ग्रंथि सबै, प्रारब्धभोग में सधे प्रान॥ टेक॥
निंदा संस्तुति अपमान मान, गहि रूप न इनमें देत ध्यान।
तन भोग वस्त्र को नहिं सँभार, मतवारो ज़िमि मद करै पान॥
अंतिम तन है कछु काल चलै, छूटे माया के दृढ़ बँधान।
अभ्यास न कर्म अकर्म धरे, आतम सरूप निरखैं जहान॥
सिद्धिहु सपने न लखैं सुलोक, समभैंसुख दुख सम मणि पखान।
जिन हरि दाया से होय भक्ति, माधौराम श्याम गुन करैं गान॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः

श्लोक–सप्तमे भरतोराज्ये चिरं यज्ञैर्हरिंयजन् ।
आरब्धकर्म निर्वाणे हरिक्षेत्रेऽभजद्धरिम् ॥

दो०–ऋषभचरित कहि तीन में, आठ में भरतहि गाय ।
भरत राज सतयें लही, भाग भोगि हरि ध्याय ॥

श्रीशुकउ०–हरिभक्तभरत पितु राजपाय, शुभ विश्वरूप कन्याब्याही १
अपने समान भये पांच पुत्र, जनु पांच तत्व उपमा आही ॥ २
इक सुमति राष्ट्रभृत धूम्रकेतु, आवरण सुदर्शन सब गुन धाम ।
अजनाभखंड पहले यह था, नृप भरत से भारतखंड नाम ॥ ३
यह ज्ञानी नृप निज निज सुकर्म, करवाय प्रजा पालन करते ।४
मखदर्श अग्निहोत्रहु आदिक, सब बड़ी पूर्णविधिसे धरते ॥५
करि यज्ञ करैं फल हरि अर्पण, देवों का वह इक स्वामी है ।
भगवान वासुदेवहिं ध्यावैं, सब देव जासु अनुगामी हैं ॥ ६
दो०–कर्म शुद्ध सों हिय विमल, महापुरुष धरि ध्यान ।
नख शिख मणि बनमाल लखि, भक्ति बेग बलवान ॥७
छ०–दश हजार को गुण हजार से, करि इतने वर्ष भरत सुराज ।
फिर बाँट राज निज पुत्रोंको, गये पुलहाश्रम तप करन काज ८
निज भक्तों के हित हं अबहूं, निज इच्छा से प्रगटात हरी । ९
गण्डकी है शालिग्राम नदी, अतिही पवित्र थल नित्यकरी ॥१०
तिसमें इकले बसि भरतभूप, फल पत्र मूल से प्रभु पूजा ।
सब चाहत्यागि ह्वै शांतचित्त, पाई निवृत्ति न काम दूजा ॥११

बहु सेवा से बाढ़ा सुप्रेम, हरि में हिय हर्ष शिथिल हरदम।
उतकंठा रोम खड़े विह्वल, बह नैनधार आह्लाद न कम॥

दो०—प्राणप्रिय के पदकमल, प्रेमसहित करि ध्यान।
कीनी सेवा बिसरहीं, भक्तिभाव अधिकान॥ १२

छ०—भगवत व्रत धारे मृग सुचर्म, करते स्नान त्रिकाल भूप।
शिर जटा रहैं हरदम गीले, ध्यावैं हिरण्यमय सूर्य रूप॥
रविमंडल प्रातःकाल उदय, करि उपस्थान यह पढ़ते हैं।
निष्कामकर्म करि हरि अर्पण, छन छनहि भक्तिपथ चढ़ते हैं १३
रजप्रकृति परे सत शुद्ध रूप, सविता रविदेव तेज आया।
वह जातवेद श्रुति कर्मफलहि, मनसे यह विश्वहिं प्रगटाया॥
जगमें प्रवेश करि चितशक्ती से, जीवहिं सदा निहारत हैं।
मनुजों में बुद्धिगति देते हैं, सोइ तेज हिये हम धारत हैं॥

दो०—शरण अहैं उस तेज की, यह विधि सूर्य मनाय।
भरत भूप नित भजत हैं, हरि हिरदे में लाय॥ १४

भजन—भरत नृप भजत हरी चित लाय।
करि सुराज पुनि बाँटि सुतन को, बन में पहुंचे जाय॥ टेक
हरि पूजैं तहँ पत्र पुष्प सों, बनफल भोग लगाय।
कीनी पूजा बिसरि जात है, रह्यो प्रेम उर छाय॥ भरत०
करि त्रिकाल स्नान पूजि रवि, वेद पढ़ैं हरषाय।
माधवराम उचित अस आखिर, जग तजि हरि लपटाय॥ भरत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः

श्लोक—अष्टमे भजतो विष्णुं तस्य कर्मान्तरायतः ।
एणरच्चाप्रसक्तस्य जातमेणत्व मीर्यते ॥ १ ॥

कृपयापिकृतः संगः पतनायैव योगिनः ।
इति प्रदर्शयन्नाह भरतस्यैण पोषणम् ॥ २ ॥

दो०—अठयें में हरिभजन में, पड़ा विघ्न यह आय ।
मृगसुत में मन लगि गया, मृगतन पायो जाय ॥

श्रीशुक उ०छ०—करि महानदी स्नान प्रात, जपिमंत्रनीरतट तीनघड़ी १
प्यासी इक मृगी तहाँ आई, इकली चकचौंधी तहाँ खड़ी ॥ २
जल पीवै सिंह तहाँ गरजा, भयदायक शब्द उठा भारी । ३
सुनि मृगी सिंह भय से हो विकल, उछली घबड़ाकर हियहारी ४
थी गर्भवती जब उछली वह, पैदा हो बच्चा जलमें गिरा । ५
वह भागि भयातुर स्वगण छूट, कंदरा माहिं पड़ि देह मरा ॥ ६
जल में बच्चा बहि चला जबहिं, दाया करि भरत ताहि लाये ।
मरगई मातु बिछुड़ी इससे, इसके न कोइ कहि अपनाये ॥ ७

दो०—अहंकार करि नित्य नृप, सुत पालन में लाग ।
भक्ति नियम यम प्रेम हरि, धीरे धीरे त्याग ॥ ८

छ०—यह काल विवश निज मा कुलसे, सुतबिछड़ा मम शरणहिं आया ।
मुझही को सब कुछ मानरहा, पालन पोषण में मनलाया ॥ ९
समशीलसाधु जे दयावान, योंहीं निज स्वारथ तजि देते । १०
आना जाना खाना सोना, मृगसुत के साथ भूप लेते ॥ ११

फल फूल पत्र कुश लेन जाँय, वृकसिंह से भयगुनि संगलिये १२
बन जावैं पथ में बार बार, लखि प्रेमभरा चित सुतमें दिये ॥ १३
आनंद लहैं तेहि लालन करि, पूजन से उठि उठि कै देखैं।
कहि वत्स तात रहु चिरंजीव, नृप आशिष दै मृगसुत पेखैं ॥१४

दो०—बिन देखे घबरात हैं, दरिद्र जिमि धन खोय।
मृगसुतमें विह्वल नृपति, प्रेम करहिं दें रोय ॥ १५

छ०—दुखिया मृगसुत मा मरी जासु, मुझसुकृतहीन ढिग आवेगा
शठकिरातमतिपैप्रतीतिकरि, जिमि सुजन न चितकुछलावैगा १६
आश्रम समीप तेहि चरत घास, सुर रक्षित क्या हम देखेंगे १७
वृक सिंह न खाय जांय उसको, इकले बहु मिलि किमि पेखेंगे १८
वह मृगी धरोहर नहिं आया, अस्ताचल रवि भगवान चले १६
निज बालकपनके खेल दिखा, अबहूँ मृगवत्स न मुझे मिले २०
छोटे सींगों से मेरी पीठ, खुजलावे चकित लखै डरिकै।
झूठी समाधि धरूँ नैनबन्द, हिय में सप्रेम मृगसुत धरिकै ॥ २१

दो०—कुश जुठार जब डाँटते, मुनिसुत सम डर जाय।
नहिं कूदहि खेलहि तहाँ, पितु सम मोहिं मनाय ॥ २२

छ०—क्या तप कीना इस पृथ्वीने, खुर से खोदै मृगसुत विचरै।
मृगवाली महि हो यज्ञ योग, अस शास्त्र कहैं मुनि यज्ञ करैं ॥२३
मा मरी वत्स को दयालु शशि, बृक सिंह से उसे बचावैंगे। २४
सुत वियोग से ममहृदयतपित, निज किरणों से जुड़वावैंगे ॥ २५
अघटित मनोर्थ से विकल हृदय, नृप योग ध्यान से विचल गये।
प्रारब्ध से छूटा हरी भजन, मृग में विचार हों नये नये ॥

पहिले सुत नारी त्यागि दिये, अस मोह विघ्नमय उसमें बढ़ा।
पालन पोषन सोचते मरे, ज्यों सर्प मूस शिर काल चढ़ा॥ २६

दो०—सोचत सुत मृग पास जनु, निज पुत्रहि जिमि बाप।
मरिकै राजा मृग भये, मोह देत अस ताप॥ २७

छ०—भजनै प्रभाव से मृग तनमें, सब याद रही दुख लहि कहते।
नृप तन तजि मृग शरीर पाया, नहिं छूट सकै छुटने चहते॥ २८
हा कष्ट त्यागि सब संग फँसे, ज्ञानियों के मारग से विचले।
बन पुण्य बास हिय हरि निवास, नहिं संग पास माया कुचले॥
करि श्रवण मनन कीर्तन हरिका, हर समय एक प्रभुही सुमिरै।
सो मृगसुत में बँध गया हाय, मेरा मन दुःख विपत्ति भरै॥२६
सँभले तजि दीनी मृगी मातु, मृगकुल सब तजिकै भागि चले।
पुलहाश्रम शालग्राम जहां, कालंजरगिरि से आय मिले॥ ३०
परखे हैं काल को संग त्यागि, इक आत्मासंगी सब से डरे।
सूखे पत्ते खा जल मैला, पीते घामहि में रहैं खड़े॥

दो०—समाप्ति है मृगदेह से, करैं तीर्थ स्नान।
समय आय तन तज दिया, करि हिय में हरि ध्यान॥३१

भजन—जीव को दुःख दुनिया में, मोह संगहि दिखावै है।
भजन भगवान का सब धन, पलक में लूट खावै है॥ टेक
राज सुत नारि कुल त्यागी, बसे बन में भरत राजा।
मृगीसुत में बँधे सँग से, मृगा बनि दुख उठावै है॥ जीव०
अकेला जन्म ले जग में, मरे पर एकला जावै।
लखो माया प्रबल प्यारे, तुम्हें घर में बँधावै है॥ जीव०

जहां तक हो सके जिससे, बचै हरदम कुसंगत से।
बिपति दुख जन्म जग भीतर, जीव इसही से पावै है॥ जीव०
अगर संगत हो सज्जन की, तहां हरि की करै चर्चा।
बनै सब भांति माधवराम, हरि गुन गान गावै है॥ जीव०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे नवमोऽध्यायः।

श्लोक—नवमे जड़विप्रत्वे तस्य रागाद्यभावतः।
भद्रकाली पशुत्वेऽपि निर्विकारत्वमीर्यते॥ १॥
पितुः प्राप्तात्मविज्ञानो भरतो मृगतां गतः।
प्रारब्धकर्म वेगेन तदन्ते जड़ विप्रताम्॥ २॥

दो०—नवयें में द्विज जड़ भरत, हिय रागादि न लाव।
भद्रकालि बलि देत खल, तनक विकार न आव॥

श्रीशुकउ०छ०—अंगिरस गोत्र शमदम आदिक, युतब्राह्मण के घर जन्म लिया
पहली तिय में नवपुत्र भये, दूसरी में जोड़ा बिधि ने दिया॥ १
जो पुरुष परमभागवत भरत, नृप अंतिमतन द्विजका पाये। २
संगहि से तहां पर भय खावैं, भगवत सुमिरन सुध्यान लाये॥
मातहु का त्याग डरि संगहि से, है याद सभी हरि दाया से।
जड़ मत्त बधिर सी गतिधारी, बचना चाहैं इस माया से॥ ३
करि संस्कार पितु सनेह से, गायत्री मंत्र पढ़ाते हैं।
सुत पितातुल्यहो यह गुनिकै, पर यह मन एक न लाते हैं॥ ४

दो०—पितु समीप सीखत रहे, गायत्री अभ्यास।
भली भांति आई नहीं, बीते चारिहु मास ॥ ५

छ०—लघुसुतमें पितुका अधिकनेह, सुत व्रतशौचादिककुछ न करै
नहिं पूर मनोरथ हारि गये, घर में भूले लहि काल मरै ॥ ६
बड़िनारि को दै निज सुत कन्या, छोटी पतिकेसंग सतीभई ।७
पितु मरे पै भाई पढे लिखे, यह मूरख है अस बुद्धि दई ॥ ८
पशुतुल्य चाल मतवारो जड़, जो कहो उलटि सो कह देवै।
पर इच्छा से करते बिगार, जो मिलै पेट निज भर लेवै ॥
लहि नित्य निवृत्ति स्वभावसिद्ध, ह्वै आत्मानंद सदा रहते।
सुख दुख से बाहर द्वंद तजे, अभिमान नहीं मन में गहते ॥ ९

दो०—शीत उष्ण नहिं गनै कुछ, पुष्ट बैल सम अंग।
भूमिशयन स्नान नहिं, सबही उलटे ढंग ॥

छ०—जिमि महामणी छिप ब्रह्मतेज, कटिमें कुपीन मैली धारे।
यह ब्रह्मबंधु अपमान करैं, सब आप फिरैं जग से न्यारे ॥ १०
औरों की मंजूरी करैं खांय, भाई कृषि माहिं लगाते हैं।
करते हैं खूब उलटा पलटा, नहिं बिगड़ा बना मनाते हैं ॥

दो०—घास निरावन जब कहैं, तब काटहिं सब खेत।
खाई खोदन कहतही, करैं कूप को नेत ॥

छ०—कन पीना अखुआ जरा अन्न, भौजाई आगे जो लावैं।
हां हूं से है कुछ काम नहीं, अमृत समान सब खा जावैं ॥ ११
इक बृषलपती है शूद्र देत, नर बली भद्रकाली संमुख। १२
वह नरपशु निशि में छूट गया, धाये नौकर मनमें बहु दुख ॥
जड़ भरत खेत में बैठे हैं, रखवाली मिस से भजन करैं। १३

निज मालिक काम पूर लखि कै, रस्सी से बांधि इनको पकरैं १४
देवी मंदिर ले गये पूजि, माला सुवस्त्र पहनाये हैं।
करि धूप दीप भोजन खवाय, सब मिलिकै गीतहु गाये हैं ॥१५

दो०—शूद्र पुरोहित खड्ग लै, ठाढ़ो संमुख आय।
देवी नर को रक्त पी, खुशी होय हरषाय ॥ १६

छ०—रज तम सुभाव सब शूद्र मंद, निरबैर विप्र की बलि प्रगटी।
सबके हितकारी ब्रह्मतेज, सहि सकी न देवीमूर्ति फटी ॥ १७
करि कोप भौंह टेढ़ी कराल, डाढ़ैं विकराल रूप धारे।
लै खड्ग हाथ करि अट्टहास, बिन बिन के दुष्ट सभी मारे॥
प्रगटी योगिनी संग ताके, करि रक्तपान नाचैं गावैं।
शिर लै कंदुक लीला खेलैं, जड़ भरत हृदय कुछ नहिं लावैं १८
अपराध महात्मा का योंही, अपने ही शिर पर आवै है। १६
नहिं विचित्र कुछ हरिजन में यह, शिर कटते नहिं डरलावै है॥

दो०—मुक्तमान हियगांठ छुट, सबके हितु निरबैर।
परमहंस हरिपद निरत, तिनको सब थल खैर ॥ २०

भजन—दादरा—नियत का फल सब थल मिलै यार ॥ टेक ॥
भक्त जड़ भरत भजत हिये हरि, हैं माया से पार।
तिन्हैं शूद्रपति बलि हित लाया, देखो यह आचार ॥ नियत०
देवी देव सम्हार सकैं नहिं, जनको तेज अपार।
फटी भद्रकाली की मूरति, गही हाथ तलवार ॥ नियत०
मारि दुष्टजन ढेर किये झट, भै संतन रखवार।
माधवराम श्यामपद लेहैं, माया के आधार ॥ नियत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे नवमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे दशमोऽध्यायः ।

श्लोक—दशमे क्षिपताराज्ञा शिविकां स्वांवहन् मुनिः ।
स्वदुर्वादानुवादेन विज्ञाया शुप्रसादितः ॥ १ ॥
एवंभूताविकारित्वमज्ञसर्वज्ञयोः समम् ।
इति सर्वज्ञतासिद्ध्यै रहूगण कथेरणम् ॥ २ ॥

दो०—दशवें में नृप पालकी, धारी भा अपमान ।
बहुत कहे बोले बचन, पायो तासों मान ॥

श्रीशुकउ०छ०—नृपसिंधुदेशका रहूगणहु, तट इक्षुमतीपरआयाहै
मांदा कहार हो गया ढूंढ, इनहीं को तहां लगाया है ॥
प्रारब्धभोग इक यह भी है, द्विजबर जवान बल भारी है ।
ले चले पालकी झोका दै, नहिं उलटा पलट बिचारी है ॥ १
लखि पांच हाथ तहँ कूदिगिरे, शिविका पलटै नृप कोप लिया ।
क्या गड़बड़ करते ठीक चलो, सबको कटु बैन प्रहार किया ॥ २
मारने के भय से सब कहते, हम सब सीधे ले चलते हैं । ३
अबहीं जो लगा करै गड़बड़, हम चलैं न संग सँभलते हैं ॥ ४

दो०—संग दोष सबको लगै, एक करै सब जाहिं ।
सुनि नृप सेये वृद्धहू, कोपित कटुक कहाहिं ॥ ५

छ०—हे भाई थके तुम इकलेही, यह बोझा दूर से लाये हो ।
दुबले पतले बुड्ढे हो मित्र, इससे अब तुम घबराये हो ॥
बहु कटुक कहा अज्ञान धारि, तन अंतिम में आत्मज्ञानी ।
चुपचाप पालकी धरे कंध, मैं मोर त्यागि चुप मन आनी ॥ ६

फिर शिविका टेढ़ी भई क्रोध से, बका बहुत नृप अभिमानी ।
जीते ही मरा समझैं न मुझे, लै दंड दवा दूँ रे मानी ॥ ७
नृप मान धरे बहु कटुक कहा, पंडित मानी अभिमान भरा ।
द्विज ब्रह्मरूप सबहीके मित्र, योगी हँसि बोले बचन खरा ॥ ८
ब्राह्मण उ० दो०—विप्रलंभ नृप कहा जो, नहिं मुझमें कुछ भार ।
चलै न आत्मा देह चल, मोटहु कृश तनधार ॥ ९
छ०—मोटा दुबलापन आधिव्याधि, भयभूख प्यास बृधपन इच्छा
निद्रा रति कोप अहं मद सब, तनही में हैं यह शुभशिक्षा ॥ १०
नहिं आत्मा में जीना मरना, सब विकार तो इस तन में है ।
विधिकर्मयोग है लखोभूप, सब नृपतिभाव लघु मनमें है ॥ ११
बुद्धी के भेद कमती बढ़ती, व्यवहार में सब लख आते हैं ।
आत्मा में हुक्म नहिं मालिकपन, पर कहो सो कहना लाते हैं१२
उन्मत्त मत्त जड़ सम हम हैं, हो दवा से क्या लै ब्रह्म भाव ।
जो मुक्त नहीं केवल प्रमत्त, तो शिक्षा दे क्या लाभ उठाव १३
श्रीशुक उ० दो०—बानी कह अनुवादमय, मुनिबर शांतमहान ।
कर्मभोग सब मानिकै, लई पालकी तान ॥१४
छ०—नृप तत्व जानिबे में श्रद्धा, हिय ग्रंथि छोर बातैं अटपट ।
बहु योग ग्रंथ संमत बानी, सुनि उतरि चरण गहि लीने झट १५
बोले हैं आप कौन द्विज में, यह ब्रह्मसूत्र छिपि धारे हैं ।
किसके सुत कहां से किमि आये, क्या धरि तन हरी पधारे हैं १६
नहिं इन्द्र बज्र शिव शूल से डर, यमराज दंड से डर नाहीं ।
अग्नी रवि चन्द्र वायु धनपति, से डरैं न द्विज से भय खाहीं १७
कहिये असंग विज्ञान धरे, ऐसे कैसे महि विचरि रहे ।
मनसे विचार नहिं भेद सकैं, असयोगमिलित प्रभुबचन कहे १८

ज्ञानी मुनियों के परमगुरू, अवतार कपिल से लूँ शिक्षा । १६
घर फँसो मंदमति किमि जानौं, तुम गुप्त विचरते निज इच्छा २०
दो०—भ्रम दीखत है कर्म से, आत्मा निर्गुण माहिं ।
चलब थकब आदिक सबै, असत समूल लखाहिं ॥ २१
छं०—व्यवहार सत्य है अग्नि तपै, बटलोई फिर जल अन्न चुरै ।
ऐसे तन इन्द्री मन बुद्धी, लहि दुख सुख आत्मा निजमें धरै २२
शिक्षक रक्षक नृप प्रजा का है, हरिजन पीसे को नहिं पीसै ।
हरि धर्म अराधन हरै पाप, सो लहै न दुख भजते ईशै ॥ २३
नृप गुमान से तुम्हैं तुच्छ लखा, हरिभक्त अनोखा बेष धरे ।
हे आर्तबंधु करो दयादृष्टि, यह दीन घोर भव पाप तरे ॥ २४
दो०—विकार नहिं हिय शुद्ध तुव, मान त्याग जग मीत ।
हम क्या शिव सत मान हरि, पावहिं शीघ्र फजीत २५
भजन—हानिदायकविप्रनअपमान,लखैंनहिं अंधेभरेगुमान ।।टेक
चक्र हरि शिव त्रिशूल दे छोड़ि, न मारै यमदंडहु बलवान ।
देव सब कोप करैं बचिजाय, विप्र कोपे नहिं कहूं ठिकान ।। हानि०
मनाये विप्र संत सुख होय, दुखाये नहिं सपने कल्यान ।
इष्ट माधोराम के विप्रहु संत, करत संमुख हरिके गुनगान ।। हानि०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे दशमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे एकादशोऽध्यायः

श्लोक—एकादशे तु संपृष्टो रहूगण महीभृता ।
उपादिशत्परं ज्ञानं स योगीति निगद्यते ॥

दो०—ग्यारह में रहुगण नृपति, द्विज से कीन सवाल।
परमज्ञान उपदेश कर, मुनी किया प्रतिपाल॥
ब्राह्मणउ०छं०—नहिंपंडित नृप पंडितकी बात,करतेनहिंगिनैंज्ञानिजनमें
ज्ञानीजन जग व्यवहार कभी, नहिं तत्व मेलकरते मनमें॥१
हे नृप यज्ञादिक कर्म बड़े, जहँ वेद विधान बहुत होवै।
नहिं वेदवाद में तत्ववाद, शोभा पावै दिलसे जोवै॥२
बाचा ज्ञानी को परिपूरण, नहिं तत्व सार लख में आवै।
कोइ स्वप्न में गृहसुखभोग किया, क्या प्रतत्त में अनुभव लावै ३
जब तक तम रज सतगुन में नृप, मानुषका मन लपटाया है।
तब तक मन अच्छा या तो बुरा, कुछ कर्म करै श्रुति गाया है॥४
दो०—पंचतत्व दश इन्द्रियां, मन मिलि सोलह होंय।
विषय वासना में फँसे, बहु तन रचैं सँजोय॥५
छं०—सुख दुःख मोह माया रचते, सब समय,पाय कर फल आवै।
माया में फाँसि कर जीवात्मा, सब जगतजाल यह फैलावै॥६
तब तक व्यवहार प्रतत्त रहै, स्थूल सूक्ष्म साक्षी आत्मा।
गुण अगुण जगत मोक्षहुमें सदा, मनही कारण नहिं परमात्मा ७
गुण में लिपटा मन जगत रचै, निर्गुण में मन मुक्ती पावै।
घी बत्ती से जलता दीपक, चुक गये रूप निज हो जावै॥
गुण कर्म विधा मन रचै बृत्ति, गुण कर्म छूटि मन तत्व मिलै ८
मनही की हैं ग्यारह बृत्ती, दश ज्ञान कर्म अभिमानहि लै॥
दो०—पंच मात्रा ज्ञान की, पंच कर्म परधान।
मन सब में मालिक रहै, ग्यारह भूमि बखान॥९
छं०—स्पर्श शब्द रस रूप गंध, यह पांच ज्ञानमात्राहु सुनो।
मल मूत्र चलन करतब बानी, ग्यारह बारह मन जीव गुनो १०

विषयौ स्वभाव संस्कार कर्म, मन के विकार ग्यारह सब हैं।
शत सहस कोटि होवै तिनसे, कालहु क्षोभक सब करतब हैं ११
माया से रचित मन जीव बृत्ति, क्षेत्रज्ञ आत्मा में भासहिं।
प्रगटैं लोपैं वह शुद्ध रहै, साक्षी सरूप करु विश्वासहिं॥ १२
क्षेतज्ञ आत्मा पर पुरान, नर स्वयं ज्योति अज इश अहै।
नारायण वासुदेव भगवत, माया से रचना जगत चहै॥ १३
चर अचर जीव में वायु प्रविशि, ज्यों बाहर भीतर धावै है।
क्षेत्रज्ञ आत्मा वासुदेव, जग बाहर भीतर पावै है॥ १४

दो॰—जबलौं ज्ञान उदय नहीं, माया होय न नाश।
संग त्याग रिपु विजय नहिं, आत्मा नाहिं प्रकाश १५

छ॰—तबलौं जग भीतर भ्रमै जीव, जबलौं मन नहिं जगबीज लखै
भय शोक मोह रोगहू बैर, ममता लहि बारंबार झखै॥ १६
संसार ताप को खेत, उपाधीमय मन ही कहलावै है।
भाई सम अधिक बल भरो सदा, छोड़े से मन बढ़ जावै है॥

दो॰—सावधान रह जीव नित, जीतै मन ठगहार।
गुरु हरिपद सेवा गहै, हाथ तेज तलवार॥ १७

भजन—कठिन है जगत जीव उद्धार॥ टेक॥
दश इन्द्री मन ग्यारह मिलि कै, रचैं सकल संसार।
अहंकार धरि जीवहि फाँसै, भोगै सबै विकार॥ कठिन॰
साक्षी बनि बंधन को मानै, मूरख महा गवाँर।
गुणमय फलै कर्म सुख दुख सब, देखो नैन पसार॥ कठिन॰
तजि अभिमान भोगि प्रारब्धहि, मौन गहै शुभसार।
माधवराम पार भव भ्रमसों, करिकै आत्म विचार॥ कठिन॰

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे एकादशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ।

श्लोक–द्वादशे पुनरापृष्टः संदेहेन महीभृता ।
सयोगी सर्वसंदेहानपानुददितीर्यते ॥

दो०–पुनि संशय नृप हिय करै, पूंछै प्रश्न अनेक ।
बारह में जड़ भरतजी, कहते विमल विवेक ॥

रहूगण उ० छ०–हरिहीयह तन धरि कै राजे, है नमो तुच्छ तन माने हो ।
द्विज बंधुरूप धरि नमो तुम्हैं, अवधूत स्वरूप पहिचाने हो ॥ १
रोगी को जैसे औषध हो, प्यासे को शीतल जल जैसे ।
तन मानी अंधदृष्टि मुझको, है बचन अमृत औषध तैसे ॥ २
फिर संशय अपने पूंछौंगा, अब आत्म योग उपदेश करौ ।
आश्चर्ययुक्त चित है मेरा, कहि बोध बचन संदेह हरौ ॥ ३
हे योगेश्वर जग दृश्यमान, फल क्रिया चलन थकना व्यवहार ।
यह तत्वज्ञान के योग नहीं, इस कथनमें मम मन संशय धार ४

ब्राह्मण उ० दो०–महि पर चलता जीव तन, हे नृप माटी जान ।
पद जंघा कटि हृदय शिर, माटी के पहिचान ॥ ५

छ०–कंधे पै पालकी माटी की, माटी का नृप बनि तू असवार ।
राजा हूँ सिंधुदेश का मैं, मानी दुर्मद हिय अंधकार ॥ ६
ये शोचनीय अति दीन मनुज, पकरे बिगार में दया रहित ।
हम जनरक्षक हैं मान लिया, नहिं बृद्ध सभा में पावै हित ॥ ७
माटी से जग बनि नाश होय, सब नाम मात्र औरहु व्यवहार ।
वाचारंभरण विकार जानौ, है सत्य मृत्तिका श्रुती पुकार ॥ ८

महि शब्द बर्तना अर्थ बिना, परमाणू में महि नाश होय।
मन युक्त अविद्या से रचिकर, परमाणु मिले महि गुनै टोय॥ ९

दो०—स्थूल सूक्ष्म सत असत जड़, चेतन तत्व स्वभाव।
काल कर्म जहँ लौं जगत, माया केर बनाव॥ १०

छ०—है ज्ञान शुद्ध परमार्थ ब्रह्म, अंतर नहिं सत्य सरूप अहै।
कवि कहते वासुदेव भगवत, एकहि बहुरूप विचित्र रहै॥ ११
हे नृप तपयज्ञ किये न मिलै, नहिं अन्नदान गृह त्यागे से।
नहिं वेद सेइ जल अग्नि सूर्य, मिलै महात्मपदरज लागे से॥१२
जिन महात्म ढिग हो विष्णुकथा, संसारकथा सब छुट जावै।
सेवै मुमुक्षु दिनराति तिन्हैं, हरि वासुदेव में बुधि आवै॥ १३
मैं भी था पहलेजन्म भूप, था नाम भरत जगसंग तजा।
हरि भजूँ संगमृग भया मुझे, मृग तन पाया यह मिली सजा १४
मृगशरीर में भी याद रही, हरि भजने का प्रभाव ऐसा।
जनसंग से डरता असँग रहे, नहिं प्रगट होउँ टूटो रैसा॥ १५

दो०—तजि कुसंग सतसंग करि, लेय ज्ञान तलवार।
मोह काटि हरि सुमिरि कै, हो जावै भवपार॥ १६

भजन दा०—महात्मापदरज ब्रह्म मिलाव, और न कोउ उपाव॥
तप जप योग यज्ञ सब साधै, तीरथ सबै नहाव।
गिरि पर्वत बन ठौर ठौर चह, भटकि भटकि मर जाव॥ महात्मा०
अंतःकरण शुद्ध हो सबसे, इतना ही फल पाव।
माधवराम पाय सन्तनरज, ब्रह्मरूप दरशाव॥ महात्मा०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः।

श्रीमान् त्रिपाठी ठाकुरप्रसादजी के पौत्र

श्रीमान् त्रिपाठी रामचरणजी के पुत्र

श्रीमान् त्रिपाठी गंगाप्रसादजी 'पहलवान'
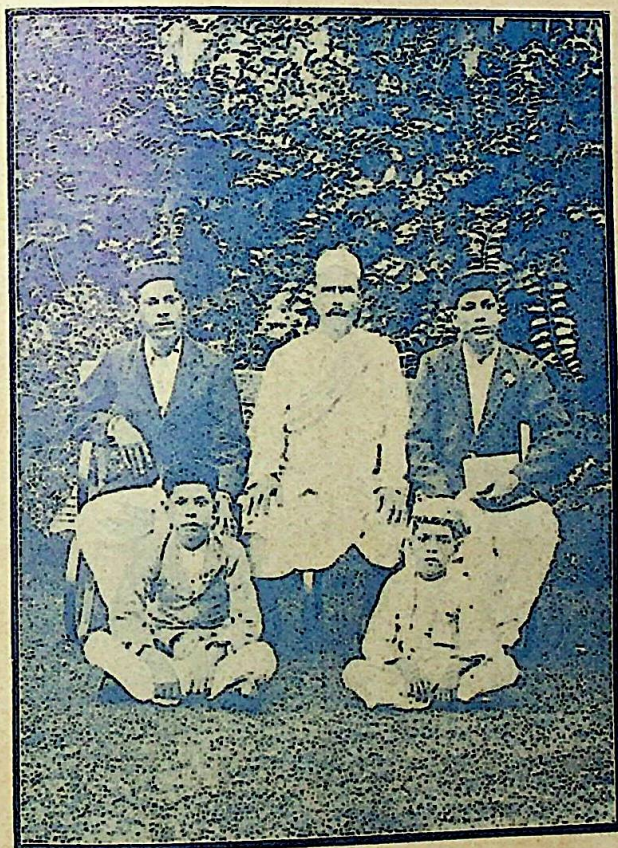
आप ग्रन्थकर्ता के सम्बन्धी हैं। आप बड़े ही उदार, योग्य पुरुष हैं। आप के जगन्नाथप्रसाद, बद्रीप्रसाद, रामकृष्ण नामक तीन पुत्र तथा रामरत्न पांडेय कन्यापुत्र हैं। आपने पंचम स्कन्ध की वितरणार्थ ५०० पुस्तकों की छपाई में अच्छा धन देकर सहायता प्रदान की है।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः।

श्लोक—त्रयोदशेऽविरक्ताय बृथा तत्वनिरूपणम्।
इति वैराग्यदार्ढ्याय भवाटव्युपवर्ण्यते॥

दो०—तत्वज्ञान सब है बृथा, जो नहिं होय विराग।
भवगृवी वर्णन करै, तेरह में जग त्याग॥

ब्राह्मणउ०—दुरत्ययेऽध्वन्यजयानिवेशितो,
रजस्तमःसत्वविभक्त कर्म दृक्।
स एष सार्थोऽर्थपरः प्ररिभ्रमन्,
भवगृवीं याति नशर्म विंदति॥ १॥

यस्यामिमे षएनरदेव दस्यवः,
सार्थं विलुंपंति कुनायकं वलात्।
गोमा यवो यत्र हरन्ति सार्थिकं,
प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः॥ २॥

दो०—भव की मारग कठिन अति, माया में पड़ि जीव।
ज्यों बनजारा भ्रमै पथ, पावत दुःख अतीव॥ १

छं०—छै चोर लुटेरे काम क्रोध, मद लोभ मोह सब लूट करैं।
लै भगै भेड़िया ज्यों बकरी, धन धर्म तैसही छीन हरै॥ २
है निर्जन बन घर कठिन काम, अरु मसा डाँस सम दुष्ट फिकिर।
गन्धर्वनगर माया मनोर्थ, चहै सोन अग्नि ले भूत पकरि॥
बनमें पिशाचके मुखसे अग्नि, निकले बनजारा (जीव) लेने जाय।
झट पकरि पिशाच खायजावै, नहिं चलै वहां कोइ यत्न उपाय॥

परदेश पिशाच है द्रव्य अग्नि, घर देश छोड़ नर धावै है।
लालच में पड़ि सब धर्म तजै, मरि अंत नर्क में जावै है॥
दो०—जो मर जावै त्यागि कर, चलै मार्ग दिन रात।
पार न पायो आजलौं, बहुत काल चलि जात॥ ३
छ०—विश्रामठौर जल सहित, ढूँढता फिरै आत्ममति जग बनमें।
चल आँधी तहँ उड़ि धूर पड़ी, आंखों में न सूझै निर्जन में॥
वह वायुरूप नारी जानौ, इसका चक्कर है बड़ा कठिन।
पड़ के सब अन्धे हो जाते, धन्धे छुट जांय न चलै यतन॥ ४
झिल्ली उल्लू बहु शब्द करैं, सुन सुन दिल से घबराता है।
भूखा हो तुच्छ वृत्ततल में, फल की आशा कर जाता है॥
प्यासा हो मृगतृष्णा जल को, दौड़ै नहिं समझाये मानै।
ज्यों ज्यों कोइ कहता झूँठा है, सच मान जिद्द अपनी ठानै॥
दो०—पीछे निन्दा कटु कहैं, ते नर झिल्ली जान।
जो सन्मुख दुर्बचन कहँ, उल्लू तिनको मान॥
छ०—फल इच्छा भूख सेवै अधर्म, अपवित्र वृत्त इसको कहते।
विषयों की चाह सोइ तृष्णा है, मृगजलहैं विषय न सुख लहते॥ ५
जलहीन नदी में जलहित जा, हो क्षुधित अन्न भी चहता है।
बन दवारि में तप के व्याकुल, यत्नों से मृत्यू लहता है॥
पाखंड सभी बिन जल की नदी, ह्यां धर्म सुजल का नाम नहीं।
घरवाले अन्न न जीते दें, मरने पै श्राद्ध का काम सही॥
बन दवारि शोक अग्नि जानौ, भीतर बाहर से जारै है।
हर लेत चोर नृप धनहि प्रान, जीतेही इसको मारै है॥ ६
चोरों ने हरा धन दुखी चित्त, करि शोक मोह दुख पाता है।
गंधर्व नगर लखके कबहूँ, दिल में अति हर्ष मनाता है॥

दो०—धर्म छीन लियो इन्द्रियन, मन से अधिक मलीन।
पुर गंधर्व मग्न ह्वै, धन सुत आशा कीन ॥ ७

छ०—कहिं कंकड़ काँटा पगमें गड़ै, पर्वत चढ़ि बहुत उदास भया।
पग पग में जलता भुलभुल से, है करता कुटुँब पर क्रोधनया ॥
कामों में विघ्न सोइ काँटे हैं, बड़े काम काज पर्वत जानो।
बेटी विवाह को धन न पास, यह पर्वत पर चढ़ना मानो ॥
घर बार फिक्र सोइ भुलभुल है, दिनरात जलै अति व्याकुल है।
गुस्सा करता घरवालों पर, दुखदाइ भया सारा कुल है ॥ ८
अजगर पकड़ै पर्वत चढ़ते, बन बेहड़ में दुख पाय रहा।
पड़ि अंधकूप में मसा डाँस, काटैं तहूँ हर्ष मनाय रहा ॥

दो०—निद्रा अजगर से ग्रस्यो, दंश मसा खल बात।
सुख सो सोवत खबर नहिं, अंधकूप गृह तात ॥ ९

छ०—फिर कहीं क्षुद्र रस परनारी, ढूंढैं मधुमक्खी धर खावैं।
मधुमाखी नारि के रक्षक हैं, अपमान मार कर दुखियावैं ॥
जो कहीं मिल गई छल बल से, इससे ठग औरहि लेते हैं।
फिर उससे और उससे भी और, विषयों में पड़ दुख सेते हैं ॥ १०
फिर कहीं पथिक वर्षा वायू, जाड़ा औ घाम से दुखी बहुत।
सोचता यतन सब प्रकार से, पर कर नहिं सकता अपना हित ॥
व्यवहार परस्पर करके कहीं, धन आदिक में झगड़ा करते।
ठगहाई कपट जाल करके, आपस में सबही दुख भरते ॥ ११
धन छीन हीन वह राहगीर, शय्या आसन स्थान हीन।
औरों से मांगै नहिं पावै, बहुतै चाहै तब मान छीन ॥ १२

दो०—आपस में धन खर्च करि, करि विवाह सम्बन्ध।
झगड़ै कर्जा गिरि शिखर, चढ़ि न सकै नरअन्ध ॥

छ०—जैसे घी शक्कर विवाह में, कपड़ा गहनादिक लिया उधार।
हो गया ब्याह मांगैं सब ही, घर दाम नहीं यह चढ़ब पहार ॥१३
मरे मुरदों को यह छोड़ छोड़, पैदा होवैं संग लेके चलै।
चलते चलते युग बीत गये, नहिं योग लगा पथपार मिलै ॥१४
दिग्गज विजयी जे बीर करैं, मेरा मेरा आपस में करके बैर।
रनमें लड़ मरके सुख नलहै, गतबैर महात्मा लह जो खैर ॥ १५
फिर कभी लतामें लिपट, पक्षियों की अवाज़ सुनता सुख से।
हरि चक्र से डर बक गृद्ध काक, ये मित्र बनावै मन दुख से ॥
है लता नारि पक्षी बालक, गहि डोलै कोमल कर तिय के।
हैं क्षुद्र क्रूर पाखंडी नर, बक आदिक चक्रकाल जिय के ॥ १६

दो०—तहां ठग्यो हंसन मिल्यो, फेरि बानरन संग।
बानर जाति रहस्य लखि, भूल्यो काल कुढंग ॥

छ०—पाखंडीजन ठग लिया इसे, तब हंस ब्राह्मण संग किया।
बानर हैं शूद्र विषयी नारी, मुख लखैं मौत भीभूल गया ॥ १७
कहिं वृक्षों तर करता बिहार, सुत नारि प्यार विषयों के बश।
गिरिकंदर गिरि गहि लेत बेलि, गज से डरता होकर बेबश ॥
हैं वृक्ष गृहस्थी के घरही, गिरिकंदर रोग दुःख जानो।
बल्ली के तुल्य शुभकर्मधर्म, गज भयदायक मृत्यू मानो ॥१८
उस विपत्ति से छूटा जो कहीं, फिर सबमें मिलि मारगचलता।
भ्रमरहा अनेकों कल्प गये, विश्राम आजतक नहिं मिलता ॥

दो०—बचे रोग से सबहिं मिलि, करै फेरि व्यवहार।
कल्प गये संसार भ्रमि, पायो नहिं भवपार ॥ १९

छ०—हे राजन् रहूगण जो चाहो, दुनियबी सफ़रको सुखसेपार।

खदो ये दंड हो सबके मित्र, मन विषयरहित करिलो ये कार ॥
हरिसेवासे चित थिर करिकै, दृढ ज्ञान गहो पैनी तलवार ।
हो पार फार संसार मिलो, सतचितमें छूटै सभी विकार ॥ २०
राजो०—धनधन्य मनुष्यजन्मकोहै, बहु तनधारेसे क्या मतलब ।
नहिं रामभजन नहिं साधुसंग, तुमऐसोंसे सधे सब करतब ॥२१
नहिं अचरज तुम्हरे पदरज से, गये पाप विष्णुभक्ती पाई ।
दो घड़ी संगसे तुरत ब्याज, अज्ञानमूल जग कटि जाई ॥२२

दो०—नमो महात्मा जनों को, ब्रह्मचर्य शिशु ज्वान ।
गुप्त प्रगट जे महि फिरैं, करैं जगत कल्यान ॥ २३

श्रीशुकउ०—हे नृपतिपरीक्षित सिंधुदेशपति, राजाको द्विज समझाया ।
दै आत्मतत्व विज्ञानमयी, अनुभवमय ह्वै दाया लाया ॥
अति दया करी चलते लखिकै, नृप बार बार पद शिर नाया ।
परिपूर्ण सिंधुसे बिदा भये, महि विचरि चले जहँ मनभाया ॥ २४
राजा भी सुनके ज्ञान मोह तजि, अहंकार तन से त्यागा ।
अनुभव करता मुनिका कहना, निशिदिनहरिपदमें अनुरागा २५
राजो०—हेशुकमुनिभवाटवीवर्णन,अध्यात्मविषय जिसमें गाया ।
नहिं समझ में आवै समझाकर, कहिये मुनिराई सुख छाया २६

भजन—भवाटवी भटकत हैं नर नारी ॥ टेक ॥
बहु दुख लहैं सांस नहिं पावैं, सहैं शीत कहुँ ताति बयारी ॥
यह संसार भवाटवि गायो, जन्मि जन्मि नित होहि दुखारी ॥
दुःखरूप सुख करि मानै जग, विषयभोगि अति होतसुखारी ॥
तिहके बदले दुःख सहसगुन, पावतहैं निशिदिन अधिकारी ॥
नरतन देत दया करि ईश्वर, पुरषनारि लें बिपति निवारी ॥

मिलि दोऊ कमात बहु आफति, चौरासी भटकत बहु बारी ॥
माधवराम कमलपद पकरैं, दाया करि हरि लेहिं निकारी ॥

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्लोक—चतुर्दशे भवारण्यरूपकव्याकृतिः कृता ।
प्रस्तुते तस्यगोमायुमशकाद्यर्थकल्पनम् ॥
दो०—भवाटवी जो जड़भरत, रहूगणहि समभाव ।
चौदह में शुकदेवजी, भूप परीक्षित गाव ॥

सहोवाचछ०—तन आत्मा मानी जे जनहैं, गुणसेजगमें तनबिविधलहैं
ईश्वरमाया से जगत फँसे, षटइन्द्री से भवपंथ गहैं ॥
करि कर्म देह से दुनियां में, फँसि तापहरनि नहिं मार्ग गही ।
हरि गुरु पदपद्म न अबहुँ लहैं, संगति षटइन्द्री चोर लही ॥ १
कर धर्म कर्म धन जौन मिला, दर्शन पर्शन विषयों से हरैं ।
बनजारा जीव न जितआत्मा, जगभोग पाय कर दुःख परैं ॥ २
बृक शृगाल नारी पुत्रादिक, धन कृपिण जीव को हरि लेवे । ३
नहिं दग्धबीज जो खेत अहैं, पुनि कंटक जमि कर दुख देवे ॥
दो०—कर्म क्षेत्र आश्रम गृही, विषय वासना बीज ।
आप उपजि दुख देत हैं, जीव रहै कर मींज ॥ ४
छ०—हैं डाँस मसा सम दुष्ट पुरुष, टीड़ी तोता चोरादि सुनो ।
यह सभी अविद्या कर्म गुनो, गंधर्वनगरजग झूँठ गुनो ॥ ५

मृगतृष्णा जलसम विषय निरखि, विषयी लालचबस धावै हैं । ६
सब दोष भवन धन हेत दुखी, अग्नी पिशाचमुख पावै हैं ॥ ७
कहिं बहुत जीविका जलथललखि, संसार मार्ग में भटकि रहा । ८
अज्ञान अँधेरी नारि लता, उरझै न लखै मतिमंद महा ॥ ९
कहुँ विषय विवशलंपट बनिके, सुख तुच्छ विषयमृगजलचाहै ।१०
उल्लू झिल्ली रिपु राजदूत, सुनि कटुक बैन मन को दाहै ॥ ११

दो०—पूर्व सुकृत सब चुक गई, अपुण्य तरुतर जाय ।
अघट मनोरथ हिय धरै, जीवित मरो कहाय ॥ १२

छ०—जलहीननदी है दुष्टसंग, दुख देत तहू तहँ पै जावै । १३
निज हित जब अन्न नहीं पावै, पितु पुत्र भाग खा हरषावै ॥१४
गहिनारि संग दावाग्निपाय, लहि शोक विराग ज्ञान धारै । १५
राक्षस सम नृप धन हरैं प्राण, जीवतै मरो सम मन मारै ॥ १६
कहुँ पिता पितामह समझूठे, आपहिं लखि निवृत्तिमनलावै ।१७
गृहकाज बड़े खर्चें के गिरि, कांटों के खेत तृष्णा पावै ॥ १८
कहुँ दुःसह अंतर अग्नि क्रोध, दिलशून्य कुटुम पै कोप करै ।१९
अजगर सम निद्रा ग्रसै इसे, मृत सम सोवै नहिं चेत धरै ॥ २०
कहुँ मानदाढ़ टूटी दुर्जन, हैं डाँस देहिं दुख नींद तजहिं । २१
परधन नारी मधु हितकतहूँ, पिटि स्वामी से नृपदेत सजहिं ॥ २२

दो०—यह पथमें परि दुहुँ दिशा, होत कर्म से भ्रष्ट ।
लोक और परलोक में, दुखी आत्मा नष्ट ॥ २३

छ०—परधन नारी लें और छीन, तिससे भी और हाथ मारै २४
देहिक दैविक शीतादि व्यथा, नहिं टारि सकै खल हियहारै २५
कौड़ी कौड़ी पै लालचबस, व्यवहार में पड़िकै बैर करै । २६

जगमारग में है बड़ी विपति, सुखदुःख जन्म मरणादि धरै ॥ २७
कहुँ हरिमाया नारी से लिपटि, सब ज्ञान खोय घर कुल में बसै।
सुतकन्या तिय बोलनि हेरनि, नर अजित आत्मा नर्क फँसै ॥२८
है कालचक्र विष्णू का जबर, द्विपरार्ध में बिधि अरु जग नाशै।
नहिं भजै चक्रधारी हरि को, धरि पखंड सुर पूजै आशै ॥ २९

दो०—पखंड में ठगि जाय जब, विप्र शरन तब लेय।
भरि कुटुंब कृत (कर्म) शूद्र के, यज्ञ में मन नहिं देय ॥३०

छ०—डर करै न मूढ़ विहार पड़े, तिय मुख निरखै कालहि बिसरै ।३१
ज्यों बानर कूदै तरु पै खुशी, सुख भोगि नारि सुत प्यार करै ३२
बन गज सम मौत कंदरा गिरि, हैं रोग तहां हीं मनुज गिरै ३३
वातादि रोग दैविक भौतिक, नहिं हटा सकै विषयों में मरै ३४
व्यवहार में कर छल बल धनको, चट काढ़ि दिवाला टारै है ३५
नहिं खान पान धन छीन पाव, जन से अपमानहि धारै है ३६
धन के पीछे बहु बैर बढ़ा, तोड़ै व्यवहार चलावै है। ३७
संसारपन्थ में मरे छोड़ि, पैदा सुत ले हरषावै है ॥

दो०—शोचै डरै मोह लहि, लड़ै हँसै चिल्लाय।
जगमारग में जीव यह, अबलौं सुख नहिं पाय ॥ ३८

छ०—उपदेश योग नहिं गहैं मूढ, विज्ञानी शांत यती धारैं। ३९
दिग्विजयी नृप मैं मेरा करि, मरि बैरसे निज को भवडारैं ॥ ४०
गहि कर्म बांस कढि नर्कहु से, जगमें आकर नर सुरहु बनै।
जो पार न हो भवसागर से, वह बारबार निज शीश धुनै ॥ ४१
राजर्षि भरत नृप सम को है, ज्यों गरुड़ पंथ माखी न गहै। ४२
दुस्त्यजरानी सुत राजतजी, मल तुल्य तिन्हैं सपने न चहै ॥४३

सुर चहैं राजश्री भूप तजी, हरिसेवी मानै लघु मुक्ती। ४४
प्रकृतीश्वर धर्मपति ताहिनमो, मृगतन तजते कहि लीयुक्तो।।४५

दो०—चरित राजऋषि भरतको, कहै सुनै हर्षाय।
आयु कीर्ति धन स्वर्ग लहि, अन्त मुक्त ह्वै जाय।।

भजन—भवाटवी कीना चरित बखान ।। टेक
जगमारग कामादि चोर छै, धन धर्महिं पहिचान।
विषय दिखाय मारि कै छीनै, तबहिं जीव अकुलान।। भवाटवी०
ऐसहि कष्ट अनेक भांति हैं, एक से एक महान।
माधवराम पार जो चाहै, छल तजु भजु भगवान।। भवाटवी०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः

श्लोक—एवमष्टभिरध्यायैर्भरतस्योक्तमीहितम्।
ततः पंचदशे तस्य कीर्त्यते वंशजा नृपाः।।

दो०—भरतचरित कहि आठमें, सब पूरन करि दीन।
पंद्रह में कुल भूपको, बर्णन मनमें लीन।।

श्रीशुक उ० छ०—सुत भरत भूप के सुमति अहैं, जिन को पाखंडी बौद्ध कहैं
कलियुग में अनारी निजमतिसे, पापी कुपंथ कल्पना चहैं।।१
थी रानी बृद्ध सेना जिसकी, सुत नाम अजित पैदा कीना। २
आसुरी में देवदुम्न तिसके, परमेष्ठो धेनुमती लीना।। ३
तिसके सुवर्चला में प्रतीह, जो महापुरुष का भजन करै। ४

प्रतिहर्तादिक जिसके जन्मे, तिसके अजभूमा देह धरै ॥ ५
उद्गीथ पुत्र भू मान लहे, तिसके हृदयज पृथुषेनहु फिर ।
सुत नक्त पुत्र गय तिसके हैं, राजर्षि भक्त हरि बुद्धी थिर ॥ ६

दो०—पालि प्रजा निज धर्म से, भगवत ब्रह्म मनाय ।
ब्रह्मभाव लहि मान तजि, महि पालैं हरषाय ॥ ७

तिस गयनृप की पुराणविद सब, इस विधिसे गाथागाते हैं । ८
समता मख करि को भूप सकै, इक नारायण ही लाते हैं ॥ ६
सब दक्षसुता श्रद्धा मैत्री, अभिषेक करैं अशीष देवें ।
नहिं प्रजा चहै कुछ महि सबदे, गुणही बछड़ा मनगुन लेवें ॥१०
करिकर्म वेद विधि से न चहैं, फल नृप सब देवें भेंट लाय ।
बाणों से रिपु द्विज दान तुष्ट, पालते प्रजा षष्ठांश पाय ॥ ११
पी सोम यज्ञ में इन्द्र तृप्त, श्रद्धा विशुद्ध भक्ती निर्मल ।
भगवान यज्ञ आत्महि समर्पि, करि यज्ञ भूप चहतेनहिंफल ॥१२

दो०—हरितृप्तीसे तृप्ति सब, सुर नर पशु लघुजीव ।
गयमख में प्रत्यक्ष प्रभु, कह हम तृप्त अतीव ॥ १३

छ०—सुत सुगति चित्ररथ अवरोधन, गय के सम्राट चित्ररथ के ।१४
सुत मरीचि भे सम्राट्हु के, तिह विंदुमान सुत सतपथ के ॥
सुत विंदुमान के मधु नामा, मधु के बीरब्रत पुत्र भये ।
मंथू प्रमंथु बीरब्रत के, मंथू के भौवन जन्म लये ॥
भौवन के त्वष्टा विरज तासु, विरजहु के शतजित जेठे सुत ।
सौ भाई औरहु सब मिलिकै, इक बहिन सबोंकी गुण अद्भुत ॥१५

दो०—बंश प्रियब्रत भूपको, विरज नृपति आखीर ।
यशसे जग शोभित करैं, हरि सुरगण में मीर ॥ १६

भजन—प्रियव्रत बंश कीन कहि पूर।
भये प्रतापी बहुत भूप ह्यां, बल प्रभाव रणशूर ॥ टेक ॥
दान देत विप्रन को अतिशय, नहिं हैं मन से कूर।
गय नृप की कोउ करै न समता, लहि यश नाहिं गरूर ॥प्रिय०
यज्ञ बहुत करि हरि अर्पण की, मान पै डारी धूर।
माधवराम प्रसन्न आप हरि, दर्शन देत हजूर ॥ प्रियव्रत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे षोडशोऽध्यायः।

श्लोक—षोडशेऽधस्तथाचोर्ध्वं परितः सन्निवेशतः।
मेरोः स्थितिर्महीकंजकर्णिका चोपवर्ण्यते ॥

दो०—पंचाध्यायी मान की, द्वीप समुद्र बखान।
सोलह में महि मेरु को, कहते गिरि परमान ॥

राजोवाच—जहँ सूर्य चंद्र सब तारागण, हरदम तपि उदै प्रकाश धरैं
भूमंडल मुनिबर कहा आप, ज्यादा से वर्णन आप करैं ॥ १
प्रियव्रत रथ से जो दीप सिंधु, सातहु क्रम से बनि आये हैं।
लक्षण औ मान कहिये स्वामी, सुनिबे को श्रद्धा लाये हैं॥ २
भगवान का यह है विराट तन, जो इसमें पहले मन लावै।
प्रभु सूक्ष्म ब्रह्म हरि वासुदेव में, प्रवेश अपना पा जावै ॥ ३
ऋषिरु०—माया गुणधारी भगवत तन, सुरआयु से नहिं हम कहि सकते

हरि दाया से संक्षेपहि में, भगवत सरूप कहना तकते ॥ ४
है कमलकोश सम जंबुदीप, परिमान लाख योजन कहते । ५
नव खंड आठ मर्यादा गिरि, इक लाखहि में सबही लहते ॥ ६
है इलाबृतहु नव के मधि में, नाभी में सुमेरुगिरि जिसके ।
सोलह सहस्र योजन महि में, चौरासी सहस बहिः तिसके ॥ ७
गिरि शृङ्गवान नीलहु श्वेतहु, रम्यक हिरण्य कुरु मर्यादा ।
क्षीरोदधि तक सब पूर्व पूर्व, है अधिक दशांश न कम ज्यादा ८

दो०—हेमकूट हिमिगिरि निषध, दक्षिण दिशि में जान ।
भारत हरि किंपुरुष के, गिरि मर्याद प्रमान ॥ ९

छ०—गिरि माल्यवान गंधहुमादन, भद्राश्व केतुमालहि जानो १०
मन्दर औ मेरु मन्दर सुपार्श्व, गिरिकुमुद चतुर्दिशि में मानो ११
इन चारों पर तरु आम जंबु, बरगद कदंब पताक सम हैं । १२
मधू दूध ऊखरस मीठाजल, यह चार कुंड अति उत्तम हैं ॥ १३
नंदन वैभ्राजक चैत्ररथौ, सर्वतोभद्र सुर उपवन चार । १४
देवी संग देवों के जिन में, करतीं बिहार बहु चार प्रचार ॥ १५
मंदरगिरि पर है आम वृक्ष, अम्मृत समान गिरते हैं फल । १६
रस से अरुणोदा नदी बही, इलाबृत पूरब दिशि बहता जल १७

दो०—पार्वती की अनुचरी, जल सेवन करैं तासु ।
दश योजन पर्यंत लौं, लहै सुगन्धी जासु ॥ १८

छ०—जम्बूफल से बह जम्बु नदी, मंदर सुमेरुगिरि से चलती ।
करती पवित्र इलाबृतैखंड, दक्षिण समुद्र में जा मिलती ॥ १९
बालू में रवि किरनैं पड़ कर, जाम्बूनद स्वर्ण बना देवैं । २०
सुरयुवती बहुत अभूषन रचि, अंगों में धारन कर लेवैं ॥ २१

है सुपार्श्वगिरि पर कदंब तरु, तिससे निकली हैं पांच धार ।२२
जल पिये कढ़ै मुख से सुगंध, बहु योजन करतीं महकदार ॥२३
गिरिकुमद पै है शतबल्श[1] बटहु, पयदधिमधु आदिक धार बहैं ।
कामना पूर स्नानहि से, उत्तर समुद्र में मिला चहैं ॥ २४

दो०—जिनको जल सेवै सदा, मलदुर्गंध न होय ।
सुखसे जीवन देह को, जरा मृत्यु दुख खोय ॥ २५

छ०—गिरिकुरर कुरंग कुसंभ रुकच,शिनीबास त्रिकूटपतंगशिशिर
बैकंक निषध वैदूर्य शंख, हंसर्षभ नागहु कालंजर ॥
जारुधिगिरि कपिल नारदादिक, कर्णिका मेरुगिरि के सोहैं २६
गिरि जठर देवकूटहु पूरब, दक्षिण कैलासिदिक गिरि जोहैं ॥
है सुवर्णमय सुमेरु पर्वत, अग्नी समान द्युति चमक रही ।२७
तिसकी चोटी पर बिधि निवास, की पुरी अधिक विस्तार सही २८

दो०—चारिहु दिशि चारिहु पुरी, राजैं अधिक विशाल ।
इन्द्र वरुण धनपाल यम, बसैं चारि दिगपाल ॥ २६

भजन—चरित यह जंबूदीप बखान ।
मध्य माहिं राजै सुमेरुगिरि, एक लाख परमान ॥ टेक ॥
चारो ओर अनेकन पर्वत, सुमेरु के पहिचान ।
तिनसों विमल नदी नद निकरे, अति सुमीठ जलपान ॥ चरित०
सुमेरुगिरि पर बिधि निवास है, लोकपाल स्थान ।
माधवराम विराट रूप प्रभु, लीला करते गान ॥ चरित०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे षोड़शोऽध्यायः ।

[1] सैकड़ों डालियों से युक्त ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः

श्लोक—ततः सप्तदशे गंगागमनं तच्चतुर्दिशम् ।
इलावृते च रुद्रेण संकर्षण निषेवणम् ॥

दो०—सत्रह में गंगागमन, अरु बहु नदी बखान ।
महादेव पूजन कही, संकर्षण भगवान ।

श्रीशुक उ० छ०—भगवान विष्णु मख रूप, जबै बलिहेत विराट रूप लीना ।
ब्रह्मांड फोड़ि पद बहिर गया, ब्रह्माजी प्रक्षालन कीना ॥
सोइ गंगा ह्वै कै जगत पाप, प्रक्षालन करतीं आप विमल ।
आकाश से महि पर आई हैं, स्थान छोड़ि पदविष्णुकमल ॥ १
बीरव्रत नृप हरिभक्त बड़े, दृढ़भक्तिभाव से शीश धरैं ।
मज्जनकरि ध्याननिमग्न, प्रेमसों अश्रुधार जिनके निकरैं ॥ २
सप्तर्षी गंगा का प्रभाव, जानहिं नीके तप फल मानैं ।
धारते जटा में मुक्ति तुल्य, प्रत्यक्ष आत्मगति पहिचानैं ॥ ३

दो०—चढ़ि २ कोटि विमान सुर, शोभा निरखहिं गंग ।
शशिमंडल सों बिधिभवन, आईं भरी उमंग ॥ ४

छ०—सो चारि रूप सीता चक्षू, भद्रा लकनंदा चारु नाम । ५
सीता बिधिगृहसे केसरगिरि, मिलि क्षारसिंधु पश्चिमी ठाम ॥ ६
गिरिमाल्यवानसे चक्षू कढ़ि, पच्छिमी सिंधुक्षारहि में मिली । ७
भद्रा सुमेरु से चली खंडकुरु, ह्वै दिशि उत्तर सिंधु रिली ॥ ८
बिधिभवन से गंगालकनंदा, चलि दक्षिण भारत में आई ।
दक्षिणसमुद्र में जाय मिली, शोभा छनछन में अधिकाई ॥

फल अश्वमेध औ राजसूय, मख का पावैं जे जांय नहान।
यह अधिक नहीं कहि देनाहै, बिरले जानैं महिमाभगवान ॥६

दो०—कर्मभूमि भारत अहै, आठ खंड सुख हेत। ११
खंड खंड में नद नदी, और बहुत कहि देत ॥ १०

छ०—जे स्वर्ग से चीणपुण्य प्राणी, दसहजार गजबल पुष्ट बसैं।
त्रेतायुग सम तहँ काल रहै, आनंद बहुत सुख से बिलसैं ॥ १२
तहँ देवपती निज सेवक लै, तरु बेलि सुघर उपबन लहरैं।
गिरिकंदर निर्मलजल सुवायु, पच्ची अनेक मृदु शब्द करैं ॥
गुंजरहिं भृङ्ग तियवृन्द संग, जलक्रीडाकरि बहुविधि बिहरैं। १३
नवखंडहु में प्रभु हरि राजैं, शोभा सुन्दर शुभ कीर्ति धरैं ॥१४
जो खंड इलाबृत बसैं शंभु, जहँ गये पुरुष तन तिय पावै। १५
गण पार्वती सँग संकर्षण, प्रभु ध्यान पूजि स्तुति गावै ॥ १६
श्रीभगवानुवाच—है नमो भगवते आदिमंत्र, पूरा न यहां मूलहि निरखो।
नहिं मंत्र प्रगट करना है सुखद, सज्जन जन तत्व हियेमें लखो १७

दो०—भजन योग पदपद्म प्रभु, सब सिद्धी दातार।
प्रगट रूप भक्तन हिये, करै जीव भवपार ॥ १८

छ०—जिसको सपने में नाहिं लखैं, माया गुण चित्त वृत्तिवारे।
नहिं जीता क्रोध हमारि दृष्टिके, विजयहेत पद नहिं धारे ॥१६
मतवारे के सम दृष्टि जासु, माया प्रभाव से देख परै।
पदपर्शि मोहि गईं नागबधू, नहिं पूजि सकैं मन बुद्धि हरै ॥२०
जग रचि पालैं संहार करैं, प्रभु शेषहि मुनि मंत्रहु कहते।
है नमो भूमिमंडल शिर पर, सरसों समान धारे रहते ॥ २१
जिनसे महतत्व अहं विराट, जो वासुदेव भगवान अहैं।

बिधि जन्मे तिनसे रुद्र भये, सुर भूतवर्ग बहु रचे कहैं ॥ २२
ये सब हम भी बश हैं जिनके, ज्यों पची डोरी से बांधे ।
महतत्व अहं सुर भूतादिक, रचते जिसकी दाया साधे ॥ २३
दो०—कर्म गांठि माया प्रबल, मोहि लेत सब काहि ।
नाश उदय जिनसे जगत, नमो कमलपद ताहि ॥ २४
भजन—जगत के पाप नशावति गंग ॥ टेक ॥
हरिपद से कढ़ि रही कमंडल, बिधि के भरी उमंग ।
आई शीश धरी शिवशंकर, अति छवि पायो अंग ॥ जगत०
भूप भगीरथ तप करि लाये, पूर्वज तारन ढंग ।
जो मज्जत जलपान करैं जन, निरखत धार तरंग ॥ जगत०
पावत भक्ति मुक्ति जगसुख सब, तजै दूत यम संग ।
माधवराम गंग के तट पै, रंगै प्रेम हिय रंग ॥ जगत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः ।

श्लोक—अष्टादशेततोमेरोः पूर्वादिक्रमतस्त्रिषु ।
त्रिषुचोत्तरवर्षेषु सेव्यसेवक वर्णनम् ॥
दो०—अष्ठारह में कहत हैं, सेवक प्रभुको भाव ।
हरि बर्षादिक खंड सब, गिनती तासु गिनाव ॥
श्रीशुकउ०छं०—भद्राश्ववर्ष में भद्रश्रवा, प्रभु हयग्रीव का ध्यानधरैं
करिकै समाधि मन थिर करके, पूजै प्रभु की स्तुती करैं ॥ १

भद्र०उ०—है नमोभगवते धर्महि को, इत्यादि मंत्रमूलहिंमेंलखै २
करतब विचित्र प्रभुहै तुम्हारि, जगनाशौ तुम्हैं प्रतिजन निरखै ॥
सुत पितु आदिक मरि जांय फूँकि, तिनको धन लेकर भूले हैं ३
ज्ञानी जगनाशमान कहते, माया में मोहि वे फूले हैं ॥ ४
जग रचि पालन करि नाशत हौ, है नमो अकर्ता न्यारे हो।
कारण कारज सब ह्वैके अलग, नहिं विचित्रता प्रभु धारे हो ॥ ५

दो०—दैत्य लै गयो वेद जब, तब धार्यो यह रूप।
नमो नाश करि असुर प्रभु, कीन्हा चरित अनूप ॥ ६

छ०—हरिवर्षखंड में नृसिंह प्रभु, कहि हैं जो लीला करते हैं।
प्रहलाद दैत्यकुलकमलभक्त, पद पूजि स्तुती धरते हैं ॥ ७
है नमो भगवते नरसिंहहिं, इत्यादि मंत्र पहिले की तरह। ८
जगस्वस्तिहोय कल्याणकरो, प्रभुपद में जनमन बुद्धी रह ॥ ६
धन गृह तिय सुत कुल में न संग, हरिभक्तोंकी दीजै संगति।
तन निर्वाहै में ज्ञानी खुश, पावै सिद्धी घर फँसे न गति ॥ १०
भक्तों के संग में कथा होय, सुनने वालों का पाप हरै।
तीरथ से तनका मैल छुटै, अस प्रभुचरित्र को हिय न धरै ॥ ११

दो०—चाहरहित हरिभक्त जहँ, सुर सब गुण दें आप।
भक्तिहीन किमि गुण लहैं, हिय माया संताप ॥ १२

छ०—हरि ही सब जग की आत्मा हैं, ज्यों मछलीका जीवनहैजल
तजि प्रभु को यदि घरहीमें फँसे, यशझूंठा लहि क्या पायाफल १३
तृष्णा विषाद मानहू कोप, भय रोगमूल घरही जानो।
संसारचक्रदेवै हरदम, तजि प्रभु पद आराधन ठानो॥ १४
हैं केतुमाल में कामदेव, लक्ष्मी पूजा स्तुति धारैं।

दिनराति वर्ष सुतकन्या हैं, हरि चक्र से गर्भ मही डारैं ॥ १५
अति सुघर सरूप मधुर हेरनि, लक्ष्मी रमाय रमै अपने में। १६
मायामय जो भगवतसरूप, ध्यावैं जग लखैं न सपने में ॥ १७
है नमो भगवते हृषीकेश, कामस्वरूप मम कांत नमो।
दुहुं लोकपती सब जगमय हो, बल ओज रूप प्रभु तुम्हैं नमो १८

दो०—व्रत करि आराधहिं तुम्हैं, पति चाहैं तिय आन।
धन सुत प्रिय नहिं दै सकैं, पराधीन ते जान ॥ १९

छ०—पति सांचा वो निर्भय होवै, जन का हरदम रखवाला है।
हरि एक अहैं नहिं और कोय, जग भयसे विकल दुखवाला है २०
पद अर्चन करि जो फल चाहै, वह तो नारी व्यभिचारी है।
नहिं मुक्ति लहै लहि काम भोग, मतिमंद सो महा गंवारी है २१
लक्ष्मी मिलने को देव दैत्य, आदिक तप कठिनौ धारैं हैं।
पद विमुख आपके हमैं न लहि, जन त्यागैं मुक्ति सुधारैं हैं २२
भक्तों से बंदित हस्तकमल, प्रभु हमरे शिर पर धरि दीजै।
हियमें धारे यह दया करी, लखि परैं न कृत दाया कीजै ॥ २३

दो०—मत्स्यरूप रम्यक बसैं, मनुजी सेवा ठान।
भक्ति भाव दृढ़ धारहीं, स्तुति कर भगवान ॥ २४

छ०—है नमो भगवते मत्स्य रूप, हमरे हियमें प्रभु भाय रहे। २५
जगके अंतर बाहर हैं आप, कठपुतली जगत नचाय रहे ॥ २६
मत्सर करि लोकपाल जिनको, इकले मिलिके आराधैं हैं।
चर अचर जीव नहिं रक्षि सकैं, प्रभुपालि सकल जग साधैं हैं २७
प्रभु युगांत में जल से पृथ्वी, औषधीमयी जब डूब गई।
मेरी निज बल से रक्षा करि, शिक्षा दीनी करि सृष्टि नई ॥ २८

हैं कूर्म रूप हिरण्यथल में, अर्यमा पितर नितही पूजैं। २९
प्रभु नमो भगवते कूर्म रूप, सब आपहि हौ न लखैं दूजैं॥ ३०

दो०—निज माया से धरे तन, बहु सरूप को रूप।
नमस्कार प्रभुपद अहै, संख्या नहिं अनुरूप॥ ३१

अंडज[1] पिंडज[2] स्वेदज[3] उद्भिज[4], नरपशु पक्षी चिलुआ पादप।
चरअचर देवपितृ भूत सिंधु, सब आपहिं हौ नहिं दूजा खप॥३२
जग नाम रूप सब हैं असंख्य, हरि समाप्त ह्वै तुमही में मिलैं।
ज्ञानीजन निश्चय करते हैं, हे नमो सभी तुमसे ही पलैं॥३३
उत्तर कुरु में वाराह रूप, महि भक्तिभाव से पद पूजैं। ३४
हे नमो भगवते मंत्र तत्व, प्रभु महापुरुष तुम नहिं दूजैं॥ ३५
ज्यों काष्ठ में अग्नि गुणों में तुम, कवि कहैं ज्ञानसे लखैं नमो ३६
तन विषय क्रिया सुरअहंकार, तजि बुद्धिविमलनिरखैं हे नमो ३७

दो०—जग थिति उत्पति नाश प्रभु, जग भ्रमि चुंबक लोह।३८
दैत्य मारि महि लै धरी, नमामि सुख संदोह॥ ३९

भजन—प्रभू के भे अनेक अवतार॥ टेक॥
हयग्रीव नरसिंह काम पुनि, मत्स्य कूर्म महि धार।
दाढ़ माहिं धरि पृथ्वी लाये, मारि दैत्य विकरार॥ प्रभू०
सबै रूप तुम्हरे हैं स्वामी, माया गुणौ अपार।
माधवराम गाय गुन हरिके, भे माया से पार॥ प्रभू०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः।

---

१ अंडा से पैदा हो २ पिंड देह से पैदा हो ३ पसीना से पैदा हो ४ पेड़

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ।

श्लोक–उनविंशे किंपुरुषे भारते चोपवर्ण्यते ।
सेव्यसेवकभावश्च भारतश्रेष्ठयमेव च ॥

दो०–उनइस में किंपुरुषहू, भारत कीन बखान ।
स्वामी सेवक भाव है, भारत माहिं प्रधान ॥

शुकउ०छ०–किंपुरुष खंड में सीतापति, हनुमानजी पूजा करते हैं ।
है आदिपुरुष लक्ष्मण से ज्येष्ठ, पदरत भक्ती अनुसरते हैं ॥ १
प्रभु कथा गावते किन्नरजन, सुनते पुनि आपहु गाते हैं । २
है नमो प्रभूब्रह्मण्यदेव, सीतापति सभी मनाते हैं ॥ ३
हैं शुद्ध आप अनुभवसे एक, निज तेजसे मायागुण नाशैं ।
नहिं नाम रूप चेष्टा से रहित, कवि गावैं शांत रूप भासैं ॥ ४
नहिं राक्षसबध को नरशरीर, मनुजों के शिक्षा हेत लिया ।
क्यों सीतारहित कष्ट सहते, जो आत्माराम प्रकाश हिया ॥ ५

दो०–धीरन की आत्मा सुहृद, वासुदेव भगवान ।
क्यों वियोग स्त्री धरैं, लक्ष्मण त्याग विधान ॥ ६

छ०–नहिं महतजन्म सौभागपना, बानी बुद्धी सरूप से खुश ।
बनबासी बानर सबसे हीन, मित्रता कीन मानै सर्बश ॥ ७
सुर असुर बानरहु मनुज होय, सर्वात्मा से जो राम भजैं ।
नरसरूप धारे प्रभु हरि हैं, कोशला तारि कै रूप तजैं ॥ ८
भारत में बद्रीनाथ देव, नारद पूजैं धरि ज्ञान विराग ।
परमात्मा की तिनपै, है दया, तप करते माया से बेलाग ॥ ९

भारत की प्रजा वर्णाश्रमयुत, तिन सहित मुनी नारद पूजा।
सावर्णी मनुको उपदेशहि, गावैं करि भक्ति नहीं दूजा॥ १०
दो०—नमो भगवते शांतमय, निर्धन के धन आप।
नर नारायण हंस गुरु, आत्माराम प्रताप॥ ११
छं०—जग बनाय कै नहिं बँधैं आप, तनमें नहिं तनधारी से मरे।
साक्षी ईश्वर को नमस्कार, नहिं गुण द्रष्टा सम देखि परे॥ १२
यह योगनिपुणता विधि कहते, जो अंतकाल में मन धरिकै।
भक्ती से सुमिरै तन त्यागै, नहिं मायाजाल हिये भरिकै॥१३
जगविषयनिरत लंपट धन सुत, नारी मन से नित गुना करैं।
पंडित ह्वै तन तजि नर्क जाय, पढ़ने में परिश्रम बृथा धरैं॥१४
हे प्रभू तुच्छ तन में ममता, हंकार मोह मन छुट जावै।
दाया करि ऐसी बुद्धि देहु, हरिपद में प्रीति भक्ति आवै॥ १५
दो०—भरतखंड में गिरि सरित, अहैं बहुत शुभ नाम।
मज्जन दर्शन किये से, होवैं पूरन काम॥
छं०—मैनाक मलय कूटक त्रिकूट, मंगलोप्रस्थ कोल्लक जानो।
वेंकट द्रोणाचल चित्रकूट, गिरि ऋषभ सह्य विंध्यहु मानो॥
श्री शैलमहेन्द्र ककुभ रैवत, गो का मुख गोबर्धन कामद।
गिरि ऋष्यमूक आदिकहैं बहुत, ऊँचाई शोभा है बेहद॥ १६
नदियाँ नद बहु निकलैं इनसे, जल भारतप्रजा पवित्र करैं।
कृतमाला चंदबसा कृष्णा, अबटोदा ताम्रपर्णि निकरैं॥ १७
कावेरी वेणी भीमरथी, गोदावरिनिर्विध्या तापी।
यमुना सरयू गोमती शोण, मंदाकिनि जन तारैं पापी॥
रेवा सुरसा विश्वा आदिक, नदियाँ पवित्र अति बहती हैं।१८

लहि जन्म कर्म करि त्रिविध मनुज, सुर नर आदिक गति रहती हैं १६
हरि सर्व भूत परमात्मा में, करि भक्ति योग हरि पाते हैं।
मरि जन्म अविद्या ग्रंथि बँधे, उससे हरिजन छुट जाते हैं ॥ २०

दो०—क्या सुकर्म सबने किया, पाया भारत बास।
मुकुंद सेवा योग तन, औरहु सकल सुपास ॥ २१

छ०—क्या दुष्कर तप ब्रत यज्ञ दान, इन कीना सुर सब कहते हैं।
इन्द्री विषयों में हम भूले, हरि सुरति नहीं हम चहते हैं ॥ २२
चह और ठौर भरि कल्प जियें, भारत में च्त्रण भर जीना शुभ।
सबत्याग छनहिमें हरिसेमिलें, जो सब प्रकार से हैं दुर्लभ ॥२३
नहिं कथा जहां नहिं रामभक्त, नहिं हरिसेवा की संमति है।
बिधि सुरपति लोकहु में न बसै, आखिर नीचे गिरि दुर्गति है २४
नरतन पाया जिन जीवों ने, जो ज्ञान भक्ति मुक्ती का घर।
मुक्ती के हेत नहिं यत्न करें, बंदर से बँधें जगमें मर मर ॥ २५

दो०—धन्य यज्ञ ठानैं यहां, मंत्र पढ़ैं विधि लाय।
पृथक् देवता रूप से, बलि हरि लें हरषाय ॥ २६

छ०—जांचे से मनोरथ पूर करैं, नहिं देइ फेरि मांगना परै।
बिन चहे भजन करते जो जन, इच्छापूरक हरिचरण धरै ॥२७
सुर कहैं बची हो पुण्य यज्ञ, तप कीन्हे की हमारि ह्यां पर।
हो जन्म हमारा भारत में, हरि भजि जावैं हम हरि के घर ॥२८
श्रीशुक उ०—नृपसगरपुत्र खोदी जो भूमि, तहँआठदीपऔसिंधुभये २९
आवर्तन चन्द्र शुक्ल रमणक, सिंहल लंका आदिकहु नये ॥३०

दो०—राजा जम्बू दीप हम, तुम से कीन बखान।
पूरण विधि को कहि सकै, तन विराट भगवान ॥ ३१

भजन—सुर कहैं धन्य भारतबासी।
भारत जन्म पाय हरि सुमिरैं, देवों गरे भोग फांसी ॥ टेक ॥
क्षीण पुण्य चौरासी घूमैं, सुख सुरपुर की है नासी।
मायासुख छनही में बीतैं, घन ज्यों चमकै चपला सी ॥ सुर०
भारत में पल माहिं बनै गति, त्यागैं तन हरि पुरि काशी।
माधवराम पलक में पावैं, परब्रह्म हरि अविनाशी ॥ सुर०

—:o:—

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे विंशोऽध्यायः।

श्लोक—विंशे प्लक्षादिषड्द्वीपस्थितिमाह सहार्णवैः।
लोकालोकस्थितिश्चांतर्बहिर्भागादिमानतः ॥

दो०—प्लक्ष आदि षटदीप सब, सिंधुछहौ अनुमान।
बिशवें यहि अध्याय महँ, लक्षण मान प्रमान ॥

श्रीशुक उ०छ०—प्लक्षादिक सबही दीपों का, लक्षण प्रमाण वर्णन कीना। १
इकलक्ष मान है जम्बूदीप, घेरे तेहि क्षारसिंधु चीना ॥
तिसके आगे है प्लक्ष दीप, सुत इध्मजिह्व तहँ भे भूपति।
भये सात पुत्र दी राज बाँटि, हरि भजैं डरे जगदेखि बिपति ॥ २
शिव यवयस शांतभद्रक्षेमहु, अरु अभय अमृत सुतमात रहे। ३
गिरि इन्द्रसेन मणिकूट आदि, सातहि पर्वत अति चित्र कहे ॥
अरुणा नृम्णा अरु सावित्री, आंगिरसी आदिक नदी सात।
हंसहु पतंग उर्ध्वायन औ, सत्यांग वर्ण चारौं विख्यात ॥ ४

दो०—रवि पूजैं हरि विष्णु को, सत्यतेज रवि जान ।
फल शुभअशुभ लहै जगत, करि शुभअशुभ विधान ॥५

छ०—प्लक्षादिक पांच में बल बुद्धी, सब को पैदाइश से आवै ।
दो लक्ष इक्षुरससिंधु घेरि, तहँ प्लक्षवृक्ष पताक पावै ॥ ६
तिसके आगे शाल्मली दीप, है चारि लाख मदसिंधु घिरा । ७
शाल्मलीबृक्ष है चिन्ह जहां, हरि गरुड़ सहित तहँ भजैं निरा ॥८
तहँ यज्ञवाहु सुत सात भये, सौमनस्य रमणक देववर्ष ।
नृप राज सबहिं को बाँट दिया, सातहु सुत भूपति लियो हर्ष ॥६
गिरि स्वरस कुंदशतशृङ्ग आदि, हैं सात अधिक शोभा भारी ।
अनुमती सिनी वाली रजनी, हैं सात नदी छवि है न्यारी ॥ १०

दो०—श्रुतधर बसुधर वीर्यधर, ईषंधर ये चार ।
वर्ण चंद्र देवहिं भजै, वेद करैं उच्चार ॥ ११

छ०—अपनी किरनों से शुक्ल कृष्ण, दो पक्ष अलग करदेते हैं ।
हैं प्रजा अन्नके राजा शशि, होते प्रसन्न जन सेते हैं ॥ १२
सुरासिंधु के बाहर कुशौद्वीप, है आठ लाख योजन घृत का ।
कुशथंभ तहां का चिन्ह गुनो, नहिं पता है सृष्टि अपरमित का १३
सुत हिरण्यरेतहु तहँ राजा, बसु बसुदानादिक पुत्र सात ।
नृप राज बाँट दी सातहु को, अपना हरि भजने बनहिं जात १४
गिरि चतुः शृङ्ग चक्रहु आदिक, सातहीं तहां हैं मन मोहैं ।
मधुकुल्या घृतच्युता आदिक, सरिता जिनके जल मृदुसोहैं ॥१५
तहँ चारवर्ण अभियुक्त कुशल, कोविद कुलको कहलाते हैं ।
सेवन करि अग्निदेव विधि से, शीघ्रहि इच्छाफल पाते हैं ॥१६

दो०—परब्रह्म के अग्नि तुम, हवि पहुँचावनहार।
देव अंग हरिके अहैं, तिन्हैं पूर्ण करतार ॥ १७

छ०—घृतसिंधु से बाहर क्रौंच दीप, सोलह लख योजन सिंधुतहाँ।
क्षीरोदधि घेरे क्रौंचगिरी, शोभा पावै अत्यंत जहाँ ॥ १८
कार्तिक स्वामी के अस्त्रों से, जहँ मथित कुंजहू सोंहि रहे।१६
घृतपृष्ठ तहां के राजा हैं, सुत सात राज दै हरिहिं गहे ॥ २०
मधुरुह भ्राजिष्ठ आम लोहित, आदिक सुत शोभा पाते हैं।
गिरिनंद सर्वतोभद्र आदि, नदि अमृतौघा कवि गाते हैं ॥२१
तहँ पुरुष ऋषभ देवक औ द्रविड़, हैं चारि वर्ण पूजहिं जलको।२२
हरिसों समर्थ लै जग सोधैं, जल हमें सोधि हरो हलचलको ॥२३

दो०—शाक द्वीप क्षीरोद के, बाहर करैं बखान।
बत्तिस योजन लक्ष तेहि, ताको है परमान ॥ २४

छ०—दधिसिंधु ताहि घेरे बाहर, है शाक नाम पर्वत जहँ पर।
मेधातिथि तहँ पर राजा है, सुत सात राज दै गे बाहर ॥
पवमान पुरो जब आदिक सुत, सब राजनीति मांहि पालि रहे।२५
गिरिशित केसर उरु शृङ्ग सात, अनघा आयुर्दा सरित कहे ॥२६
सत्यब्रत ऋतब्रत दानब्रत, अनुब्रत ये चार बर्ण गाये।
वायु को भजैं करि प्राणायाम, रज तम से कढ़ि मुक्ती पाये ॥२७
अंतर जाकर सबको पाले, वह वायु हमैं प्रतिपाल करै। २८
तिसके बाहर पुष्कर है दीप, चौंसठ लख योजन मान धरै ॥

दो०—कमलसहसदल सोहही, जहँ बिधि को स्थान।
चौंसठ योजन सिंधु लख, घेरे ताहि प्रमान ॥ २६

छ० गिरिमानसोत्तरहु सोहिरह्यो, चारौ दिशि में पुरी चारि जहां।

तहँ इन्द्र वरुण यम कुवेर बसि, करैं वर्षपूर रविभ्रमिकै तहां ॥ ३०
तहँ बीतहोत्र के दोइ पुत्र, रमणक धातकि जिनका है नाम।
दो भाग में राज बाँट दीनी, राजापायो हरि भजि सुखधाम॥ ३१
तहँ कर्म से पूजैं ब्रह्मा को, आराधन करि यह कहते हैं। ३२
जो कर्ममयी बिधिको पूजै, नमो मुक्ति लहै हम चहते हैं॥ ३३
ऋषिरु०—है लोकालोक पर्वत आगे, जो देखि परै नहिं देखि परै ३४
गिरिमानसोत्तरौ सुमेरु मध्य, है कांचन महि थल विमल धरै।

दो०—गिरै बस्तु जो तहां पर, तुरतैं जाहि बिलाय।
सबै बस्तु हरिनी मही, शास्त्र कहैं सब गाय॥ ३५

छ०—यह लोकालोक गिरि लोकालोक, देवतोंका क्रीडास्थानकहैं ३६
यह तीनलोक के भीतर हैं, रवि चन्द्र आदि के तेज लहैं॥ ३७
सब कोटि पचास भूमि मंडल, योजन चौथाई लोकालोक। ३८
दिग्गज हैं चारि पुष्कर चूड़हु, वामन अपराजित धारे लोक॥ ३९
अपनी विभूति जो लोकपाल, तिनकी रक्षा हित परमेश्वर।
ऐश्वर्य धर्म ज्ञानहु आदिक, लै बसते हरि इस गिरिवर पर॥ ४०
माया से हरि ही ब्रह्मा बनि, बसते हैं कल्प भरि बास यहां। ४१
इस लोक के बाहर लोकालोक, योगेश्वर ही जा सकैं तहां॥ ४२
हैं अंड मध्य रवि के भीतर, पच्चीस करोड़ भूमि पाई। ४३
है मार्तंड मृत सम अचेत, जग प्रविशि हिरण्यगर्भताई॥ ४४
आकाश मही अंतरिक्ष को, सूर्य ही पृथक स्थान करै।
स्वर्गहु बैकुंठ नरक पताल, स्थान भेद बहु भांति धरै॥ ४५

दो०—तिर्यक देव मनुष्य सब, जहँ लौं जीव जहान।
आत्मा सब के सूर्य हैं, करिये मन से ज्ञान॥ ४६

भजन—जगत सब हरि को रूप बखान ॥ टेक ॥
सातौ दीप समुद्र नदी गिरि, सब हरि अंगहि जान।
बसत तहां सब जीव अनगिने, आकर चारि प्रधान ॥ जगत०
ईश्वर साक्षी घट में बैठा, कर्मभोग परधान।
माधवराम पार जो चाहौ, करौ भजन भगवान ॥ जगत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे विंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे एकविंशोऽध्यायः।

श्लोक—एकविंशे रवेः कालचक्रेण भ्रमतोऽन्वहम्।
स्वगत्या राशिसंचारैर्लोकयात्रा निरूप्यते ॥
दो०—महि मर्यादा बीसलौं, कहिहै तीन अकाश।
इकइस में रविकाल से, भ्रमि कर राशि प्रकाश ॥
श्रीशुकउ०छ०—पचास कोटियोजनप्रमान, सबपृथ्वीभरका गायाहै।१
ज्यों मटर के दो दल एक भूमि, इक अंतरिक्षहू पाया है ॥ २
रवि घूमि त्रिलोकी प्रकाश करि, दो अयन राशि बारह जावैं।
दिन घटै बढ़ै कहुँ रात्रि तैस, गति शीघ्रमंद समान लावैं ॥ ३
होते हैं बराबर दिनौ राति, जब मेष तुला में सूर्य चढ़ैं। ४
बृष से कन्या तक बढ़ते दिन, बृश्चिक से मीन तक राति बढ़ैं ॥५
आवै नहिं दक्षिणअयन दिवस, उत्रायनलौं निशि बढ़ा करैं।६
नवकोटि पचासलक्ष योजन, सब मंडल मुनी प्रमान धरैं ॥
दो०—देवधानि संयमनी, निम्लोचनीहु गाव।
विभावरी चारौ पुरी, लोकपाल चहुँ पाव ॥

छ०—गति शीघ्र मंद मध्यम तीनौं, इकइक में बीथी तीनकही।
गजबीथी ऐरावती नाग, उत्तर मारग में तीन रही॥
आर्षभि गोबीथी जरद्ववी, बैषुवत ये मध्यम मार्ग अहैं।
अजबीथी मृगौ वैश्वानरि, दक्षिणबीथी परमान कहैं॥
अश्विनी भरणि कृत्तिका नाग, रोहिणि मृग आर्द्रा गजबीथी।
ऐरावति अदिति पुष्य श्लेषा, तीनहु उत्तर मारग की थी॥
मघा दोउ फाल्गुनी आर्षभी, गोबीथि हस्त चित्रा स्वाती।
ज्येष्ठा औ विशाषा अनुराधा, जारद्ववि बीथी कहलाती॥

दो०—मध्य मार्ग में तीन ये, दक्षिण मार्ग प्रमान।
मूल पूरबा उत्तरा, अजबीथी पहिचान॥

छ०—हैं श्रवण धनिष्ठा शतभिष मृग, बीथी सब मुनिवर गाते हैं।
पूरबा उत्तरा भाद्रपदौ, रेवति वैश्वानरि पाते हैं॥
यह दक्षिणबीथी मार्ग कहे, रवि मेरु चहूं दिशि फिरते हैं।
बढ़ते हैं उत्तर मार्ग दिवस, दक्षिण दिशि में दिन गिरते हैं॥७
गिरि में वासीजन बायें करि, दहने से सूरज चलते हैं। ८
हों उदय सीध पर अस्त होंय, फिर लौट के वहीं निकलते हैं॥९
सवा दो करोड़ योजन हैं लक्ष, पन्द्रह घटिका में पूर करैं। १०
पूरब से चलि दक्खिन पहुँचै, फिरि पंद्रह चलिकै साम धरैं॥११

दो०—चौंतिस लाख आठ सौ, योजन मार्ग प्रमान।
इक मुहूर्त में चलत हैं, सदा सूर्य भगवान॥ १२

छ०—है एक चक्र बारा आरा, छै पुट्ठी तीन नाभि लो गुनि।
है साल मास बारा छै ऋतु, तीनहु मौसम मन धरि लो सुनि॥
मानसोत्तरो पर एक भाग, दूसर सुमेरु पर कोल्हू सम। १३

डाँड़ा दोउ पर्वत माहिं धरा, दूजा ध्रुव धरि चलता हरदम ॥१४
छत्तीस लाख योजन चौड़ा, है रवि खटोल जहँ बैठि भले । १५
है अरुण सारथी अश्व वेद, मय सूर्यंहु रथ खैंचते चले ॥ १६
ऋषि बालखिल्य औंठा प्रमान, हैं साठिसहस स्तुति करते ।१७
गंधर्व अप्सरा नाग मुनी, इक मास बदलि दूसर धरते ॥ १८

दो०—साढ़े नव कोटिहु सही, योजन लक्ष प्रमान ।
दो सहस्र योजन क्षणहि, भोगहिं रवि भगवान ॥ १९

भजन—सूर्य महिमा वेदन विख्यात ॥ टेक ॥
ब्रह्मतेज प्रकाश अति निर्मल, होत उदय हैं प्रात ।
सोवत सब संसार नींद महँ, जागत उठत नहात ॥ सूर्य०
सूर्याञ्जलि दै उपस्थान करि, करि प्रणाम निज गात ।
सबै काज होवैं सिधि वाके, घर बाहर जहँ जात ॥ सूर्य०
जो प्रत्यक्ष देव नहिं मानहिं, उठत प्रात अलसात ।
सिद्धि ऋद्धि सपने नहि होवैं, सुधरे काज नसात ॥ सूर्य०
सूर्य दया से बंशवृद्धि ह्वै, धन दिन दिन अधिकात ।
माधवराम सदा रवि सेवत, स्वामी राशि लखात ॥ सूर्य०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे एकविंशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः

श्लोक—द्वाविंशे सोम शुक्रादेः स्थानमाहोत्तरोत्तरम् ।
तत्तद्गत्यनुसारेण इष्टानिष्टे तथा नृणाम् ॥

दो०—बाइस में शशि शुक्र के, औरहु ग्रह स्थान।
बर्णन कीने फल सहित, भल विकार पहिचान॥
राजोवाचछं०—हे मुनिवर रविरथचक्रतुल्य, गिरि फेरीदेकै धावतहै।
यह भलीभांति समझायदेहु, हमरे मन समझ न पावत है॥ १
सहोवाच—ज्यों चक्र कुम्हार भ्रमै थलमें, उस पर भी चीटी चलती है।
इस भाँति तहां के वासी जे, उनकी गति नहीं पिछलती है॥ २
नारायण आदिपुरुष सूरज, जगसुख के हित योंहीं चलते।
बारहू मास षट ऋतु करते, तहँ समय समय तरु फल फलते॥ ३
वर्णाश्रमवारे तीन वर्ण, पढ़ि वेद करैं रवि आराधन। ४
सब लोक आत्मा सूर्यदेव, लहि कालचक्र गति करैं गमन॥
दो०—राशी बारा मास हैं, इक ऋतु में दो मास।
पक्ष दिवस निशि पन्द्रहू, काल मान विश्वास॥ ५
छं०—नभ मार्ग में गुजरैं अर्ध समय, षटमास अयन कहलावै है।६
पूरे दो अयन से संवत्सर, इड वत्सर वत्सर आवै है॥
अनुवत्सर परिवत्सर हैं नाम, गति शीघ्र मंद सम से होवै। ७
चन्द्रमा लक्षयोजन रविके, ऊपर रहते सब जन जोवैं॥ ८
सवा दो दिन में राशी भोगैं, सत्ताइस दिन में बारो राश।
रवि भोगैं बारा बारामास, शशि शीघ्रगमनचारी विश्वास॥ ९
शशि अमृतमयी मनमयी अन्नमय, तृप्ति करैया कहलावैं।
सुर पितृ मनुज पशुपक्षिकीट, तरु लताबेलि जग अघवावैं॥१०
दो०—तीन लक्ष योजन उपर, करै नखत सब बास।
अट्ठाइस अभिजित सहित, लघु भासत है भास॥११
छं०—योजन दो लाख शुक्र बसते, रविके समान है इनकी है चाल।
रोकैं बृष्टी विपरीत चले, बारा महिना चलि पूरा साल॥ १२

दो लच्छ पै बुधग्रह ऊपर हैं, रवि से ह्वै अलग बृष्टि कम कर।१३
मंगल द्विलच्छ पै तीनपाख, राशी भोगै ग्रह अशुभहि धर ॥ १४
उससे द्विलच्छ पै बृहस्पती, इक राशि साल भर भोग करैं।
चौथे अठवें बरहें तजिकै, द्विज के ऊपर बहु दया धरैं ॥ १५
तिनके द्विलच्छ योजन ऊपर, रहते शनि रवि के पुत्र कहे।
प्रायः सबही को दुःख देहिं, ढाई वर्षहि इक राशि रहे ॥ १६

दो०—ग्यारह योजन लच्छ में, सप्तर्षी कर बास।
एक राशि सौ वर्ष रह, ध्रुवहिं प्रदच्छिण तासु ॥ १७

भजन—नवग्रह थोरे महँ कहि दीन ॥ टेक ॥
सूर्य चंद्र मंगल बुध चारौं, गति स्थान प्रवीन।
गुरू शुक्र शनि सबै गिनाये, राशि बास लवलीन ॥ नव०
सब से कठिन शनीचर ग्रह हैं, सब सुख लेवैं छीन।
होहिं दयालु जाहि पर शनिजी, ऋद्धि सिद्धि भरि दीन॥ नव०
द्विज के ऊपर द्रवैं बृहस्पति, विप्रहु सेवा कीन।
तिनको दुःख मिलै जग भीतर, जे आराधन हीन ॥ नव०
हमतो सबको विनय ठानि कै, धार्‌यो मतो नवीन।
माधवराम श्यामपद हिय धर, सब ग्रह रह आधीन ॥ नव०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे द्वाविंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे त्रयोविंशतिरध्यायः।

श्लोक—त्रयोविंशे ध्रुवस्थानं ज्योतिश्चक्राश्रयं ततः।
शिशुमारस्वरूपेण हरेश्च स्थितिरुच्यते ॥ १ ॥

दो०—तेइस में ध्रुव कहत हैं, ज्योति चक्र स्थान।
शिशुमारहु के रूप में, सबही करैं बखान॥

श्रीशुक उ० छ०—तिसके ऊपर तेरह योजन, लाखहु पै हरिपद ध्रुव सेवैं।
सातौ ऋषि नव ग्रह सब नक्षत्र, ध्रुव की प्रदक्षिणा नित देवैं १
ध्रुव चरित कहि चुके सब पहिले, ग्रह नखत भ्रमैं ध्रुव स्थिर हैं।२
खूंटा में पशु ज्यों ग्रह नक्षत्र, वायू से मेघ पक्षी फिरि हैं॥
सब सधे कर्म गति से अपनी, औ प्रकृति पुरुष की शक्ति भरी।
प्रेरक है काल चक्र सबका, फिरते न गिरैं दृढ़ता पकरी॥ ३
शिशु मार स्थिति से ज्योति चक्र, हरि योग धारणा में कहते।४
ज्यों सर्प कुंडली मारे हो, पुच्छाग्र में ध्रुव स्थिति लहते॥
लांगूल में अग्नि इन्द्र धर्महु, धाता औ बिधाता पूँछि बसैं।
कटि में सप्तर्षी दहिन बगल, नक्षत्र उत्तरायणहु लसैं॥
बायें में दक्षिणायन नक्षत्र, अजबीथी पीठ संग है पेट। ५
तहँ पुष्य पुनर्वसु श्रोणी में, सब अंगन में सब नखत लपेट॥ ६

दो०—अंत उत्तरायण कहैं, पुनर्वसू नक्षत्र।
पुष्य आदिही नखत हैं, दक्षिणायनहु तंत्र॥

छ०—आर्द्रा अश्लेषा दुहु अंतर, अभिजित औ उत्राषाढ़ सुनो।
उतरायण आदि अभिजित हैं तहाँ, दक्षिणांत उत्राषाढ़ गुनो॥
हैं श्रवण पूर्वाषाढ़ दोउ, दहिने बायें दुहुँ नैनों में।
नक्षत्र धनिष्ठा मूल बिराजैं, दहिने बायें कानों में॥
अरु आठ नक्षत्र मघा आदिक, दक्षिणानि बाईं बस पसली।
मृगशिरा आदि उतरायन के, दहिनी पसली में बस कसली॥
शतभिषा ज्येष्ठ बैठी हैं, शिशुमार चक्र के कंधों पर। ६
ऊपर के ओठ में अगस्त्य हैं, नीचे में यम बैठे लै घर॥

दो०—मुखमें मंगल लिंगमें, शनि पीठी गुरुदेव।
बक्षस्थल रवि वासलें, समझो हियमें भेव॥

छ०—हियमें नारायण हरि जानो, नाभी में शुक्र मन चंद्र लसैं।
स्तनमें हैं अश्वनिकुमार, बुध प्राण राहु गल केतु बसैं॥
सर्वांग में तारागण सब हैं, ज्योतिर्मय हरि का रूप कहा। ७
साँझहू प्रात लखि नमः करै, सुखतीनकाल शुभरूपमहा॥ ८

दो०—ग्रह नक्षत्र तारामयी, गाया कालसरूप।
सुमिरै नमै त्रिकाल में, सुखलहि परै न कूप॥ ९

भजन—कहा शिशुमार चक्र सब गाय॥ टेक॥
सर्प सरूप नक्षत्र जुरे सब, ग्रह तारा नगचाय।
गिरैं नहीं हरिकी शक्ती से, चलैं फिरैं नित धाय॥ कहा०
उत्रायण दक्षिणायन होवैं, कह्यो बहुत समुझाय।
अति विचित्र यह कालचक्र तन, प्रभुजी दिया बनाय॥ कहा०
ध्यान करै नित साम सवेरे, प्रणमै शीश नभाय।
पाप हरैं बहु पुण्य देत हैं, सुख पावै हरषाय॥ कहा०
इन सब को प्रणाम करि मन से, चित में लिया बसाय।
माधव राम सरूप मानिकै, भजनै हिये समाय॥ कहा०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे त्रयोविंशत्तमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः

श्लोक—चतुर्विंशे रवेरर्वाकूस्वर्भान्वादिस्थितिः क्रमात्।
अतलादिबिलस्वर्गमर्यादाः सप्तवर्णिताः॥

दो०—चौबिस में रवि के तरे, राहु आदि के बास।
अतल वितल सातहु कहैं, स्वर्ग समान सुपास ॥

श्रीशुक उ० छं०—सूरज के नीचे दशहजार, योजन पै राहू ग्रह रहता।
सब चरित कहैंगे हम आगे, ग्रहपन सुरपन हरि से लहता ॥ १
दशहजार मंडल सूरज का, बारहहजार शशि का गाया।
तेरहहजार राहू का है, जो ग्रहण हेतु रवि शशि धाया ॥ २
छोड़ते सुदर्शनचक्र हरी, भय से तिसके हट जावैं है।
दो घड़ी चकित रह तेजहीन, सोई तो ग्रहण कहावैं है ॥ ३
दशही हजार योजन नीचे, चारण गंधर्व सिद्ध रहते। ४
तिसके नीचे जहँ वायु मेघ, तहँ यक्ष रक्ष पिशाच लहते ॥ ५

दो०—सौ योजन महि की तरफ, जौन ठौर परमान।
हंस गरुड़ भासादि खग, उड़हिं सहज में मान ॥ ६

छं०—फिर पृथ्वी तिसका हाल कहा, है सात विवर नीचे सुनहाल।
इक अतल वितल सुतलहू तलातल, महातलहु रसतल पाताल ७
स्वर्गहु से बढ़ि सुख तहँ पर है, कहुँ रुद्र सर्प दैत्यादि बसैं। ८
मणिमय माया से रचितभवन, आनँदसे सुखलहि मन विलसैं ॥ ६
उपबन हैं लता तरु सुमन विविध, तिनपर पक्षी मृदु बोलिरहे।
जलपूर्ण सरोवर विविधिकमल, जलमीन भांति बहु डोलि रहे ॥ १०
दिन राति नहीं रविशशि न तहां, इसही से काल का डर नाहीं ॥ ११
है प्रकाश मणियों का सब थल, सब अंधकार तम नशि जाहीं ॥ १२

दो०—दिव्य रसायन औषधो, खाय व्याधि से हीन।
वृद्धाश्रम स्वेदादि नहिं, रहैं युवा तन पीन ॥ १३

छं०—नहिं किसी भांतिसे मौत तहां, हरि चक्रहिंसे सब भयपावैं १४
तहँ चक्र के भय से असुर नार के, गर्भ विकल ह्वै गिरजावैं ॥ १५

बलमयका पुत्र रह अतल माहिं, मय बहुत नारि पैदा कीनी।
पुंश्चली स्वैरिणी कामिनीहु, मायाधर भोग हेत लीनी॥
हाटक रस पुरुष पिवैं कहते, हम ईश्वर सिद्ध गुनैं मन में।
दशहजार हाथी बलधारे, करैं रमण रोग नहिं हैं तन में॥ १६
तिसके नीचे है वितल तहां, गण लिये हाटकेश्वर विहरैं।
हाटकी नदी गौरी मज्जहिं, गहने हाटक सुवर्ण पहिरैं॥ १७
है सुतल विरोचनसुत बलि रह, दै तीन लोक वामन को दान।
हरि पठयो तहँ हरि आराधै, सुरपति दुर्लभ सुख लै हरषान॥१८

दो०—अनुचित नहिं चर अचरमय, हरि को दै सब दान।
मुक्तिलाभ जिनसों सुलभ, यह सुख अधिक न मान॥१९

छं०—छीकत रपटैं बेबश कैसहुँ, इक बार नाम लै जासु तरै।
तो नहक मुमुक्षू योग साधि, तप समाधि कर श्रम बृथाकरै॥२०
हरि आत्मज्ञानी भक्तों को, निज आत्मा भी दै देते हैं। २१
नहिं हरिकी दया फल माया भोग, आत्मा ठगनेको लेते हैं॥२२
नहिं उपाय दूसर प्रभुको मिला, भिक्षाकरिकै सब मांग लिया।
बाँधा दुर्वचन अनेक कहे, सुतलहु पठयो नहिं नाहिं किया॥२३
विद्वानहु इन्द्र बृहस्पति गुरु, हरि उपेंद्र से त्रिलोक लीना।
मन्वंतर ही में नाश होय, नहिं भक्ति लई यह क्या कीना॥ २४
बाबा प्रहलाद ले सेवकपन, हरि से पितु मरे न राज लेहिं। २५
को बुद्धि शुद्ध मम तुल्य तासु, समता करिबे में चित्त देहिं॥२६

दो०—बलि चरित्र पुनि कहैंगे, गदा द्वार भगवान।
नख से रावण फेंकहीं, अयुतायुत[1] परमान॥ २७

छं०—नीचे हैं तलातल मय दानव, रचि त्रिपुर त्रिलोक विजय चाहा।

[1] दशहजार के दशहजार योजन।

हर त्रिपुर जारि मय राखि लिया, भय चक्र छूट लै उत्साहा २८
कद्रूसुत सर्प बहुत शिर हैं, तक्षक कालिय सुषेण बहु गन।
सुत तिय कुटुंबयुत गरुड़ से डरि, विचरैं कुछही प्रमत्त ह्वै मन ॥२९
नीचे है रसातल जहाँ बसैं, नीवात कवच हिरण्यपुर घर।
साहसी एक चक्रहि से डरैं, इन्द्रहु की कपट चाल से डर ॥ ३०
नीचे पताल में नाग बसैं, वासुकी शंख सबही फणधर।
दश पाँच सात सौ सहस्र फण, तिनमें मणि हैं अंधकारहर ॥३१

दो०—सात विवर वर्णन कये, बलि आदिक कर बास।
स्वर्गलोकहू से अधिक, पावैं तहां सुपास ॥

भजन—कहे सब विवर महीतर जौन।
अतल वितल आदिक वर्णन करि, तहाँ नाग हर भौन ॥ टेक
शोभा ठौर ठौर की न्यारी, गाय सकै कवि कौन।
शेष नाग की महिमा भारी, तरे विराजत जौन ॥ कहे०
करनी करी जौन जिह विधि की, तहां करै सो गौन।
माधवराम हरी लीला लखि, रहत हिये से मौन ॥ कहे०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे चतुर्विंशोऽध्यायः

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः।

श्लोक—पंचविंशे ततोऽधस्तादाह शेषस्यसंस्थितिम्।
संजिहीर्षोरिदं काले यत्र रुद्रसमुद्भवः ॥

दो०—पचीस में वर्णन करैं, शेषनाग सुस्थान।
प्रलयकाल में प्रगट हों कबहुँ रुद्र भगवान ॥

श्रीशुकउ०छं०—तहँमूलदेशमें तीससहस, योजनपै शेषनागरहते।
द्रष्टा औ दृश्य को एक करें, याही ते संकर्षण कहते ॥ १
फण सहस्र जिनके इक फण में, पृथ्वीमंडल सरसोंसम लग। २
सो प्रलयकालमें सांकर्षण, रुद्रहु प्रगटहिं सब हरते जग ॥ ३
अहिपति सब जिनके पदमें नमैं, मणिकुंडलधर शोभानिरखैं।४
नागन की कुमारी बरचाहै, सुन्दर तनछबि करि लाज लखैं ॥ ५
हैं अनंत गुण अनंत हरि में, जग के हित शेष शेकि सोहैं। ६
सुर असुर सिद्ध गंधर्व सबै, बचनामृत से जिनके मोहैं ॥

दो०—नील बसन बनमाल उर, कुंडल एक विराज।
सुन्दर कटि में कौंधनी, हलधर शोभा साज ॥ ७

छं०—सुनि ध्याय चरित्र शेषजी के, हियकी गांठी बासनामई।
यश गावैं नारद बिधि संमुख, भक्तों के हिय की छूटि गई ॥ ८
उत्पत्ति नाश पालन जग को, जिनकी इच्छा से हो जावै।
एक हीं रूप नाना सरूप, धारै को मार्ग ताशु पावै ॥ ९
बहु दाया कर तन सत्वमयी, जिनसे जग असत सत्य सोहै।
निजजनमन शुद्ध करैं के हित, धरिलीला प्रभु सबको मोहैं ॥१०
सुनिकीर्तनकरि जिसप्रभुका नाम, जनदुखी पतित जो लेय शरन।
सब पाप छुटैं हो शीघ्र मुक्त, अस शेष तजैं को भवतारन ॥ ११

दो०—भूमंडल सरसों सरिस, शिर पर लीने तौन।
को चरित्र प्रभु के कहै, जीभ सहसधर जौन ॥ १२

छं०—अस प्रभाव धारे शेष हरी, बल गुण अनुभव अनंत धारे।
लीला करि शिर पै महि धारैं, जहँ राजत जीवबृन्द सारे ॥ १३
हे राजन तरे से ऊपर तक, इतने ही तक सब गति हैं सही।
जैसे हों तहँ पै पहुँच जाय, कामना जीव की जैस रही ॥

दो०—प्रबृत्ति लक्षण धर्म की, फल की गती गनाय।
प्रश्न आपको कौन अब, पूंछा दिया सुनाय॥ १४

भजन—कठिनहै कर्मगति प्यारे, नहीं पहिले बिचारै हैं।
कर्म विपरीत कर पीछे, पाय फल जीव हारै हैं॥ टेक॥
कामबस ह्वै पाय नरतन, फँसै मिट्टी की पुतली में।
भोगि कर नर्क फिर खर, श्वान सूकर देह धारै हैं॥ कठिन०
क्रोध से हो विकल प्रानी, दया दिल से तजी जिसने।
वहां पर दुःख सब सहिकै, सर्प बनि फूफकारै हैं॥ कठिन०
लोभ में जो फँसे नरनारि, धन मारैं बेधर्मी से।
वहां पिटते नर्क पड़के, भूत ह्वै तन बिगारै हैं॥ कठिन०
दुर्गती मोह मत्सर से, देह मकड़ी धरैं कूकर।
चेतकर भक्त माधवराम, गति अपनी सुधारै हैं॥ कठिन०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचविंशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः।

श्लोक—षड्विंशे तु ततोऽधस्तान्नरकस्थितिरुच्यते।
पापिनो यत्र दह्यन्ते यमदूतैर्यथायथम्॥

दो०—छब्बिस में सब नरक कहि, जहँ पापी कर बास।
दंड देहिं यमदूत बहु, विविध भांति के त्रास॥

राजोवाचछं०—कैसे यह लोक विचित्रपना, ऊँची नीची गति गाई है।
कोई ऊपर अरु कोइ नीचे, मुनिवर दीजै समझाई है॥१

ऋषिरुवाच–हे त्रिगुण सृष्टि कर्ता श्रद्धा, कर्मों की गति न्यारी न्यारी
फलसे गति पावैं ऊँच नीच, क्रमसे जो जहँ के अधिकारी ॥ २
है अधर्म करना मना, अविद्या से करके दुख भरते हैं।
यातना हजारों सहैं जांय, यमपुर नरकों में परते हैं ॥ ३
राजोवाच–इस त्रिलोकहीके भीतरहैं, कोइदेश विशेष नरक गाये
या त्रिलोक के बाहर मुनिबर, सब नरक शास्त्र में बतलाये ॥ ४
ऋषिरु० दो०–दक्षिणदिशात्रिलोकमधि, पितृगण करैं निवास।
निज २ गोत्र अशीष दै, बसि कर देहिं सुपास ॥ ५
छ०–पितृराज सूर्यसुत यमराजा, निजगण लेकर जहँ बसते हैं।
अपराधी दोषी पापी को, बहु भाँति दंड दे कसते हैं ॥ ६
इक्कीस नरक तामिस्र अन्धतामिस्र, महारौरव रौरव।
कुंभीपाकहु अरु कालसूत्र, असिपत्रबनहु जहँ दुख गौरव ॥
सूकरमुख अन्धकूप संदंश, कृमिभोजन तप्तसूर्मि गाये।
वैतरणी शाल्मली पुयोद, अरु प्राणरोध विशसन पाये ॥
लालाभक्षहु क्षारहु कर्दम, अबीचरयपान सारमेयादन।
रक्षोगण भोजन शूलप्रोत, अरु दंदशूक पर्यावर्तन ॥
दो०–अवटनिरोधनहू कह्यो, सूचीमुख लो जान।
बज्रकंटकहु सहित सब, अट्ठाइस परमान ॥ ७
छ०–तहँ परनारी सुतधन जेहरैं, बँधि कालपाश यमपुरहि जाय।
नहिं खानपान लह दंडमार, मूर्छा लहिकै दुख बहु उठाय ॥ ८
जो परनारी परपुरुष मिलावै, अंधतामिश्र नरक जावैं।
जहँ नष्टदृष्टि बुधिनष्ट पुरुष, तरुके सम कटि चिर दुख पावैं ॥ ९
मैं मेरा करिकै द्रोह दुष्ट, कुलपालि छोड़ रौरव लेवैं। १०
जो मारे गये ह्वां जीव सभी, रुरु बन के ह्वां पर दुख देवैं ॥ ११

इसविधिसे महारौरवौ नर्क, देहंभर जीवों को मारैं। १२
पशु पच्छि मारनेवालों को, धरि कुंभीपाक तेल जारैं॥ १३
दो०—पितृ द्विज द्रोही जौन नर, कालसूत्र में जाय।
तामूतवा में भुनहिं सब, गिरहिं उठहिं पुनिधाय॥
छ०—पशु पच्छी के रोमा जितने, उतने हजार दुख लहै साल।
भूखे प्यासे हा हा करते, यमदूत मार देवें विकराल॥ १४
पथ वेद त्यागि पाखंड गहैं, असिपत्रबनहिं वह जाते हैं।
कटते छटते हा हा करते, निज करनी का फल पाते हैं॥ १५
देते हैं दंड जो अदंड को, राजा या राज के दूत बने।
सूकरमुख नर्क पड़ैं पापी, पिसैं ऊख खंड सम पाप सने॥ १६
ईश्वर की दई जीविका जो, जीवों की जो हर लेते हैं।
अपनी जीविका पुष्ट करते, पड़ि अन्धकूप दुख सेते हैं॥
पशु मृग पच्छी बीछिहू साँप, जुवाँ मसा डाँस सब को मारैं।
करि द्रोह देह लै सोइ जीव, दुख देवैं बिपति महा डारैं॥ १७
दो०—पंचयज्ञ कीन्हे बिना, बिना खवाये खाय।
कृमिभोजन नरकहु पड़ै, खाहिं कीट दुख छाय॥ १८
छ०—बलसे ब्राह्मणकी द्रव्य हरैं, या औरहु का धन हर लेवैं।
संदंश नर्क अग्नी के पिंड, सो जरैं दुःख बहुतै सेवैं॥ १९
जो गम्य अगम्य गमन नारी, करते वह सूर्मी नर्क परैं।
खंभा दोतरफा अग्नि रूप, तियपुरुष रूप लखि तहां जरैं॥
विधवा मान्या ब्राह्मणि अगम्य, शूद्रादि नारि सब गम्य अहैं।
तियरूप निरखि खंभा पकरैं, नर रूप खंभ तिय दुःख सहैं॥ २०
सब वर्ण की नारी गमन करैं, शाल्मली बज्रकंटक में पड़ैं।
पैने कांटे के बृच्छ तहां, पापी सहि कष्टहि गिरैं चढ़ैं॥ २१

दो०—शुभ औ अशुभ कर्मफल, बिन भोगे नहिं जाय।
भजन करैं हरिपद लगैं, तिनके राम सहाय॥

छ०—जो राजदूत या राजा भी, मर्यादा धर्मसेतु तोड़ैं।
वैतरणी है मल मूत्र नदी में, पड़ि के दुःख शीश ओड़ैं ॥ २२
आचारशून्य जे वेश्यापति, वह भी इसही में पड़ि जावैं।
पशुतुल्य धरे सब चाल ढाल, मलमूत्र खाय बहु दुख पावैं ॥२३
ह्वै द्विज क्षत्री गदहा पालैं, मृग आदि जीव मारैं शिकार।
वह प्राणरोध नर्कहि में परैं, दुख पावैं सब विधि पावैं हार ॥२४
पूजा के बहाने पशु मारैं, पड़ि विशसन नर्क देह काटैं। २५
निजवर्ण की दूसरि तियगामी, पड़ि रेतकुल्य रेतहि चाटैं ॥२६

दो०—विष देवैं आगी धरैं, लूटि लेहिं जे ग्राम।
बज्रदंष्ट्र पड़ि नर्क में, कूकर चीथहिं चाम॥ २७

छ०—जो न्याय राजदरबार, देहिं पंचायत में झूँठी ग्वाही।
वह अवीचिरय पर्वतें नर्क से, गिरैं चूर चट ह्वै जाहीं॥ २८
द्विज ब्राह्मण क्षत्री वैश्य जौन, पीते या मद्य पिलाते हैं।
करि गर्मलोह शीशापिलाय, उस मज़ाका फल दिखलाते हैं॥२९
जो जन्म श्रेष्ठ तप विद्या कर्म, वर्णाश्रम धर्म नहीं मानैं।
ते नर्क क्षारकर्दमहिं जांय, शिरके बल गिरि विपत्तिठानैं ॥ ३०
जे यज्ञन में मनुष्य मारैं, नारी नर मांस जौन खावैं।
यमपुरीमें राक्षस खाय तिन्हैं, कटि मरि फिर वैसहि ह्वै जावैं॥ ३१

दो०—घर बन में पशु पक्षि जे, कीटहु छेदत जीव।
शूलप्रोतही नर्क पड़ि, छिदि दुख लहैं अतीव॥ ३२

छ०—जे मसा डाँस आदिक मारैं, वे दंदशूक नर्कहि में परैं।
तहँ मसा डाँस काटैं तनको, दुख सहिकै अधिक विपत्तिभरैं ॥३३

करैं जीवों को जो बन्द दुखी, वह अवटनिरोधन नर्क जाय।
विषप्याय धुआँ से दमघोंटै, सहि विपति अनेकों दुःख उठाय ३४
अभ्यागत अतिथि लखतै गृहस्थ, अपमान करैं दिलसे जरिजाय
तेहि घोर नर्क में चोंचन से, लें काढ़ि नैन गृद्धहु हरषाय ॥ ३५
हंकार भरैं हम धनी अहैं, कंजूस बनो नहिं धर्म धरैं।
सूचीमुख नर्क डारि छेदैं, ज्यों कपड़ा दर्जी दुःख भरैं ॥ ३६
दो०—शतसहस्र ऐसहिं नरक, हैं यमपुर के माहिं।
कुकर्म करिकै जीव तहँ, पावैं दुःख सदाहिं ॥
छ०—ह्वां नर्क भोगि इस दुनिया में, चौरासी फिरि नर तन पावैं।
तहँ पाप पुण्य के चिन्ह अलग, सुख दुख न्यारे दृष्टी आवैं ३७
कहि चुके निवृत्ति मार्ग पहिले, फिर प्रभु का तन विराट गाया।
पढ़ि सुनैं सुनावैं औरों को, परमात्मा को शीघ्रहिं पाया॥ ३८
सुनि विराट वर्णन थूल रूप, धीरे से सूक्ष्म हरि तन ध्यावैं।
भक्ती श्रद्धा विशुद्ध मति ह्वै, आत्मा में परमात्मा पावैं ॥ ३९
दो०—द्वीप सिंधु सरिता गिरी, नरकादिक सब ठाम।
राजन तुमहिं सुना दिये, पृथ्वी के सब धाम ॥ ४०
भजन—कहे नृप सब नरकों के नाम।
अट्ठाइस हैं प्रधान जिनमें, औरहु बहु दुखठाम ॥ टेक ॥
करत अनेक पाप जग में नर, भोगहिं दुःख निकाम।
नर्क भोगि चौरासी जावैं, बनैं कीट पशु ग्राम ॥ कहे०
कबहुं देह नर की जो पावैं, लहैं न सुत धन धाम।
माधवराम अबहुँ हरि सुमिरैं, मिलै भक्ति अभिराम ॥ कहे०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे षड्विंशोऽध्यायः।

पंचम स्कंध समाप्तः।

तहसील घाटमपुर जिला कानपुर निवासी

ओमर-वैश्यकुल-भूषण

श्रीमान् लाला लालमणिजी के पौत्र

श्रीमान् लाला कल्यानचन्द्रजी के पुत्र

❁ श्रीमान् लाला रामदासजी ❁

आप श्रीसीतारामजी के परम भक्त, ब्राह्मण-सेवक तथा ग्रन्थकर्ता के बड़े ही आज्ञाकारी हैं। आप ने षष्ठ स्कन्ध की वितरणार्थ ५०० पुस्तकों की छपाई में अच्छा धन देकर सहायता प्रदान की है। इस समय व्यापार करते हुये आप कानपुर में निवास करते हैं।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे प्रथमोऽध्यायः ।

श्लोक–तत्रादौ प्रथमे विष्णोर्दूतैः पातकिमोचने ।
तत्पापख्यापनायोक्तं याम्यैर्धर्मादिलक्षणम् ॥

दो०–जन रक्षण उन्नीस से, छठवाँ स्कंध बखान ।
पहले में प्रारंभ कर, अजामिलोपाख्यान ॥

छ० राजोवाच–मुनि निवृत्त मारग कहा प्रथम, विधि संग जीव मुक्ती पावै १
पुनि प्रवृत्त मारग समझाया, माया में मिलि जग फिर आवै २
स्वायंभू मनु मन्वंतर कहि, बहु दुःखयातना नरक कहे । ३
उत्तानपाद प्रियव्रत चरित्र, द्वीपहु समुद्र बाकी न रहे ॥ ४
ज्योतीमंडल भूमंडल सब, तरे विवर सातहू गाये हैं । ५
मुनि अब कहिये क्या यत्न करैं, पड़ि नर्क दुःख नहिं पाये हैं ॥६
श्रीशुक उ०–मन बाणी तन से करै पाप, जो प्रायश्चित्त न करि लेवे ।
जावै अवश्य वह जीव नर्क, बहुकाल लों दुःख विपति सेवे ॥७

दो०–मरने के पहिले नृपति, करैं पाप उद्धार ।
बड़े लघू ज्यों रोग के, औषधि करिके पार ॥ ८

राजोवाच–नहिं अहित लखैं जे आतमा का, सुन देख देह सो पाप करै ।
बेबश हो करते जीव पाप, केहि विधि सों प्रायश्चित्त धरै ॥ ९
कहुँ कुकर्म तजिकै फेरि करै, सब प्रायश्चित्त गज नहान सम ।
कैसे कुकर्म से बचै प्रभू, नहिं परै नर्क नहिं पावै गम ॥१०
श्रीशुकउ०–नहिं कर्म कर्म से नाश होय, फिर २ करने से ठीक ज्ञान ११
परहेज करै नहिं होय रोग, करि ठीक नियम लह ज्ञान महान ॥१२

तप ब्रह्मचर्य शम दमहु त्याग,सच शौच यम नियम दृढ़ि करिकै १३
तन बचन बुद्धि के पाप हरैं, ज्यों आगवंश दहि तहँ जरिकै ॥१४
दो०—कोई केवल भक्ति से, वासुदेव पद लीन ।
ज्यों रवि कुहर विनाशहीं, त्यों हरैं पाप प्रवीन ॥१५
छ०—तप आदि से पापी तस न छुटै, जैसे हरि हरिजन सेवा करि १६
निर्भय शुभदायक यह मारग, प्रभु पर सुशील हरिपद हिय धरि १७
हरिविमुखन प्रायश्चित्त सोधि, जिमिकेवलजलसों मदिरा घट १८
कृष्णार्पित चित यम यमगण को, नहिंलखैभजनकरिजावैछुट १९
इतिहासपुराना सुनो एक, यमदूत पार्षदों का सम्बाद । २०
द्विज दासीपति इक अजामील, दासीरखि जन्मकियाबरबाद ॥२१
चोरी औ जुवाँ करि नीचबृत्ति, तन पालि सभीको दुःखदिया।२२
अट्ठासी वर्ष उमर बीती, दासी सेवक बनि बास किया ॥ २३
दो०—रहे पुत्र दस सबहिं लघु, नारायण है नाम । २४
देखि वृद्ध पितु मगन मन, बोले बचन ललाम ॥ २५
छ०—खाते पीते सुत में सनेह, सुतही पालै नहिं काल लखै ।२६
बीमार मौतबश होय तभी, धरि बुद्धि पुत्रलघु सो निरखै ॥२७
फँसरी बाँधे यमदूत तीन, आत्मा लेने को आये हैं । २८
तब नारायण पुत्रहि पुकार, जब प्राण बहुत घबराये हैं ॥ २९
हरि नाम दुखी के मुख से सुनि, हरिपार्षद तहां सिधाये हैं । ३०
खींचते निरखि यमदूतों को, धक्का दे तुरत हटाये हैं ॥ ३१
कहते यमदूत आप को हैं, यमराजा की आज्ञा टालें । ३२
क्या देव यक्ष या और कोई, पापी के बनते रखवाले ॥ ३३
दो०—कमलनैन सब पीतपट, कुंडल क्रीट सुमाल । ३४
शंख चक्र गद चतुर्भुज, तिलक रुचिर है भाल ॥ ३५

छं०—निजतेज से दिशा अँधेर हरैं, हम धर्मराज के दूत अहैं।
क्यों आप रोकते हैं इसमें, पापी को दंड हम देन चहैं ॥ ३६
श्रीशुक उ०—दूतों की बात सुनि पार्षदहरि, हँसिकै गंभीरवानी कहते।
यमदूतों ने जो पूंछा है, उत्तर दे समझाया चहते ॥ ३७
विष्णुदूता ऊ०—जो धर्मराजके दूत आप, तो धर्म का लक्षणवतलावो ३८
क्या दंड किसे देना चहिये, किस कारण दंडी ठहरावो ॥ ३६
यमदूता ऊ०—है वेद नरायणरूप, कहैसोधर्मउलटिअधर्मजानो ४०
रज सत्व तमोगुण नाम क्रिया, जगसारा जिससे हरि मानो ४१
दो०—सूर्य अग्नि आकाश दिशि, संध्या दिन निशिकाल।
वायू गो जल मही शशि, साक्षी धर्म विशाल ॥ ४२
छं०—यह बारा साक्षी अधर्मके, जो करै सो पावै दंडमहान। ४३
गुण संग से धर्म अधर्म होंय, नहिं अहै अकर्ता देहवान ॥ ४४
जो जैसा धर्म अधर्म करै, ह्याँ ह्वाँ तैसा फल भोग करै। ४५
गुणमय जग त्रिविधि विचित्रअहै, धर्महि अधर्म गति देखिपरै ४६
वर्तावे से ऋतु काल ज्ञान, यह जन्म भूत भावी को कहैं। ४७
यम लखै मनहिं से पूर्वरूप, ब्रह्मा अपूर्व का ज्ञान लहैं ॥ ४८
यह जीव जन्म लै कुछ न लखै, अज्ञानी प्रत्यक्षहि देखै। ४६
करै पांच पांच इन्द्री समझैं, मन जीव पाँच विषयहु लेखैं ॥ ५०
दो०—ज्ञान कर्म मन शक्ति त्रय, लिंग शरीर बखान।
हर्ष शोक भय दुःखप्रद, लह संसृति दुख खान ॥ ५१
छं०—अज्ञानी जीव न करन चहै, कुशियारीकीटसम कर्म विवश ५२
बिन कर्मकिये क्षणभर न रहै, स्वाभाविक गुणसे नहीं स्ववश ॥ ५३
पितृमातृ तैस लहि जन्ममिलै, निज अदृष्टसे मिल सूक्ष्मशरीर ५४
माया के सँग से दुःखमिलै, ईश्वर के भजन से हर भवपीर ॥ ५५

यह ब्राह्मण वेद पढ़े ब्रतधर, मृदु सदा सुभाषी इन्द्रीजित। ५६
गुरु अग्नि अतिथि सेवाकारी, सबका हितकारी मदहु रहित ॥५७
फल फूल समिध कुश लेनगया, अपने पितु का आज्ञाकारी।५८
मद पिये शूद्र कामी को लखा, सँग दासी मद पी मतवारी॥ ५६
मद से निर्लज्ज खुले सब अँग, हँसि लिपटे दोनो गाय रहे।६०
देखते कामबश विप्र भया, गलबाहीं डाले आय रहे॥ ६१

दो०—मन रोका सब भांति से, जहँ लौ ज्ञान विचार।
काम विवश मन असभया, सक्यो न ताहि सँभार॥६२

छ०—उसके निमित्त मतवाराहो, सब कर्मत्यागि वह ध्यानकरै।६३
पितु धन से सब वस्तू ला दे, वह प्रसन्न हो यों मान करै॥६४
निज ब्याही पतिब्रतातिय तजि, जानी में जान लड़ाई है। ६५
धन इत उत से ला दासी को, पालै कुटुम्ब हर्षाई है॥ ६६
इच्छाचारी तज दिया शास्त्र, निंदित कीना आचार तजे।
खोई पापहिं में वयस सभी, इसने शुभ कर्म न धर्म सजे॥ ६७

दो०—पापी को यमराज ढिग, लिये जात हैं आज।
लहै दंड तब शुद्ध हो, सब सुधरैंगे काज॥ ६८

भजन—अजामिल चरित सुनौ चित लाय।
प्रायश्चित्त पाप को करना, यह में देत लखाय॥ टेक॥
तन धरि पाप होत सबही से, युक्ति से लेय छोड़ाय।
तपब्रत योग समाधि साधि भल, तसनहिं शुद्धीपाय॥ अजा०
भगवतनाम मुक्ति दे जैसे, लेहु यहां अजमाय।
माधवराम सदा जीवत हैं, यहते हरिगुन गाय॥ अजा०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे प्रथमोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः।

श्लो०—द्वितीये वैष्णवैर्याम्यान्नाममाहात्म्यमद्भुतम्।
श्रावयित्वा द्विजो विष्णोर्लोकं नीत इतीर्यते॥

दो०—नाम महात्म्य विचित्र अति, कहैं पार्षद गाय।
द्वितीय में वर्णन किया, दीनो ताहि छुड़ाय॥

श्रीशुकउ०छ०—यमदूतोंकी सुनि बातपार्षद, नीति निपुण यों कहते हैं।
भगवत सेवक मांहात्म्य नाम, उनको दिखलाना चहते हैं॥१
विष्णुदूताऊ०—हा कष्ट धर्मधर में अधर्म, निष्पापी को दें दंड यहां।२
हैं पिता साधुसम प्रजारक्ष, जो करै विषम तो जाय कहां॥३
जो करैं श्रेष्ठ लघु करै वही, जो मानै श्रेष्ठ सोइ सब मानै।४
धरि गोद में शिर जिसके सोवै, नहिं धर्म अधर्म नेक जानै॥५
विश्वासपात्र जो है दयालु, शरणागत पर किमि वैर करै।६
कोटिहु जन्मन के पाप गये, बेबश हरि नाम पुकार धरै॥७

दो०—याही में सब पाप को, भया शीघ्र निस्तार।
बेबश अक्षर चारि को, नारायण उच्चार॥८

छ०—चोरहु मदपीवै द्विजद्रोही, गुरुनारि गहैं करि मित्र बैर।
नारी राजा पितु गो बध करि, सब भांति कीन जो बड़ी गैर॥९
सब पापों का यह निष्कृत है, बुधि धरि हरि नाम उचार करै १०
ब्रत आदिक से तस हो न शुद्धि, हरि नाम कहे जस शुद्धि धरै ११
कर और निष्कृती (प्रायश्चित्त) मन न रुकै, फिरभी कुमार्ग में धावै है।
सब कर्म निवारक हरी नाम, सतभाव से जो हिय लावै है॥१२

मत ले जाओ निष्पाप भया, मरते में जो हरि नाम लिया ।१३
सुत नाम से हासहु गानहु में, हेलन हरि तरिहै बात किया ॥

दो०—विष्णु नाम मुख से कढ़ै, सब पापहिं उद्धार ।
करै हृदय में धारि लो, तुमसे कहैं पुकार ॥ १४

छ०—गिरि रपटि दाँत सो जीभ कटै, ज्वर मार खाय जो राम कहै।
बेबशहू नाम पुकार किये, नहिं फेरि यातना यम की लहै ॥१५
बड़ छोट पाप के छोट बड़े, मुनि प्रायश्चित्त बखाने हैं । १६
हरि सेवा से हो हृदय शुद्ध, हों पाप दूर तप ठाने हैं ॥ १७
अज्ञान ज्ञान से नाम हरी, ज्यों अग्नि काठ सब पाप दहैं । १८
जिमि औषध रोग विनाशत है, बिन अर्थ मंत्र फल देत अहैं ॥१६
श्रीशुकउ०—यमदूतोंसे यह कहि पार्षद, यमफाँससेउसेछुडायदिया ।२०
यमदूत गये यमराज पास, बिधिसे बृतांत यह कथन किया ॥२१

दो०—विप्र छूटि यमफाँस सो, हिये धीरता धार ।
हरिपार्षद नीके निरखि, नमिकै करै विचार ॥ २२

छ०—कुछ बोलन की इच्छा कीनी, तैसहि भये पार्षद अंतरध्यान ।२३
संबाद दुहुन का सुन पापी, भागवत धर्म महिमा बलवान ॥२४
हरिमहात्मसुनि हुआ भक्तिमान, निज पाप सुमिरि अनुताप लिया ।२५
हा महाकष्ट अजितेन्द्री मैं, वेश्या सँग आत्मा नष्ट किया ॥ २६
कुलकज्जल दुष्कृत मुझे है धिक्, तजिसतीनारि वेश्यालीनी। २७
पितु मातु वृद्ध त्यागे मैं ने, अकृतज्ञ नीच की मति कीनी ॥ २८
जाऊँगा नर्क में जरूर मैं, जहँ पापी कामी जाते हैं । २६
यह स्वप्न लखा कि प्रतत्तमें, कित गये जो मारन आते हैं ॥३०

दो०—चार सिद्ध वे कित गये, सुघर रूप हैं जासु ।
मोहिं छुड़ाया फाँस से, दीने अधिक सुपासु ॥ ३१

छं०—दुर्भागी पाया देव दर्श, मंगल होगा आत्मा सुधरै। ३२
यों पापी के मरने के समय, नारायण नाम कहां निकरै॥ ३३
कहँ पापी द्विजद्रोही निलज्ज, कहँ भगवत नाम मुक्तिकारी।३४
करिहौं मैं यतन जितेन्द्री ह्वै, पावै न आत्मा दुख भारी॥ ३५

दो०—कर्म अविद्या बंधतजि, कपि सम नारिगुलाम।३६—३७
झूँठा मैं मम छोड़िकै, मन हरि धरि भजौं नाम॥ ३८

छं०—इस भाँति सोचि तन निरोग करि, सब तजि हरिद्वार में चलागया
कर साधु संग हरि भजन किया, माया बन्धन से मुक्त भया ३६
श्रीशुक उ०—हरि मंदिर में थिर योग साधि, जितइन्द्री मन अपने वशकर ४०
करि समाधि गुणसे शोधि आत्म, हरि ब्रह्मरूपमें आत्मा धर ४१
थिरमतिह्वै पार्षद फेरि लखे, शिरसे द्विज तिन्हैं प्रणाम किया।४२
गंगातट देह त्याग कीना, जस पार्षद तैस सरूप लिया॥ ४३

दो०—हरिपार्षद के संग द्विज, चढ़िकै दिव्य विमान।
रूप चतुर्भुज आप लहि, जाय मिला भगवान॥४४

छं०—द्विज दासीपति त्यागी स्वधर्म, जो गिरा कुकर्महु करने से।
ब्रत लोप नर्क में जो पड़ता, तर गया है नाम पकड़ने से॥४५
हरिकीर्तन से कुछ नहिं ज्यादा, जीवों को बंध छुड़ाने को।
रजतम छुड़ाय मन कर्म बंध, मुक्ती भी उन्हैं दिलाने को॥ ४६
यह गुप्त पापहारी चरित्र, पढ़ि सुनि जो कीर्तन करते हैं। ४७
नहिं जांय नर्क यमगण न लखैं, पापी भी हरिपद धरते हैं॥४८

दो०—पुत्र व्याज से नाम प्रभु, मरते समय पुकार।
तरो अजामिल कौन कह, जो श्रद्धा से धार॥ ४६

भजन—अजामिल तरिगो नाम पुकारि ।
प्राण लेन यमगण जब आये, पुत्र नाम लिया धारि ।। टेक ।।
नारायण निकरो ज्यों मुख से, आय पार्षद चारि ।
करि संबाद छुड़ाया द्विज को, अंतर भये बिचारि ।। अजा०
करि गलानि तजि गेह भजे हरि, लीनी अपनि सँभारि ।
माधवराम विप्र भवतरिहै, हरिकीर्तन उच्चारि ।। अजा०

—:o:—

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे तृतीयोऽध्यायः ।

—o:o:o—

श्लोक—तृतीये तु यमेनाऽपि वैष्णवोत्कर्षवर्णनैः ।
सांतयित्वा स्वदूतांस्ते वैष्णवे किंकरीकृताः ।।

दो०—हरि हरिजन महिमा बड़ी, धर्मराज समभाय ।
निज दूतन को शांत करि, तिसरे माहिं गनाय ।।

राजोवाच छं०—निज दूतोंके मुख द्विजका हाल, सुनि धर्मराज ने काह किया ।
हरिपार्षद आज्ञा कीन भंग, जिसके बश जग क्या कारलिया ।। १
यम आज्ञा भंग सुनी न कहीं, यमदूत न कहीं लौटि आये ।
यह संशय तुम बिन कौन दूर, कर सकता है हम चित लाये ।। २
श्रीशुक उ०—यमदूत विष्णुके पार्षदसे, कोइ भांति पार नहिं पाये हैं
झट पहुंचि पास निज स्वामी के, विधि पूर्वक हाल सुनाये हैं ।। ३
यमदूताऊचुः—इस लोक के मालिक कितने हैं, फल त्रिविध कर्म देनेवाले ४
जो बहुत होंय मालिक इसमें, तो किसकी आज्ञा प्रतिपाले ।। ५

दो०—कर्म बहुत हैं मालिकहु, होंय बहुत यह नीक।
चक्रवर्ति सम मुख्य को, कहो हमैं जो ठीक ॥ ६

छ०—सबजीव मालिकोंके मालिक, शुभ अशुभकर्मकेफलदानी ७
नहिं टली हुकूमत अबतक है, चारहू सिद्ध ने नहिं मानी ॥ ८
तव आज्ञा से पापी लावै, झट फाँसी तोड़ छुड़ाय दिया ।९
उनको हम जाना चहते हैं, कहि नारायण उद्धार कया ॥१०
श्रीशुक उ०—यमदूतपूछते यमराजहिं, इस भांति जोशमें भरेहुए।
हरि कमलचरण सुमिरन करके, समझाते दिल से डरे हुए ॥ ११
यमउ०—हमसे इक मालिक दूजा है, ज्यों पटमें सूत सम व्यापक है
जिससे जग जन्मै पलि नाशै, सब लोकन का स्थापक है॥१२
ज्यों रस्सी से पशु सब जन को, अपनी बाणी में बांधै है।
निज कर्मबंध से बँधे जीव, दै भेट ताहि अनुराधै है ॥ १३

दो०—हम महेन्द्र पवनहु निरिति[1], अग्नि सूर्यशशि ईश।
बिधि विश्वेबसु साध्यसिध, है सबको जगदीश ॥१४

छ०—भृगु आदिक मुनि सात्विक धारे, सृष्टीकर्ता करते विनती।
हरि करतब जानि सकै न कोउ, लघुजीवों की है क्या गिनती ॥१५
मन बाणी प्राण हृदय जिसको, नहिं किसी भांति जाने पावैं।
सब जीवों के भीतर ही है, नहिं चक्षु रूप के लख आवैं ॥ १६
हरि स्वतंत्र मालिक मायापति, परमात्मा सब पर जौन हरे।
तिसके बहु सेवक पार्षद हैं, फिरते रहते शुभरूप धरे ॥ १७
सुर पुजत हैं हरि पार्षद को, अद्भुत सरूप नहिं लख आवैं।
मुझसे तुमसे सब शत्रुन से, जन रक्षा करके सुख पावैं ॥ १८

१ मृत्यु।

दो०—धर्म रच्यो भगवान है, सुर मुनि जानहिं नाहिं।
सिद्ध असुर विद्याधरहु, नर किमि देखि सकाहिं॥ १९

छ०—विधि नारद शंभु कुमार कपिल, मनु भीष्म जनक जानै प्रहलाद २०
यम बलि शुकदेव ये बारह जन, हरि धर्म जानते मुक्त विवाद २१
ह्यां श्रेष्ठ धर्म जीवों का यह, हरिभक्ति धारि रट नाम लिया।२२
हे दूतो नाममहात्म लखो, पापी बंधन से छोड़ दया॥ २३
जीवों के पाप हरने में सुविध, भगवत गुण नाम गान धारै।
कह अजामील सुत नारायण, हो गया मुक्त तजि संसारै॥ २४
नहिं जानै नाम महात्म सुजन, हरि माया में मोहित रहते।
मधुपुष्पित वेद कर्म में फँसि, मति मूढ़ भई न भजन चहते॥२५

दो०—यह गुनि बुद्धिमान सब, करैं भजन भगवान।
भजन विनाशै पापको, सदा देत कल्यान॥ २६

छ०—समदर्शी भगवतभक्तों का, यश देव सिद्ध भी गाते हैं।
हरिगदा करैं रक्षा तिनकी, हम तुम न कोइ छू पाते हैं॥ २७
जो मुकुन्दपद से विमुख होंय, तृष्णा से बँधे लाना पापी।
निष्किंचन हरिजन छोड़ि देहु, नित करैं पाप जनसंतापी॥२८
नहिं जीभ कहै हरिनाम जासु, मन हरिपदपद्म नाहिं सुमिरै।
शिर झुकै न कृष्णहि एकबार, लावो खलदुष्ट कुकर्म करैं॥ २९
भगवान परपुरुष नारायण, यमदूतों ने अपराध किया।
नहिं जानैं यह सब कर बैठे, है नमो बड़े चितक्षमा लिया॥३०
हरिकीर्तन पापविनाशक है, करु राजन प्रायश्चित्त हिये। ३१
हरि नाम गाय सुनि भक्ति सहित, हों शुद्ध न तस व्रत तपहु किये॥ ३२

दो०—कृष्ण पद्मपद स्वाद लहि, फँसै न जगसुख माहिं।
पाप छुटै किमि कर्म से, रज से रजहिं सदाहिं॥ ३३

दो०–सुनि शिक्षा यमदूत डरि, हरिजन पास न जाहिं। ३४
मुनि अगस्त्य बैठे मलय, गाय चरित हरषाहिं॥ ३५
भजन–नाम महिमा सुनो ऐसी, नहक सज्जन भुलाते हैं।
फँसे माया में अभिमानी, भजन दिल में न लाते हैं॥ टेक॥
अजामिल नाम नारायण, बहाने पुत्र के कहता।
तरा यमफाँस से छुट कर, लखो उपमा लखाते हैं॥ नाम०
पहुँच यमदूत यम के पास, रोकर दुःख सब कहते।
समझ हरि नाम की महिमा, वो धीरज दे बुझाते हैं॥ नाम०
है मालिक सब चराचर का, नाम में शक्ति है उसके।
कैसही नाम रट लावे, हरी उसको बचाते हैं॥ नाम०
न जाओ पास भक्तों के, पापियों को यहाँ लाना।
इसी से भक्त माधवराम, हरि गुन नाम गाते हैं॥ नाम०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे तृतीयोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः।

श्लोक–चतुर्थे तु प्रजा तुष्टयै दक्षेणाराधनं हरेः।
तपसा हंसगुह्याख्यस्तोत्रेण च निरूप्यते॥
दो०–चौथे में जगसृष्टि हित, दक्ष हरिहिं आराधि।
हंसगुह्य स्तोत्र से, स्तुति करि फल साधि॥
राजोवाचछं०–सुरअसुर मनुज मृगपक्षि सृष्टि, स्वायंभूमनुमेंस्वल्पकही १
विस्तार आपसे सुना चहौं, जिस विधि ब्रह्माकी सृष्टि रही॥ २

सूतउ०—राजर्षि परीक्षित राजा का, हर्षित ह्वै के यह प्रश्न सुना।
शुकदेव महायोगी मुनिवर, कहने को उत्तर हृदय गुना॥ ३
श्रीशुकउ०—प्राचीन वर्हिके दशोपुत्र, जब समुद्र बाहर आये हैं ४
महि वृक्षमई लखि क्रोध किया, पैदा करि अग्नि जराये हैं॥ ५
तरु जरत देखि चन्द्रमा कहैं, औषधि राजा समझाते हैं। ६
करो क्रोध शांति जारो न वृक्ष, सब प्रजापती पद पाते हैं॥ ७

दो०—प्रजापतिन के प्रजापति, हरि अव्यय भगवान।
बनस्पती औषधि रचैं, बढ़िबे हेत जहान॥ ८

छ०—है अचर चरों का अन्न, पैर बिनपदवारों का भोजन हैं।
बिन हाथ हाथवारों का हैं, खाते हैं चतुष्पद खलजन हैं॥ ९
जारते वृक्ष किस हेतु आप, सृष्टि के लिये तप करत रहे॥ १०
सतमार्ग गहो तजि देहु क्रोध, जस पिता पितामह धरत रहे ११
सुत रक्षक मात पिता होवैं, नैनों की पलक पति नारी का।
रैयत का नृप भिक्षुक का गृही, है रक्षक चतुर अनारी का॥ १२
सब जीवों में आत्मा हरि है, सब जगह लखो हरि हो कल्यान १३
मंगल हो वृक्ष नहीं जारो, लो तरुकन्या निजपत्नी मान॥ १५

दो०—जबर क्रोध तनमें जगै, जो कोइ ताहि पछार।
आत्मा की पूजा करै, गुण से होवै पार॥ १४

छ०—शशि राजाने तरुकन्या वह, सबही को विधिसे ब्याह दई १६
उसही में दूसरा दक्ष भया, जिससे पूरित सब सृष्टि भई॥ १७
मन वीर्य से दक्ष सृष्टि कीनी, ह्वै सावधान राजन सुनिये। १८
सुरअसुर पक्षि पशु नर आदिक, बिधि मनसे उपजाये गुनिये॥ १९
नहिं बढ़त देखि सृष्टी वो दक्ष, विंध्याचल पर तप ठाना है। २०

अघमर्षण तीर्थ पापहर जो, कीने प्रसन्न भगवाना है ॥ २१
पढि हंसगुह्य स्तोत्र हरिहि, भगवानहिं दक्ष मनाते हैं।
हो गये प्रसन्न जाहि सुनि हरि, हम तुमको वही सुनाते हैं ॥ २२
प्रजापतिरु०दो०—अनुभव सत्य नमो हरी, तीनहु गुण जहँ भास।
ज्ञानिहुके लख आव नहिं, देतनिवृत्ति सुपास ॥२३
छ०—मित्रता न जिसकी कोई लखै, तनपुर में जीवके संगबसे।
नहिं लखैं गुणी को गुण जैसे, है नमो आप जगरूप लसे ॥२४
तन प्राण इंद्रियाँ मनहु तत्व, आत्मा से और पर नाहिं लखै।
सब गुणको जानत नमो प्रभू, नहिं गुण प्रभुको सपने निरखै ॥२५
श्रुत दीख रूप नामहु जगसे, जब मन विराग धारण करता।
केवल स्वदृष्टि से लखआवै, है नमो हंस शुचि हिय धरता ॥ २६
ज्ञानी हिय भीतर जाहि लखैं, नव[1] तीन[2] शक्ति से युत निरखैं।
ज्यों अग्निकाठ में सोलहवां, मन विषय इन्द्रियां सहित लखैं ॥२७
दो०—सब माया हर मुक्ति सुख, अनुभव कर जगरूप।
आत्मशक्ति धर प्रसन्न हो, नमो अनंत सरूप ॥ २८
छ०—मन इन्द्री बुधिसे कहै जौन, गुणमय सरूप नहिं धारे हो।
गुण सृष्टि से बाहर तत् सत् जो, सोइ ब्रह्मसरूप सम्हारे हो ॥ २९
जिसमें जिसके जिहते जिसको, जिस करिकै जाहि जो करवावै।
पर अवर प्रसिद्ध सो ब्रह्म अहै, बिन हेतु अनन्य एक पावै ॥३०
वादी प्रतिवादिहु में जिसकी, शक्ती से बहु विवाद आवै।
भूमा अनंत को नमो अहै, जहँ आत्म मोह चित में लावै ॥३१
है नाहीं एकहि वस्तु माहिं, दीखै सब कुछ तहँ कुछ नाहीं।
पर सम अनुकूल तत् बृहत ब्रह्म, ज्ञानी गुनते हैं मन माहीं ॥३२

[1] पुरुष प्रकृति महत्तत्त्व अहंतत्त्व पंच मात्रा [2] त्रिगुण

दो०—नाम रूप से रहित प्रभु, नाम रूप धरि लेत।
जन के हित दाया करें, हो प्रसन्न मम हेत॥ ३३

छ०—जो प्राकृत ज्ञान सुमारग से, तन में तैसाही देख परै।
जिमि पवन गंध दुर्गंध संग, वह प्रभू मनोरथ पूर करै॥ ३४

श्रीशुक उ०—अघमर्षण तीर्थ में हरि प्रगटे, हे राजन जनवत्सल भगवान। ३५
चढि गरुड़ अष्टभुज शंख चक्र, असिचर्म पाश गदा धनुष बान॥ ३६
घनश्याम पितंबर कमलनैन, बनमाला श्री कौस्तुभ धारे। ३७
शिर क्रीट मुकुट कुंडल कांची अंगों में अभूषण हैं प्यारे॥ ३८
हरि त्रिलोक मोहन रूप धारि, सँग नारदादि संस्तुति करते। ३९
अति अद्भुत रूप निहारि दक्ष, करते प्रणाम शिर महि धरते॥ ४०

दो०—अति अनंद बाढ्यो हिये, बचन न मुख में आव।
झरनों से ज्यों कुंड भरि, मन सुख परमहि पाव॥ ४१

छ०—दंडवत करत है दक्ष लखा, हिय माहिं पुत्र कामना भरी।
जानैं हरि सबही के हिय की, जनदुख नाशनहित बातकरी॥ ४२

श्रीभगवानुवाच—बड़भागी दक्ष सिद्ध तपसे, मेरे में श्रद्धा भाव लिया। ४३
हो सृष्टि जीवकी मम इच्छा, तप से प्रसन्न बरदान दिया॥ ४४
बिधि रुद्र दक्ष मनु सुर सुरपति, मेरी विभूति ऋद्धी हित जान ४५
तप हृदय देह विद्या आकृति, क्रिया अंग यज्ञ धर्मात्मा मान ४६
आगे पीछे अंतर बाहर, अरु गुप्त प्रगट दुनियां में रहौं। ४७
गुण रूप अनंत अनंत नाम, पहिले जगहित ब्रह्मा को चहौं ४८

दो०—जन्म पाय हमसे बिधी, निबल आत्मा मान। ४९
तप ठाना मम कहे से, नव ऋषि तहँ उपजान॥ ५०

छ०—है प्रजापतीजो पंचजनहु, लीजै असिक्नि तिसकी कन्या ५१
मैथुनी सृष्टि तुम जाय करो, है मिथुन धर्मयुत तिय धन्या॥ ५२

तुमसे आगे सब प्रजा मिथुन, भावहि से सारी सृष्टि करै।
सुखसंसारी लहि पूजा बलि, बहु श्रद्धा भक्ति से मोहिं धरैं॥ ५३
श्रीशुक उ० दो०—यह कहि देखत दक्ष के, जगभावन भगवान।
स्वप्न सरीखे दर्श दै, झट भे अंतरध्यान॥ ५४
भजन—दक्ष हरि हेत लिया तप ठान॥ टेक॥
तप बिन काज सिद्ध नहिं होवैं, यहै ठीक परमान।
ह्वै प्रसन्न तप से झट प्रगटे, परिपूरन भगवान॥ दक्ष०
दक्ष दरश लहि स्तुति कीनी, रूप माहिं ललचान।
माधवराम सुलभ बर पायो, हरि भे अंतरध्यान॥ दक्ष०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे पंचमोऽध्यायः।

श्लोक—पंचमे नारदेनाथ वाचः कूटैस्तु नाशितान्।
सुतानाकर्ण्य दक्षोऽमुं शशापेति निरूप्यते॥
दो०—कपट बचन नारद कहे, दक्षसुतन समझाय।
पंचवें में शापहु दिया, मुनिवर थिर नहिं पाय॥
श्रीशुकउवाच छ०—हर्यश्व नाम के पुत्र दक्ष, दशहजार गिनती में जाये १
एकही धर्मवाले सब हैं, मुनि तप करते में भरमाये॥ २
नारायण तीर्थ सिंधु संगम, जहँ समुद्र मुनिवर बास करैं। ३
स्नान किये मन शुद्ध होय, शुभ धर्म में हरिजन चित्त धरैं॥४
पितु आज्ञा लै तप उग्र करैं, सृष्टी हित तहँ मुनि आये हैं। ५
देखा है पृथ्वी अंत सृष्टि किमि, करौ पुत्र समझाये हैं॥ ६

एकही पुरुष है तीन राज्य जहँ, जाय न निकलै बिल देखा ।
वेश्यापति पुरुष लखा तुमने, बहुरूप धरे तिय को लेखा ॥ ७

दो०—दोतरफा बहती नदी, गृह शुभ रचा पचीस ।
कथा चित्रहंसहि लखा, चक्र भ्रमै जो शीश ॥ ८

छ०—यह सब नहिं जानै एक पुत्र, कैसे ह्वै सिद्ध सृष्टि करिहौ ।
क्या करना है सच लखे न तुम, सुत पैदा करि कैसे तरिहौ ॥६
श्रीशु० उ०—मुनिजी की युक्तिमय बातैंसुनि,सबपुत्रहृदयमेंसोचकरैं १०
भूक्षेत्र जीव का दृढ़ बन्धन, मुक्ती न लखैं क्यों कर्म धरैं ॥ ११
है तुरीय निज आश्रय ईश्वर, नहिं लखा असत कर्मों से क्या ।१२
पाताल न देखा जिस नर ने, नहिं निष्ठा है धर्मों से क्या ॥ १३
पुँश्चली नारि सम बुद्धि अहै, नहि लखा करैं क्यों झूँठे कर्म ।१४
उसका संगी यह जीव अहै, नहिं चेतै करिकै झूँठा धर्म ॥ १५

दो०—माया जग पैदा करै, रचिकै करै विनाश ।
नदी दुतरफा नहिं लखी, करि कुकर्म दी फाँस ॥ १६

छ०—पुर पचीसका अद्भुत तनहै, नहिं मूर्ख लखैं करकुकर्म सब ।१७
नहिं बंधमुक्ति का शास्त्र लखैं, नहिं सत लख करते हैं करतब ॥१८
यह चक्र काल है जग नाशैं, लखते नहिं करते कर्म असत् ।१६
पितु शास्त्रकी आज्ञा नहिं मानी, करते हैं कर्म नहिं लखतेसत २०
यह निश्चय कर हर्यश्व पुत्र, मुक्ती हित उत्तर दिशा गये ।२१
नारद मुनि हरि में चित्तलाय, हरिपद हिरदे धरि चलत भये ॥२२
सुनि पुत्र नाश नारद से दक्ष, अपने चित में बहु शोक किया २३
समझाने से निज नारी में, इक हज़ार सुत का जन्म दिया २४

दो०—पितु आज्ञा लै वह सबै, तप के हित तहँ जाय ।
नारायण सुर जहां पै, भाय गये हरषाय ॥ २५

छ०—न्हाये हो विमल करैं तप सब, पर मंत्र ॐ यह जपते हैं २६
जल पीते वायु करैं भक्षण, हरि जाप जपैं तप तपते हैं ॥ २७
ॐ नमो नरायण महापुरुष, सत् शुद्ध रूप हंसहि ध्यावैं । २८
तिनको भी नारद पहुँचि तहां, कहि बचनकूट बशमें लावैं ॥२६
हे दक्षपुत्र मम बात सुनो, भाई वह जो भाई मानै । ३०
भाई का धर्म भाई भी करै, वह वायू सम शुभ सुख ठानै ॥ ३१
सब बुझाय नारद चल दीने, वह भी उत्तर दिशि चले गये ।३२
सतमारग मुक्ति लही सबने, गई राति तुल्य नहिं फिरत भये ॥३३

दो०—लखि उत्पात दक्ष बहु, हियमें करैं विचार ।
नारद सुत साधू किये, सुना भये लाचार ॥ ३४

छ०—मिल गये दक्षको नारद तब, सुतशोकमें क्रोध बड़ा कीना ।
नारद से बातचीत करके, आखिर में शाप उन्हें दीना ॥ ३५
दक्षउवाच—हो असाधु साधु चिन्हधारे, भिक्षुकी मार्ग लड़कों से कहा ३६
नहिं कर्म साधि ऋण तीन छुटे, दोउलोक हेत किया पाप महा ३७
निर्दयी बुद्धि फोरन वाले, हरिजन में लज्जा छोड़ि फिरो । ३८
सब भक्त जीव पर दया करैं, बिन स्वारथ ही जग बैर धरो ॥३६
इस तरह विराग किसे होवै, नहिं मोह फाँस छुट सकती है । ४०
नहिं विषयतीव्रता अनुभवकी, सबकीबुधि जिसमें झुकती है ॥४१
सतकर्म करैं साधू गृहस्थ, उनसे करि बैर ठान ठाना । ४२
लोकों में भूमो नहिं ठौर मिलै, जो कीना तुमने मनमाना ॥४३

श्रीशुक उ०—दो०—नारद शीश चढ़ाय कै, शाप लीन हरषाय ।
यहै साधु को चाहिये, दुखसुख एक लखाय ॥ ४४

भजन—साधु की महिमा को सकै गाय ॥ टेक ॥
नारद दक्षसुतन समझायो, मुक्तीपंथ लखाय ।
कियो दुबारा और सुतन संग, दक्ष क्रोध हिय लाय ॥ साधु०
दीन शाप धारयो शिर ऊपर, सुख दुख सबै विहाय ।
माधवराम भजन में राजी, जग से चित्त हटाय ॥ साधु०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे पंचमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ।

श्लोक—षष्ठे दक्षेण सृष्टायां कन्याषष्ठ्यां प्रकीर्तिताः ।
पृथुवंशायतो जातो विश्वरूपोऽदितेः सुतात् ॥

दो०—साठि दक्षकन्या भईं, भये वंश विस्तार ।
छठयें में वर्णन करैं, ताको विविधि विचार ॥

श्रीशुकउ०छ०—समझाया दक्षको ब्रह्माने, तब साठि सुता पैदा कीनी १
चन्द्रहि सत्ताइस दै नक्षत्र, दश कन्या धर्महि दै दीनी ॥
तेरह कश्यप को कन्या दै, पुनि चार तार्क्ष को सुता दई ।
अंगिराभूत अरु कृशाश्व को, दो दो दीन्हीं आनंदमई ॥ २
इन सबके नाम सुनौ राजन, जिन सृष्टी से पूरी धरती । ३
भानू लम्बा ककुजा जामी, विश्वा साध्या औ मरुत्वती ॥
है वसू मुहूर्ता संकल्पा, दश धर्म की प्यारी नारी हैं ।
इनके सब पुत्र गिनावत हैं, जग कारज के अधिकारी हैं ॥ ४
भानू के हैं देव ऋषभ, तहँ इन्द्रसेन ने जन्म लिया ।
लम्बा के भये विद्योतपुत्र, स्तनयित्नु बिजुलि सुत जन्म दिया ॥५

दो०—ककुभा के संकट भये, तिनके कीकट जान।
जामी के सुत स्वर्ग है, दुर्ग मही के मान॥ ६

छ०—विश्वा के विश्वेदेव न सुत, तिनके, साध्या के साध्य गुनौ।
तिनके हैं अर्थसिद्धि पुत्रहु, यहि विधिसे सबके पुत्र सुनौ॥ ७
सुत जयन्त मरुत्वान जाये, हैं मरुत्वती में गरुड़ जयन्त। ८
भे मुहूर्तदेव मुहूर्ता के, फल देते अच्छा बुरा तुरन्त॥ ६
संकल्पा के संकल्प काम, तहँ वसु के वसू पुत्र जाये। १०
ध्रुव द्रोण प्राण वसु अग्नि अर्क, दोषौ विभावसू कहलाये॥ ११
हैं हर्ष शोक भय द्रोण पुत्र, सह आयु पुरोजव प्राण जने।
ध्रुव के धरणी में बहुत देव, तर्षादिक अर्क के पुत्र गने॥ १२

दो०—वसु धारा अग्नी तिया, द्रविणादिक उपजाव। १३
स्कंध कृति का पुत्र है, दोष मारशिशु[1] पाव॥ १४

छ०—विशकर्मा वसु आंगिरसी के, तहँ चाक्षुष तिनके साध्य भये १५
रोचिष आतप विभावसू के, दिन पांचपहर का गिनत लये॥ १६
भये भूत वसू के कोटि रुद्र, अज रैवत भीम भव उग्र वाम। १७
बहु रूप बृषाकपि अहिर्बुध्न, सब रुद्र पार्षद विविध नाम॥ १८
अंगिरा के पितृ स्वधा में भे, आंगिरस वेद जाये हैं सती। १६
भे कृशाश्व के सुत धूम्रकेश, धिषणा में देवल बयुन यती॥ २०
बिनता कद्रू यामिनी पतंगी, तार्क्ष्य के नारी चार रही।
जाये हैं पतंग पतंगी ने, यामिनी के टीड़ी शलभ सही॥ २१

दो०—बिनता गरुड़ अरुड़ जने, हरिबाहन रविसूत।
कद्रू के साँपहि भये, बेगिनती बहु पूत॥ २२

छ०—अश्विनी आदि चन्द्रमानारि, लहि दक्ष शाप से सुत न लहे।

[1] शिशुमार चक्र

रोहिणी में प्यार अधिक कीना, यक्ष्मा हो शशिनित दुखीरहे ॥२३
पुनि प्रसन्न करि बरदान लिया, घटिहैं बढ़िहैं इक एक कला ।
अब कश्यपजी का वंश सुनो, गाये औ सुने से होय भला ॥२४
हैं अदिति दिती दनु काष्ठा मुनि, सुरसाहु अरिष्टा तिय सरमा ।२५
ताम्रा सुरभी तिमि क्रोधवशा, इला तेरह ये लिये क्रोध क्षमा ॥२६
सुरभी के गाई भैंस और, जो दो खुरवाले जीव सभी ।
ताम्रा ने बाज गीध जाये, अप्सरा बृंद मुनि जने तभी ॥ २७

दो०—क्रोधवशा के सर्प औ, डाँस मशादिक जौन ।
यातुधान सुरसा किये, बृक्ष इला तिय तौन ॥ २८

छ०—गंधर्व अरिष्टा से जन्मे, काष्ठा के इक खुरवाले जीव ।
दनु के इकसठि दानवा भये, सुनो नाम युद्ध में प्रबल अतीव २९
शंबर अरिष्ट स्वर्भानु कपिल, हयग्रीव द्विमूर्धा और अरुण । ३०
अयमुखौ पुलोमा वृषपर्वा, अनुतापन दुर्जय आदि तरुण ॥ ३१
स्वर्भानुसुता नमुची ब्याही, शर्मिष्ठा वृषपर्वा कन्या ।
ब्याही ययाति को कहिहैं सब, सुत पुरु आदिक जाये धन्या ॥३२
वैश्वानर की कन्या हैं चार, हयशिरा पुलोमा नाम लिया ।
कालिकाहु उपदानवी ताहि, लै हिरण्याक्ष ने ब्याह किया ॥३३

दो०—क्रतुहि विवाही हयशिरा, कश्यप औरहु दोइ ।
एक पुलोमा कालिका, दानव जाये सोइ ॥ ३४

छ०—बिधिके कहनेसे ब्याह किया, पौलोमा कालिकेय दानव ३५
अर्जुन ने मारे साठि सहस, गे सुरेन्द्र ढिग सुरपुर मानव ॥ ३६
सिंहिका में बिप्रचित्त से भे, सौ एक राहु जेष्ठा सब में ।
केतू दोनों ग्रह मध्य भये, है कठिन दुष्ट खल करतब में ॥ ३७

अब अदितिवंश सुनिये राजन, नारायण जन्मे अंशसहित ।३८
रवि पूषा त्वष्टा भग धाता, अर्यमा विधाता सुन्दर चित ॥
वामन सुरपति अरु वरुण मित्र, सविता बारा सुत जाये हैं ।
यह भये देवता जगहितकर, फल उत्तम गुन यश गाये हैं ॥३९

दो०—रवि से संज्ञा नारि में, श्राद्ध देव यमराज ।
यमुना इक कन्या भई, सकल सवाँरत काज ॥

छ०—घोड़ी तनु धरि अश्विनिकुमार, जाये सुरलोक वैद्य गाये ४०
छाया में शनीचर सावर्णी, तपती कन्या रवि से आये ॥ ४१
मातृका अर्यमा की नारी, चर्षण आदिक सुत उपजाये । ४२
पूषा के पुत्र नहिं, दांत गिरे, मख दक्ष माहिं हँसि दिखलाये ४३
त्वष्टा ने रचना नारी में, सुत विश्वरूप पैदा कीना । ४४
देवों ने जिनको गुरू किया, दैत्यों से छीन राज दीना ॥

दो०—इन्द्र बृहस्पति गुरुहि लखि, कीन्हा नाहिं प्रणाम ।
त्यागि इन्द्र को छिपि गये, बाढ़ा बहु इतमाम ॥ ४५

भजन—सृष्टि का नाहीं ठीक ठिकान ।
कन्या साठि दक्ष की जाई, तिनसे पूर जहान ॥ टेक ॥
पशु पक्षी जल जीव कीट अहि, गरुड़ बाह भगवान ।
दानव दैत्य भये कश्यप से, एक से एक महान ॥ सृष्टि०
अदिति माहिं देवता भये सब, करहिं जगत कल्यान ।
सबके वंश कीर्ति छाई जग, पढ़े सुने सुख जान ॥ सृष्टि०
ईश्वर की सब सृष्टि मानिकै, करै नहीं अभिमान ।
माधवराम श्याम मिलिबे हित, करै सदा गुनगान ॥ सृष्टि०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे षष्ठोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे सप्तमोऽध्यायः।

श्लोक—सप्तमे विश्वरूपेऽसौ पौरोहित्येबृतःसुरैः।
गुरुणा संपरित्यक्ते पौरोहित्यमथाकरोत्॥

दो०—कियो पुरोहित देवतन, विश्वरूप को लाय।
सतवें में वर्णन करैं, सबै चरित्रहि गाय॥

राजोवाच छ०—अपराध किया क्या देवों ने, जो बृहस्पती ने छोड़ दिया।
चेलों का गुरु में खोट कर्म, कहिये मुनि है प्रभु शुद्ध हिया॥ १
श्रीशुक उ०—पालिक त्रिलोक के इन्द्र भये, वसु वायु मरुत सब मानै हैं। २
रवि विश्वेदेवा साध्य सिद्ध, गंधर्व करैं गुन गानै हैं॥ ३
विद्याधर किन्नर उरग आदि, सेवा ठानैं स्तुती करैं। ४
सिंहासन पर राजैं महेन्द्र, शशितुल्य छत्र शिर चमर ढुरैं॥ ५
इन्द्राणी अर्द्धांगो बैठीं, औरहु सारे सामान जुरे। ६
सुरगुरु इन्द्रहु के बृहस्पती, आये सुरपति नहिं नेक मुरे॥ ७

दो०—नमैं सुरासुर वाक्पति, बृहस्पती गुरु चीन्ह।
उठे न आसन इन्द्र तजि, झुकि प्रणाम नहिं कीन्ह॥ ८

छ०—अपमान देखि झट गुरु निकले, अभिमानीलखि निजघर आये। ९
अपराधःसमुझि इन्द्रहु चितमें, निंदहिं निजको नहिं शिर नाये १०
हम मंदबुद्धि किया असतकर्म, जो सबमें गुरु अपमान किया ११
पंडित नहिं सुरपति श्री में फँसै, जिसने आसुरी सुभाव दिया १२
परमेष्ठी आसन से न उठै, यह कहैं ते धर्म नहीं जानैं। १३
पानी में पत्थर सम डूबैं, इस बात में जो श्रद्धा ठानैं॥ १४

हम जाय चरण में शिर नमाय, आचार्यहिं गुरुहिं मनालावैं। १५
यह सोच गये गुरुगृह में इन्द्र, छिपगये पता नहिं वह पावैं॥ १६
दो०—हे नृप सुरपति गुरु न लहि, सुख न लहै दुखमान। १७
शुक्रहि सेइ असुर सबै, दीन युद्ध हठि ठान॥ १८
छ०—लड़ि अंग भंग देवता सबै, बिधिशरण जाय शिरनाये हैं १९
लखि दुखी देवतों को ब्रह्मा, धीरज दै के समझाये हैं॥ २०
ब्रह्मोवाच—बहुत ही बुरा कीना कुकर्म, जो गुरु ब्राह्मण अपमानकिया २१
चीणहू दैत्य गुरुबलसे प्रबल, चलिहै न यत्न सुरलोक लिया २३
उसका फल निबल हार दीनी, वह छीन प्रबल तुम सबैभांति २२
नहिं भृगुशिक्षा से गनै स्वर्ग, गोद्विजहरि तजि नहिं लहै शांति २४
आत्मज्ञानी द्विज तपधारी, जा विश्वरूप आचार्य गहौ।
जो गम खावो उसके कर्महिं, आदरकरके सुख सकल लहौ॥२५
श्रीशुक उ० दो०—बिधि समझायो सुरन को, हियमें शांती धार।
विश्वरूप पहँ जाय कै, बोले बचन विचार॥ २६
देवाऊचुः छ०—हम अतिथि आपके ढिग आये, पितु तुल्य कामना पूर करो २७
सुत धर्म पिता की सेवा है, गृहि से ब्रह्मचारी अधिक खरो॥२८
आचार्य मूर्ति वेदों की है, पितु मूर्ति प्रजापति की आई।
भाई वायू की मूर्ति अहैं, पृथ्वी तन है जग में माई॥ २९
है बहिन दया की मूर्ति, धर्म की मूर्ति अतिथि श्रुति गाते हैं।
अभ्यागत अग्नि मूर्ति कहते, जगजीवों को समझाते हैं॥३०
शत्रुओं से पीड़ा बहु आई, संदेश सुनौ तप से हर लो। ३१
आचार्य गुरू बनि देवों के, शत्रुओं से जीति शीघ्र करदो॥ ३२
दो०—कर्मकांड में लघुन को, वर्जित नाहिं प्रणाम।
साधारण में वयस से, लीन जात है काम॥ ३३

ऋषिरुवाच छं०—देवों ने पुरोहित होने को, जब विश्वरूप से बचन कहा
मृदु बानी से उत्तर देते, इसका करते उपहास महा ॥ ३४
विश्वरूप उ०—तप छीन करै मुनि निंदत हैं, पुरुहिती कर्म अस गाते हैं।
स्वारथबश उनके शिष्य हमी, लेकर कैसे सुख पाते हैं ॥ ३५
मुनियों का धन है शीलउंछ, इसही से क्रिया निर्वाह करै ।
हे देव सुनो अस को दुर्मति, पुरुहिती कर्म हिय माहिं धरै ॥ ३६
गुरुओं का बचन नहिं टाल सकैं, तन प्राणसे काम सँभालेंगे ।३७
श्रीशुकउ०—कहि विश्वरूप स्वीकारकिया, सोइ कर्मदेव दुखटालैंगे ३८

दो०—शुक्र से रक्षित असुर श्री, इन्द्रहि दीनी छीन । ३९
रक्षित सुरपति विजय ली, सो विद्या सिख दीन ॥ ४०

भजन—भला नहिं कीने गुरु अपमान ।
बैठे इन्द्रलोक में सुरपति, करैं देव गुन गान ॥ टेक ॥
सुर मुनि सबै निहारत शोभा, सब में एक प्रधान ।
ताही समय बृहस्पति आये, झुक्यो न, बढयो गुमान ॥ भला०
लौटि गये इन्द्रासन छूटा, लगै न कहूँ ठिकान ।
माधवराम सदा गुरुपद हिय, करना चहिये ध्यान ॥ भला०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे सप्तमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे अष्टमोऽध्यायः ।

श्लोक—अष्टमे विश्वरूपस्तु वर्मनारायणात्मकम् ।
इन्द्राय प्राह येनेन्द्रो गुप्तो दैत्यानघातयत् ॥

श्रीरामाय

नमः
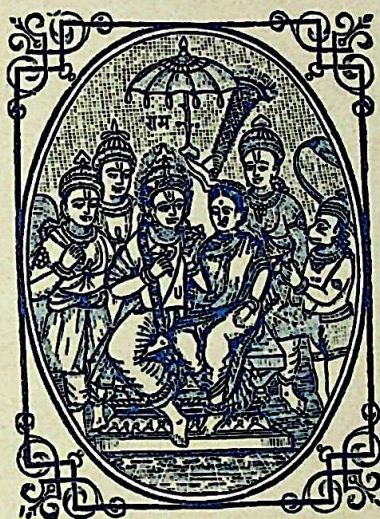
श्रीमान् त्रिपाठी मीतारामजी के पौत्र
श्रीमान् त्रिपाठी जगन्नाथप्रसादजी के पुत्र
श्रीमान् त्रिपाठी ज्वालाप्रसादजी की धर्मपत्नी

श्रीमती नारायणीदेवी

ने

पत्थरवालों के पास नई सड़क में श्रीसीतारामजी का
मन्दिर बनवा कर सब सम्पत्ति उसमें लगा दी है।
आप ग्रन्थकर्ता का बड़ा सन्मान करती हैं।
षष्ठ स्कन्ध की वितरणार्थ ५०० प्रतियों
की छपाई में आपने यथाशक्ति धन
से सहायता दी है।

दो०—नारायण शुभ कवच जो, सुरपति कहँ मुनि दीन।
अठयें में बर्णन करैं, विजय शत्रु से लीन ॥

राजोवाच छं०—जिससे रक्षित रणमें सुरपति, सबरिपुजीते श्रीविजयलही ।१
रिपुजयदायी हरि कवच मुनी, मुझसे कहिये प्रार्थना यही ॥ २
श्रीशुक०उ०—जिस समय इन्द्र ने विश्वरूप को, गुरू पुरोहित करि लीना।
सुन एक चित्त से नारायण, शुभ कवच ताहि शिक्षा कीना ॥३
विश्वरूप उ०—पद हाथ धोय शुचि होय प्रथम, उत्तरमुख है आसन धारै।
करि अंगन्यास अरु करन्यास, नहिं बोलै चंचल मन मारै ॥ ४
भय पड़े नरायण वर्म पढ़ै, पद जानु ऊरु हिय मुख परसै। ५
शिर क्रमसे ॐकारादिक पढ़के, नमोनारायण हियसे हरषै ॥ ६

दो०—कर अँगुली में धरै कर, करन्यास करि लेय।
द्वादश[1] अक्षर मंत्र से, करने में चित देय ॥ ७

छं०—ॐकार हृदयमें वि शिरमें, ष भौंह णकार शिखामें धरै ।८
वे नेत्रमध्य न संधिन में, म अस्त्रहु फट उच्चार करै ॥ ९
सब दिगरक्षा पढ़ि पूरमंत्र, ॐकार सहित विष्णवे नमो। १०
छः शक्तियुक्त आत्महि ध्यावै, विद्यातप मूर्ति बनै औ रमो ॥११
हरि गरुड़ चढ़े सब रक्षा कर, शंखादि आठ बाहू में लिये। १२
जल वरुण फाँस से मत्स्यमूर्ति, स्थलमें वामन हाथ दिये ॥ १३
बन रण में रक्षैं नृसिंहजी, जिनकी गर्जन सुनि गर्भ गिरैं। १४
मारग में यज्ञ बराह रक्ष, गिरि विदेश में सँग राम फिरैं ॥ १५

दो०—प्रमाद से नारायण, हाँस से नरहु सदाहि।
अयोग में दत्तात्रयी, कपिल कर्म बंधाहि ॥ १६

१ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २ ॐ विष्णवे नमः

छ०—मम सनतकुमार करैं रक्षा, जब कामदेव का भय आवै।
हयग्रीव मार्ग नर्कों से हरी, नहिं पूजन विघ्न कूर्म लावैं॥ १७
धन्वंन्तरि देव रोग नाशैं, भयद्वंद सों राखैं ऋषभदेव।
जनवाद से रक्षहिं बलदेवहु, अरु शेष क्रोध से रक्षा लेव॥ १८
अज्ञान पखंड से ब्यास मुनी, कल्की कलिमल से करैं निहाल।
धर्महि रक्षहिं धर्मावतार, केशव ले गदा रख प्रातःकाल॥ १९
गोविन्द संग रहि बेणु लिये, मध्यान्ह प्रथम रख नारायण।
मध्यान्ह में विष्णू चक्र लिये, अपरान्ह में मधुहा तारायण॥२०

दो०—माधव सायंकाल में, हृषीकेश निशि माहिं।
पद्मनाभ अधरात में, ईश निशा फिरि ताहिं॥ २१

छ०—रखि लेहिं जनार्दन उषःकाल, दामोदर संध्या दोउ प्रमान।
विश्वेश्वर प्रभात में रक्षहिं, जो कालमूर्ति धारे भगवान॥ २२
सब ठौर चक्र भ्रमि कै राखैं, रिपुसैन फूस सम नाश करैं। २३
गदा चूर करै सब शत्रुन को, भय यक्ष राक्षस भूत हरैं॥ २४
सब प्रेत पिशाच प्रथम आदिक, हरि पूरि शंख रिपु काँपि भगै २५
तुम तेज धार असि रिपु नाशौ, रिपु नैन बंद में चर्म लगै॥ २६
गृह केतु मनुष्यों से भय जो, बीछी अहि सिंह पाप से डर।२७
विपरीत नाश होवें हमरे, हरि नाम विकार लेय सब हर॥ २८

दो०—वेदमयी श्रीगरुड़जी, करैं कष्ट सब नाश।
विष्वकसेन सहाय हों, पूरत जन की आश॥ २९

छ०—हरि नाम रूप आयुध रक्षहिं, मन बुद्धि प्राण को पार्षद सब।३०
सत् असत् रूप भगवान सत्यसे, दूर उपद्रव की करतब॥ ३१
एकात्मध्याय कल्पनारहित, प्रभु निज माया से शक्ति धरैं। ३२

भगवान हरी सोई सत से, सब रूप से रक्षा सदा करैं ॥ ३३
वे दश दिशि में ऊपर नीचे, नरसिंह प्रभू भीतर बाहर ।
सब तेज हरनहारे नितही, निज तेजसे लेवैं सब भय हर ॥ ३४
नारायण कवच लेहु सुरपति, इससे रक्षित रण जय पावै । ३५
इसे धारि पैर से छुए लखै, जिसको वह दुख से छुट जावै ॥ ३६

दो०—यह विद्या धारण किये, भय कतहूँ नहिं ताहि ।
राज चोर ग्रह सिंह रिपु, सपने नहिं समुहाहिं ॥ ३७

छं०—कौशिक द्विज यही कवच धारे, मरुभूमिमें अपना तन त्यागा ३८
गंधर्व चित्ररथ चढ़ि विमान, स्त्री युत ऊपर से लांघा ॥ ३६
गिरगया गगनसे विमान झट, मुनि बालखिल्य से पूँछा हाल ।
द्विज अस्थि सरस्वतिमें छोड़ी, स्नान किया गे धाम निहाल ॥ ४०

श्रीशुक उ० दो०—सुरपति विश्वरूपसे, कवच नरायण धारि ।
लक्ष्मी तीन त्रिलोक की, जीते शत्रु प्रचारि ॥ ४१

भजन—कवच नारायण लो हिये धार ॥ टेक ॥
अंगन्यास औ करन्यास करो, शुचिमन आसन मार ।
गरुड़ चढ़े चक्रादि हाथलै, रक्षा करैं मुरार ॥ कवच०
वरुण फाँस से मत्स्य मूर्ति रख, थल में धर्म उदार ।
बन रणमें नरसिंह बचावैं, कामसे सनतकुमार ॥ कवच०
हयग्रीव मारग में राखैं, प्रभु हरि नर्क मँझार ।
धन्वंतरि रोगों से उबारैं, कूर्म विघ्न दें टार ॥ कवच०
ऐसे नाम रूप सब हरि के, सब विधि हों रखवार ।
माधवराम कवच पढ़ि धारैं, होंय दुःख भावपार ॥ कवच०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे ऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे नवमोऽध्यायः ।

श्लोक—नवमे विश्वरूपेतु हतेशक्रेण कोपतः ।
त्वष्ट्रा चोत्पादिते बृत्ते भीतैर्देवैर्हरेः स्तुतिः ॥

दो०—विश्वरूप सुरपति हनो, बृत्रासुर उपजान ।
नवयें में स्तुति कहैं, भे प्रसन्न भगवान ॥

श्रीशु०उ०—गुरु विश्वरूप के तीनशीश, मदअन्न सोम इक इकसे खांय १
देवों को भाग प्रत्यक्ष देहिं, इन्द्राय इदं पढ़ि पढ़ि हरषांय ॥ २
चुप से दैत्यों हित हवन करैं, माता उस कुल की नेहपगे । ३
लखि इन्द्र शीघ्र शिर काटलिये, किसहू के भूप नहिं होंयसगे ॥४
भा शीश कपिंजल सोम पीथ, कलविंक सुरापी, तीतर अन्न । ५
हत्या सुरपति को लगी जबर, इक साल में पाप बांटि भे धन्य ॥६
महि जल नारी बृक्षहु लीनी, ऊसर हत्या महि पूरण बर । ७
काटे से बढै बर हत्या गोंद, बृक्षहु चौथाई लादे शिर ॥ ८

दो०—रजोधर्म हत्या कही, मास मास तिय धार ।
बर यह शुचि ह्वै गर्भ लें, होवैं सुत परिवार ॥

छ०—चांडाली पहले दिन नारी, अरु ब्रह्मघातिनी दिन दूजे ।
तीजे धोबिन चौथे में शुद्ध, पँचवे दिन अपना पति पूजे ॥
छः आठहु दश बारा चौदह में, गर्भ रहै तो सुत जावै ।
सातहु नव ग्यारह तेरह में, पंद्रह तक कन्या जन्मावै ॥ ९
पति होय न जो रवि दर्शन कर, अपने चित में शांती लावै ।
करि कुकर्म छिपछिप परनरसँग, नहिं नर्क आपको पंहुचावै ॥

जो नारि कुटिल करती कुकर्म, वह पीछे से पछताती हैं।
इक रोम रोम गिन नर्क भोगि, ह्यां भी बहु दुःख उठाती हैं॥

दो०—मारे मन मर जात है, धारे होत प्रचंड।
खबरदार भूलो नहीं, ब्रत करि देवो दंड॥

छ०—जल डार द्रव्य में बढ़े ये बर, हत्या बुल्ला फेना मल है।१०
सुनि सुतबध त्वष्ट्रा हवन करैं, रिपु वधकर सुत हो नहिं कलहै॥११
जब पुरश्चरण भा सिद्ध घोर, निकलाहै दैत्य ज्यों अग्नि प्रलय।
प्रतिदिन वह बढ़ता पांच हाथ, लखपरै करै यह सबजग लय॥१३
कालातन दीप्त सांझघन सम, है बाललालरवि से लोचन।१४
कर त्रिशूल धारे नाचिगर्जि, पृथ्वी हिलाव पितु दुख मोचन॥१५
मुखगुफा मनहु आकाश पिवै, जिह्वा से लोक चाट जावै।१६
जमुहावै दाढ़ैं लखि सुरदल, भागै दशदिशि कल ना पावै॥१७
जिस तम से तीनो लोक ग्रसे, पापी बृत्रासुर कहलावै।१८
सब देववृन्द लड़ि अस्त्र हनैं, इकसाथहि सबही ग्रसिजावै॥१९

दो०—ग्रसे अस्त्र विस्मित सुरहु, आदिपुरुष भगवान।
सावधान ह्वै एकचितं, विधि सो स्तुति ठान॥२०

छ०—वायूजल अग्नि त्रिलोकपती, ब्रह्मादिक जिससे डरखावैं।
देते हैं भेट सब काल प्रभू, हम शरण तासु गहि सुख पावैं॥२१
विस्मय से रहित परिपूर्ण काम, निज लाभ तुष्ट सम शांति धरै।
अस हरितजि और शरण लेवे, गहि श्वानपुच्छ सो सिंधुतरै॥२२
जिन मत्स्यरूप में नाव बांधि, मनु श्राद्धदेव दुख पार भये।
सोई हरि हमरो दुःख हरैं, जिनके बलसे नृप दुःख गये॥२३
ब्रह्माहू विकल प्रलयजल से, लहरों से जल में गिरे परैं।
बैठे पद्मासन हरि राखे, इस दुखसमुद्र से पार करैं॥२४

दो०—निज माया से जग सिरजि, तब हम रचैं बनाय।
हम न लखैं इच्छा हरी, सोई करौ सहाय ॥ २५

छ०—रिपु से पीड़ित लखि सुर नरमुनि, तन धारि युगै युग रक्षाकर।२६
परपुरुष प्रधानदेव की हम, लीनी है शरण दे सुख दुखहर ॥ २७
श्रीशुकउ०—यह देवों की विनती सुनिकै, धरिशंखचक्र हरि प्रगटभये२८
प्रभु कमलनैन सब पार्षद सँग, श्रीकौस्तुभबिन तहँ आयगये २९
सुरवृन्द देखि आनन्द लहे, मन तन की सुरति भुलानी है।
दंडवत कीन उठिकै सुर सब, धीरज धरि बिनती ठानी है ॥ ३०
देवाऊचुः—प्रभुयज्ञवीर्य कालात्मरूप, धरिचक्रनामशुभ नमो तुम्हें।३१
तीनों गुण के पद प्रभुके हाथ, है नमो ज्ञान तुम्हरो न हमैं ॥३२

दो०—वासुदेव नारायण, मंगल रूप प्रणाम।
दया धार जगधार तुम, लखि न सकैं तवधाम ॥

छ०—हो लोकनाथ सर्वेश्वर हरि, लखैं परमहंस हियमें अपने।
निजसुख अनुभवमय लख न आव, आज्ञानी जन न लखैं सपने ॥३३
जग विहार प्रभुको समझैं नहिं, अज्ञानी शरण न लीनी है।
सगुणौ निर्गुण जगरचौ अलग, अक्रियआत्मा मतिकीनी है ३४
क्यों नर समान सृष्टी में आय, दुख सुख फल आप उठाते हैं।
हैं आत्मराम सम शांतरूप, हम यह नहिं जाने पाते हैं ॥ ३५
गुण अपार ईश्वर तर्करहित, जो वाद विवाद करैं में परै।
सबके झगड़े तुमहीं में अस्त, यह दुर्घट नहिं कुछ सबहिं धरै ३६

दो०—कोउ रसरी कोउ सर्प कह, समहु विषमता धार।
सब कुछ ह्वै कुछ नहिं रहौ, निर्विकार व्यवहार ॥३७

छ०—सबमें सब रूप अहो ईश्वर, जग कारणहू के कारण हो।

प्रत्यक आत्मा सबही से भिन्न, है एक शेष भवतारण हो ॥ ३८
जे पिवै कथामृत एक बार, सब विषय भूलि जाते हरिजन।
तजि कुल जग पदसेवहिंहरि के, भवतरैं लहैं नहिं नेक विघन ॥३९
त्रैलोकपती हैं सब विभूति, सुर असुर मनुज आदिक मारी।
सुर नर मृग में अवतार लेहु, लखि अधर्म पापी भयकारी ॥ ४०
जो इच्छा हो यह रिपु मारौ, पदकमल ध्यान से हिय बांधे।
मृदुहास दयामय दृष्टि धारि, हरि ताप काज बनिहैं साधे ॥४१

दो०—जगकारक हम शरण हैं, बाहर भीतर बास।
ईश्वरकाल स्वरूप धरि, देश काल तन भास ॥

छ०—सबके साक्षी आकाशरूप, आत्मा स्वरूप हरि परमात्मा।
साक्षी लख में नहिं आते हो, आकाश देहधर जग आत्मा ॥४२
हम परमगुरू की पदछाया, जगभय दुखहारी आय गही।
कामना पूर करिहौ हमारि, बहु दुखहारक प्रभु अहौ सही ॥४३
जीतहु बृत्रासुर लोक ग्रसै, सब अस्त्र शस्त्र ग्रसि लीने हैं। ४४
हंस स्वरूप श्रीकृष्ण हरी, सब रूप नमो हम कीने हैं ॥ ४५
श्रीशुक उ०—सुनि देवोंकी स्तुति प्रसन्न, हरि बोलैं हित बाणी लीनी ४६
श्रीभग०उ०—होवै भक्ती मुझमें नर की, हम खुश हैं जो विनतीकीनी ४७

दो०—हम प्रसन्न तो सुलभ बहु, सबै वस्तु मिलि जाहिं।
ज्ञानी मति एकांत जो, कुछहू मांगत नाहिं ॥ ४८

छं०—नहिं आत्मा का हित लखै कृपिण, जग देखैं सुख हित मन लाये।
हरि भजैं चाहि सुख तैसहि ते, अंतर से माया लपटाये ॥ ४९
विद्वान श्रेय मारग सिखवैं, नहिं कर्महिं में भटकावै हैं।
सतवैद्य पथ्य रोगी को देहिं, कबहूँ नहिं कुपथ दिवावै हैं ॥ ५०

सुरपति दधीचि ऋषि पहँ जावो, मांगो शरीर तपसारमई । ५१
अश्विनीकुमारहि ब्रह्म दिया, है नाम अश्वशिर मुक्तिदई ॥ ५२
दी कवच दधीची त्वष्ट्राको, सो विश्वरूप से तुम पाई । ५३
अश्वनिकुमार मांगै तनको, बिशकर्मा वज्ररचि जय आई ॥ ५४

दो०—हम धरिहैं निज तेज तहँ, करिहौं बृत्र विनाश ।
मरे अस्त्र सब पाइहौ, हरि गहि नहिं दुख आश ॥ ५५

भजन—शरण लीने हरि दुख हरि लेत ॥ टेक ॥
विश्वरूप गुरु कीन इन्द्र पुनि, कीनी तहाँ कुनेत ।
मारे हत्या लगी भयो दुख, कुकर्म से दुख खेत ॥ शरण०
बांटि चारि में शुद्ध भये जब, बृत्रासुर भा प्रेत ।
लड़ैं देवता ग्रसै अस्त्र सब, मागें सांस न देत ॥ शरण०
हरिपद गहे विनय बहु कीनी, रिपु मारन के हेत ।
माधवराम युक्ति सब कहदी, राख्यो नहिं संकेत ॥ शरण०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे नवमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः

श्लोक—दशमे केशवादिष्टदध्यंगास्थिजवज्रभृत् ।
इन्द्रोऽयुध्यत बृत्रेण सासुरेण सनिर्जरः ॥

दो०—दधीचि मुनि पै सुर गये, हरि आज्ञा शिर धारि ।
दशयें में बर्णन करें, इन्द्र वृत्र तकरारि ॥

श्रीशुकउ० छ०—इस भांति इन्द्र को शिक्षा दै, सब देखहिं अंतरध्यान भये ।१
पहुंचे दधीचि पै तन माँगा, हँसि प्रसन्न कहते मान गये ॥ २

तन मरने का नहिं दुःख लखा, हे देव दुसह दुख बुधिहारी । ३
आत्मा है प्रिय सब जीवों को, माँगै जो विष्णु नहीं धारी ॥ ४
देवाऊचुः—नहिं दयावानको कुछ दुस्त्यज, तुमतुल्य जौन परउपकारी ५
स्वार्थी नहिं परसंकट जानै, जानै तो क्यों भिक्षाकारी ॥ ६
ऋषिरुवाच—सुनिबे को धर्म यह बचन कहा, छूटै तन हमही त्यागकरैं ७
यश धर्म न लेवैं तन नाशै, बृक्षहु निंदहिं नहिं दया धरैं ॥ ८

दो०—यशी पुरुष यह धर्म गहि, नहिं सोचहिं हर्षाहिं ।
परदुख दुखिया सुख सुखी, सो धर्मात्मा आहिं ॥ ९

छ०—है कष्ट दीनता क्षणभंगुर, तन सें उपकार न करते हैं ।
धन हेत जातिभाई सब से, हक नाहक लड़ लड़ मरते हैं ॥ १०
श्रीशुक उ०—यह निश्चयकरि धरि ब्रह्म हिये, मुनि दधीचि देह त्यागकीना ११
जीते इन्द्री मन बुद्धि सबै, थिर योग नहीं बन्धन लीना ॥ १२
विशकर्मा रचित बज्र सुरपति, लै विष्णु तेज जिसमें धारा । १३
ऐरावत चढ़े संग सुर सब, मुनि स्तुति करते जयकारा ॥ १४
सब असुर संग बृत्रासुर के, मारन को क्रोधित रुद्र समान । १५
पहिले त्रेता नर्मदा तीर, रण असुर सुरौ हो बेपरमान ॥ १६

दो०—रुद्र वसू आदित्य पितृ, अग्नी अश्विकुमार ।
विश्वेदेवा वायु ऋभु, आदिक भिरे प्रचार ॥ १७

छ०—सुरपतिको लीने बज्रहाथ, लखि असुर बृत्रयुत क्रोधभरे । १८
नमुची शंबर अंबर द्विमूर्ध, हयग्रीवादिक रण माहिं खरे ॥ १९
हेती प्रहेति वृषपर्वा आदि, राक्षस दानव गिनती है नहीं । २०
माली सुमालि लै कवच अस्त्र, सुरसेन रोकली मृत्यु सही ॥ २१
करि सिंहनाद दुर्मद भिड़िगे, गद परिघ बान मुद्गर मारे । २२

तोमर त्रिशूल खड्गादि अस्त्र, शस्त्रहु देवों पर संहारे ॥ २३
सुर लखि न परैं अस्त्रों से घिरे, शशि रवि ज्यों बादल घेरे में ।२४
देवों ने झट सब काट दिये, जो अस्त्र आवते नेरे में ॥ २५

दो०—दीएअस्त्र गिरि शृङ्ग द्रुम, करते असुर प्रहार ।
काटि तिन्हैं सब देवगण, महि पै देते डार ॥ २६

छ०—नहिं घायल मरते देव लखे, फिरफिर गिरि वृक्षोंसे मारे ।२७
निष्फल होते दैत्यों के यत्न, हरिजन क्यों कटुक बचन टारे ॥२८
दैत्योंने निष्फल मेहनत लखि, लड़ने का मान सब त्याग दिया।
मालिकको छोड़ संग्रामहिं में, झट भागे यह स्वीकार किया ॥२६
भागा दल दैत्यों का लखिकै, बृत्रासुर हँसिकै बात कहै । ३०
समयानुकूल बानी ये बीर, नमुची पुलोम हे सुनो चहै ॥३१
जो पैदा है मरिहै जरूर, बचने का यत्न कुछ नहीं अहै ।
यश धर्म नहीं पैदा कीना, मरना है बृथा श्रुति संत कहै ॥ ३२

दो०—दो मृत्यू जगमें भली, एक योग को धार ।
दूजी रण संमुख मरै, होय जीव भवपार ॥

भजन—अहै उस नरतन को धिक्कार ।
लैके जन्म अवशि मरना है, चलै न कोई कार ॥ टेक ॥
यासो सुयश धर्म कर लेवे, होय नहीं लाचार ।
यातो प्राण त्याग कर देवे, योग समाधी धार ॥ अहै०
संमुख मरन अहै क्षत्री को, रण में मर ललकार ।
माधवराम फिकिर तजि सब की, हरि भजि बेड़ापार ॥ अहै०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे दशमोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे एकादशोऽध्यायः ।

—o:❀:o—

श्लोक—एकादशेतु बृत्रस्य युद्धमानस्य वज्रिणा ।
भक्तिज्ञानबलोदर्काश्चित्रावाचोऽनुवीर्णताः ॥

दो०—बृत्रासुर सुरपति भिरे, कहे बृत्र बहु ज्ञान ।
एकादश में सो कथा, गुनिकै करैं बखान ॥

श्रीशुकउ०छ०—यह धर्मबचन सुनि असुर सभी, ठहरैं न कोइ भागे जावैं १
देवों ने भगा दी असुर फौज, बिन मालिक की सी हरषावैं ॥२
लखि क्रोधित ह्वै बोला है बृत्र, देवों को रोक कर डाट दिये । ३
धिक्कार तुम्हारी माता को, भागे को मारते अस्त्र लिये ॥ ४
जो लड़ने की इच्छा होवै, नहिं तुच्छपना दिल में धारो ।
नहिं घरसुख की इच्छा होवै, मम संमुख आओ ललकारो ॥ ५
यों कहके सुरों से तन भीषण, करि घोर नाद चिल्लाया है । ६
सुनि शब्द देवता गिरे मही, मूर्छित गिरि बज्र ढहाया है ॥ ७

दो०—नैन मूँदि सुरदल मल्यो, चढ़ा रंग संग्राम ।
जैसे हाथी कमलबन, सुर कीने बेकाम ॥ ८

छ०—सुरपति लखि दशा तुरत धाये, शत्रुको गदा प्रहार करी ।
आते लखि बृत्रासुर झटसे, ज्यों गरुड़ साँपनी सी पकरी ॥ ९
बृत्रासुर ने वह पकड़ गदा, ऐरावत के शिर पर मारी ।
यह कर्म देख सब वाह वाह, रण में करती सेना सारी ॥ १०
सहि गदा चोट हाथी पिछला, चिल्ला कर पीछे सात धनुष ।
शिर चूर्ण बज्र से गिरि जैसे, हो सका खड़ा नहिं वह संमुख ११

नहिं मारी विकल लखि गदा इन्द्र, अमृतस्रावी कर से परसा ।
सुरपति से गज की व्यथा गई, वह बीर महात्मा देखि हँसा १२
दो०—बज्र लिये सुरपतिहि लखि, सुमिरि भायहंतार ।
मोह शोक से लहैं हित, रण में कहै पुकार ॥ १३
बृत्र उ० छ०—द्विज गुरु भाई हत्यार शत्रु, संमुख आया बड़भाग जगी ।
निज त्रिशूल से हनि उऋण होउ, करि चूर्ण हृदय यह आश लगी १४
श्री ह्री कीरति औ दयाहीन, राक्षसों से बढ़ कर कर्म किया ।
मारूँ त्रिशूल से खाँय गृद्ध, ह्वै इन्द्र नीच यह धर्म लिया ॥ १५
औरहू नीच सुर जो मुझको, मारैं हित अस्त्र शस्त्र लेवैं । १६
इसही त्रिशूल से मारि तिन्हैं, हम भैरव हेत भेट देवैं ॥ १७
जो इन्द्र बज्र से मेरा शिर, काटौ तौ भी हरषाऊँगा ।
यहतन जीवों को भेट देउँ, बीरों की पदवी पाऊँगा ॥ १८
दो०—दधीचि ऋषि के हाडसे, रचि हरितेज समान ।
बज्र मारि लेवो विजय, इन्द्र कहा मम मान ॥ २०
छ०—क्यों नहीं मारते बज्र इन्द्र, सन्मुख बैरी मैं खड़ा प्रबल ।
नहिं गदा तुल्य हो बज्र विफल, ज्यों कृपिणयाचना में नहिंफल ॥ १६
हम शेष चरण में मन लगाय, जो उनसे शिक्षा पाई है ।
तब बज्र लगे संसार छोड़ि, लूँ मुनि दुर्लभ गति भाई है ॥ २१
एकांत भक्त को महि पताल, स्वर्गहु की संपति नहिं देते ।
जिनसे मद बैर कलह व्याधी, सब प्रकार के दुख नर लेते ॥ २२
धर्मार्थ काम में विघ्न करैं, मेरे हरि स्वामी इन्द्र सुनो ।
हरिजन अनुभव करते इसका, दुर्लभ औरों को मनमें गुनो ॥ २३
दो०—प्रभुपद में मम मन लग्यो, नहिं जगकी परवाह ।
हारि जीति सुरपति लखो, है तरुवर की छाँह ॥

मैं हरिपद के दासों का दास, मरने के पीछे हों तन धर।
मन सुमिरै मुख से कढ़ै नाम, काया से हर की सेवा कर ॥ २४
नहिं स्वर्ग ब्रह्मपद चक्रवर्ति, पाताल लोक की मलिकाई।
योगहु की सिद्धी चहौं नहीं, हरिपद की भक्ति हिये भाई ॥ २५
पत्ती बिनु पंख छोट बछरा, माता के सहारे सदा रहै।
प्यारी बिछुरे प्यारे को चहै, त्यों मन मेरा हरि लखत अहै ॥ २६

दो०—हरिजन में हो मित्रता, भ्रमत कर्म संसार।
तन तिय सुत धन कुटुम सों, हे प्रभु होय न हार ॥ २७

भजन—भक्त को तिनका सम संसार ॥ टेक ॥
स्वर्ग नर्क सम राज बंध सम, बेड़ी कुल परिवार।
ऋद्धि सिद्धि फाँसी सी लागै, गौरव मान बिगार ॥ भक्त०
अंतर एक पलक नहिं डारै, हरिपद सदा निहार।
जो बाधा लगि जाय लखन में, मानै पूरी हार ॥ भक्त०
नरतन पाय सबै सुख भोगै, हरि न भजै धिकार।
माधवराम बिकान श्याम पर, तजि कै जगत बिगार ॥ भक्त०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे एकादशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे द्वादशोऽध्यायः।

श्लोक—द्वादशेऽति विषण्णेन स्वयमुत्साहितेन तु।
महेन्द्रेण महायुद्धे वृत्रस्यवधईर्यते ॥

दो०—सुरपति हतउत्साह लखि, शत्रु दिया उत्साह।
बरहें में वर्णन करैं, बृत्रासुर बध राह ॥

ऋषिरु०छ०—वह विजय से ज्यादा मौत गुनै, तैयारखड़ा त्रिशूलपकड़े।
मधुकैटभ हरि संमुख जैसे, मन हरिपद में तन से अकड़े ॥ १
यों कहिकै असुर त्रिशूल मारि, नहिं बच सकते यों ललकारा।
जनु कालजीभ सी धाई वह, वह समझै सुरपति को मारा ॥ २
ग्रह उल्कापात सम आते लखि, सुरपति स्वबज्र करमें धारा।
काटा त्रिशूल अरु एक भुजा, बासुकि शरीर सम महि डारा ॥ ३
लै परिघ दूसरे कर में असुर, ठोढी में इन्द्र के वार किया।
गजहू के मारि घबराय इन्द्र, निज कर से बज्रहिं डार दिया ॥४

दो०—देखि कर्म यह सुर असुर, लगे प्रशंसन ताहि।
लखि सुरपति संकट महा, हाय हाय हियमाहिं ॥ ५

छ०—रिपु संमुख कर से बज्र गिरा, लज्जित हो इन्द्र न लेन चहै।
ले लो नहिं मनमें रंज करो, जीतो रिपु वह बहु बार कहे ॥ ६
परअधीन जय है बीरों को, जो रण में युद्ध वीर करते।
जग रचि पालत नाशै ईश्वर, तिसके बिन जय नहिं थिरधरते ॥७
लें श्वास लोकपति बस जिसके, पिंजरे में फँसि पच्छी जानो। ८
जीना मरना बल निबल सभी, अपने से गुनै सो जड़ मानो ॥ ६
बाजीगर कठपुतली नचाव, जगजीव ईश बश नाचि रहे। १०
माया इन्द्री जग रचि न सकैं, हरि दाया से जग रचा अहै ॥ ११

दो०—अज्ञानीजन आत्महि, मानै ईश प्रधान।
रचि पालै नाशै हरी, पलमें सकल जहान ॥ १२

छ०—श्री आयु कीर्ति सुख त्यों आवैं, ज्यों बुलाव बिन दुख आजावै १३
इससे जय हारि अयश कीरति, सुख दुख में मन समता लावै १४
सत रज तम माया के गुण हैं, लखि आत्मा साच्ची सुख पावै १५

लखि दशा हमारी दुख न करौ, करि यत्न यथाबल हरषावै ॥१६
पाशा है बाण हैं दांव प्राण, बाहन ही आसन यहां धरे ।
किसकी हो जीत हार ह्यां पर, नहिं कोई दिव्यदृष्टि पकरे ॥१७
श्रीशुक उ०—निश्छल बानी सुनि रिपुकी इन्द्र, अपने मनमें शरमाये हैं
विस्मित हो हँसि कै बज्र लिया, उसको ये बचन सुनाये हैं ॥१८

इन्द्र उ०दो०—हे दानव तुम सिद्ध हो, जो अस बुद्धि तुम्हार ।
सर्वात्मा में भक्ति लहि, हिय में ईश्वर धार ॥ १६

छ०—भगवतमायासे पार गये, तजि असुरभाव हरिभाव लहा २०
आश्चर्य महा रज स्वभाव में, हरि वासुदेव में प्रेम महा ॥ २१
जिसकी भक्ती भगवत में है, वह जगसुख चित में नाहिं धरैं ।
जो अमृतसिंधु में केलि लहै, नहिं लघु तालहि पै दृष्टि करैं ॥२२
श्रीशुक उ०—यह कहकै धर्मवार्ता दोउ, सुरपति औ बृत्रासुरहु भिड़े । २३
बायें करसे परिघा रिपु लै, सुरपति को मारा रण में खड़े ॥ २४
परिघा हाथहु रिपुका सुरपति, ज्यों गिरि स्वबज्र से काट दिया ।२५
कट हाथ दोउ खग पंख बिना, गिरितुल्य समर में शोभ लिया ॥२६

दो०—पृथ्वी में करि होंठ इक, दूजो गगन बढ़ाय ।
गिरिकंदर सम दीर्घमुख, बृत्र दीन फैलाय ॥ २७

छ०—तीनहू लोक जनु ग्रसे जांय, दाढ़ैं गिरि काँपै तन भारी २८
पर्वतै चलैं जनु महि हिलाय, गज इन्द्रहिं लील्यो भयकारी २६
बल अधिक तेज गज ज्यों अजगर, लीलालखि सुरमुनि चिल्लाये ३०
नारायण कवच के बल से इन्द्र, नहिं मरे पेट से बचि आये ३१
फाड़ा है बज्र से पेट निकल कर, शिखर समान शीश काटा ।३२
दो अयन साल कटने में लगा, अति तेज बज्र धीरे छाटा ॥ ३३

दो०—वर्षि सुमन दुन्दुभी बज, सिद्ध मुनी गुन गाव । ३४
बृत्र देह सों ज्योति कढ़ि, सब देखहिं छिपिजाव ॥ ३५

भजन—जीति हरिबल से जग में पाव ॥ टेक ॥
सब प्रकार बलहीन इन्द्र सुर, प्रथमैं विष्णु मनाव ।
दर्शन दै धीरज समुझाया, कह दिया साँच उपाव ॥ जीति०
पाय अस्थि बजूहु बनाय लै, युद्ध हेत रण धाव ।
बिनु हरिकृपा विजय नहिं पाई, समुझि सबहिं समझाव ॥ जीति०
पेटहु से कढ़ि बाहर आये, देखहु कवच प्रभाव ।
माधवराम यहै गुनि हिय से, राम कृष्ण गुन गाव ॥ जीति०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे द्वादशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः ।

श्लोक—त्रयोदशे तु बृत्रस्य ब्रह्महत्यामहाभयात् ।
चिरं नष्टोऽवितः शक्रो विष्णुनेति निरूप्यते ॥

दो०—हत्या के भय इन्द्र जब, नहिं मारयो पुनि मार ।
तेरह में वर्णन किया, यज्ञहि से निरधार ॥

श्रीशुकउ०छं०—बृत्रासुर के मरजाने पर,सबही सुखपाये इन्द्र नहीं १
सुरमुनी पितृ बिधि सुखसे भी, निज भवनगये सुखशांति लही २
राजोवाच—मैं सुनाचहौं सबसुख पाये, दुख एक इन्द्र क्यों पाये हैं। ३
श्रीशुक उ०—नहिं मारैं इन्द्र बृत्ररिपुको, जब पेट फारि कढ़ि आये हैं ॥४
इन्द्र उवाच—जलनारि मही तरुमें बांटी, पहिली हत्या यह कित जावै ।५
श्रीशुक उ०—सुनि मुनि कहते करवाय यज्ञ, झट अश्वमेध शुद्धी पावै ॥ ६

हरि अर्पण करके अश्वमेध, जग बधकरि पापिहि उद्धारै। ७
द्विज गो पितृ मातृ गुरू मारैं, मख सोधै नाम जासु तारै ॥ ८

दो०—अश्वमेध है महामख, श्रद्धा से जो ठानि।
मारि चराचर अघ छुटै, खल मारे कस हानि ॥ ९

श्रीशुक उ० छ०—समझाने से रिपु इन्द्र हना, हत्या झट से तहँ आय रही १०
बहुताप पाय निरबृत्ति न लहि, अयशी पापी कहुँ शांतिलही ॥ ११
चांडाली वृद्धा चयरोगी, है लाल वस्त्र पीछे धाई। १२
हैं बाल खुले रहु ठढ़ कहै, मछली सी गंध तन से आई ॥ १३
सब दिशा भागि आकाश गये, जा मानसरोवर प्रविशि गये। १४
भूखों मरि एक हज़ार वर्ष, हैं अग्नि दूत किमि खाय जिये ॥ १५
तब लगि इन्द्रासन नहुष लिया, अभिमान से सर्पयोनि पाई।
इन्द्राणी की इच्छा से शाप, मुनि दीन पालकी खिंचवाई ॥ १६

दो०—विप्रन यज्ञ कराय कै, प्रसन्न करि भगवान।
पाप नाश करवा दिया, लक्ष्मी लही निदान ॥ १७

छ०—मिलि ब्रह्मऋषी करवाय यज्ञ, करि अश्वमेध प्रभु प्रसन्न हरि। १८
सब देवमयी हरि हेत यज्ञ, सुरपति से कराई मुनि चित धरि ॥ १९
बृत्रासुर की हत्या नाशी, रवि उदय कुहर जैसे नासै। २०
करि यज्ञ पाप से छूटि गये, हरि पूजि तेज पूरण भासै ॥ २१
यह पापविनाशन हरिचरित्र, भक्ती हरि की मुक्तीदाई।
सुरपति की विजय जो पढै सुनै, हो विजय विष्णुभक्ती पाई ॥ २२

दो०—पढ़ैं सुनैं जो पर्व में, धनदायक यशकारि।
शत्रु विजय मंगल लहैं, धारहिं दया मुरारि ॥ २३

भजन—आसरा राम का भारी, जिन्होंने दिल में धारा है।
न वह जगजाल में फँसते, जाय भव धार पारा है॥ टेक॥
अगर तन से कोई उनके, बुराई पाप हो जावे।
रामही झट सहायक बन, करैं उसमें सहारा है॥ आसरा०
बुराई इन्द्र ने कीनी, गुरू द्विज मित्र को मारा।
सहारे ईश के मख ठानि, पापों से उबारा है॥ आसरा०
कठिन कारज मुसीबत सब, होय आसान हरिबल से।
आप अजमाय कर देखो, इशारा ये हमारा है॥ आसरा०
करैं जिसको जौन भावै, नतीजा फिर टटोलेंगे।
एक हरि नाम माधवराम को, दिल से पियारा है॥ आसरा०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः।

श्लोक—चतुर्दशेतु सहसा कृच्छ्रलब्धे सुते मृते।
चित्रकेतो रतिस्नेहाददतिशोको निरूप्यते॥

दो०—वृत्रासुरकी भक्ति लखि, नृपपूछहिं ततकाल।
चौदह में मुनि कहत हैं, चित्रकेतु का हाल॥

परीक्षिदुवाच छं०—वृत्रासुर रजतम मतिवाला, नारायण में दृढबुधि धारी १
नहिं निर्मल मति सुरभक्ति करैं, जावैं मुकुन्द पद बलिहारी॥ २
रजगुण से बनै जगत सारा, कोई सच्चा कल्याण गहै। ३
कोइ होय मुमुक्षु हजारन में, तिन हजार में कोइ सिद्धि लहै॥ ४

सिद्धों में मुक्त कोई हरिजन, शांतात्मा कोटिन में दुर्लभ। ५
रणमें भी दृढ़ मति हरिपद में, इसभांति कहो किसकोहै सुलभ॥ ६
संदेह बड़ा बृत्रासुर में, आश्चर्य मेरे मन में भारी।
सुरपति को रण में तृप्त किया, मन में धारै श्रीगिरिधारी॥७
सूत उ० दो०—प्रश्नकिया इसभांति नृप, मनमें संशय लाय।
मुनि प्रशंसि वर्णन करैं, हिये अधिक हरषाय॥ ८
श्रीशुकउ०छं०—नृप सावधान इतिहाससुनो, मुनि देवल नारद व्यासकहा ९
नृप सार्वभौम इक चित्रकेतु, जिसकी छाई महिं कीर्तिमहा॥ १०
इककोटि रानियाँ थीं जिसके, नहिं किसी में पुत्र भया उसके॥११
था रूप जन्मविद्या धन सब, बंध्यारानी चिंता तिसके॥ १२
संपति रानी भी रूपवती, पृथ्वी का राज नहिं सुखदाई। १३
अंगिरा मुनी नृप घर आये, सब जगह विचरते हरषाई॥ १४
उठिलै नृप विधिसे पूजाकर, अतिथी मुनिका सत्कार किया। १५
संमुख बैठे नृप प्रणाम करि, मुनि कहने हित यह वचन लिया॥१६
अंगिराउ०दो०—हे नृप सातों अंगमें, अहै कुशल कल्यान। १७
प्रजामें तनधरि नृप सुखी, प्रजासुखी नृपमान॥ १८
छं०—तिय प्रजामंत्रि सेवकपुरके, राजा औ देश सुत बशहोवैं १९
जिसके आत्माबश सब बशमें, बलिदेहिं लोकपति रुख जोवैं॥२०
नहिं प्रसन्न तुम लखपड़ते नृप, चिंता मन चाह तुम्हार लहै। २१
कहिये नृप से मुनिजी पूँछैं, सुनि नृप प्रणाम करि बचन कहै॥२२
चित्रकेतुउ०—तपज्ञानी मुनिजी सबजानौ, योगीध्यानीसब पापरहित २३
पूछने से जो मनमें कहते, ज्ञानी की आज्ञा पाले हित॥ २४
यह राज्य लोकपति भी चहते, सुतहीन मुझे बहु दुख देवे।
ज्यों भूखा प्यासा हो कोई, नहिं शौक वस्त्र से सुख लेवे॥ २५

दो०—परे पितर मम नर्क में, मुनिजी लेहु उबार।
यह दुस्तर दुख जगत का, करो पुत्र दै पार ॥ २६

श्रीशुक०उ०—यह सुनि विधिसुत अंगिरामुनी, त्वष्टा पूजन हविकी विनती २७
करि हवन शेष रानी को दी, जेठी सब में है कृतद्युती ॥ २८
इकपुत्र होय राजा से कहा, सुख दुखदायक कहि गये मुनी ।२६
हवि खाय गर्भ धारै रानी, कृत्तिका अग्नि ज्यों सेनानी ॥ ३०
धीरे धीरे बढ़ चला गर्भ, ज्यों शुक्लपक्ष में चन्द्र बढ़ै । ३१
जब आया समय पुत्र जन्मा, नृप सुखदायक मन दुःख कढ़ै ।।३२
हो प्रसन्न नृप करि जातकर्म, बहु दानमान विप्रन को दिया ।३३
सोना चांदी हय गज भूषन, गोदान अर्ब षट हर्षि किया ।।३४

दो०—मेघ तुल्य धन बर्षि कै, याचक करि संतोष।
सुत आयू यश नित बढ़ै, शांत होंय सब दोष ॥ ३५

छ०—सहि कष्ट मिलासुत भूपतिं को,धनमें ज्यों कृपिणका नेहबढ़ा ३६
माता का प्राण से प्यारा है, सौतों को सौतपन दाह चढ़ा ॥ ३७
सुतवाली माता नृपको प्रिय, नहिं और नारि सुत लालनकर ।३८
बिनपुत्र दुखी सबही रानी, पावैं नहिं नृप सों कुछ आदर ॥ ३६
धिक्कार पुत्र बिन नारी को, सुतवाली माँ की हैं दासी । ४०
दासी समान हम सब रानी, क्या दुख करना है उपहासी ॥ ४१
सुत सौत निरखि सब सौत जरैं, उस रानी से ठाना है बैर । ४२
मति नष्ट बैर से दारुण चित, विष दिया पुत्र को समभागैर ॥ ४३

दो०—कृतद्युती जानै नहीं, सौतन का यह पाप।
सोवत सुत लखि हर्ष से, गृह में बिचरै आप ॥ ४४

छ०—लखि देर भई सुत को सोते, धा से बोली जगाय लावो ।४५

वह आँखें निकली मरा निरखि, हा मरी गिरी महि ह्यां आवो ॥४६
रानी जाकर सुत मरा निरखि, महि गिरी शोक की थाह नहीं ।४७
उर शिर पीटें सब दासीगण, रोती हैं बिकलभरि आह सही ४८
भीतर रोदन सुनि धाये नृप, नर नारी वे रानिहु रोवें । ४९
सुत मरा सुना गिरते परते, आये ज्यों उसका मुख जोवें ॥५०
गिरपड़े होश नहिं बाल खुले, रुक गया कंठ नहिं बोलि सकें ।५१
पति निरखि पुत्रलखि मातुविकल, बहुविलाप कीना नाहिंरुकें ५२
हिय का चंदन वह आँसू सो, कुररी समान रोदन ठाना ।५३
हे बिधि तुम्हरे नहिं बुद्धि अहै, पितुजीते किमि सुतमरजाना ॥५४

दो०—जन्ममरण में क्रम नहीं, जो कर्मों का भोग ।
मोह फाँस क्यों बांध दी, नहिं काटा यह रोग ॥ ५५

छ०—हूँ अनाथ बेटा तेरे बिन, तव पिता शोक में डूबि रहे ।
यमराज तुझे लेगये दूर, तुझ बिन माँ मुझको कौन कहे ॥ ५६
साथी ये खड़े बुलाते हैं, बच्चा उठ बैठो खेल करो ।
सो चुके बहुत उठि दूध पिवो, हम सबही का संताप हरो ॥ ५७
हतभाग न देखूँ मुख हँसते, क्या और लोक तुम चले गये ।
मृदुबानी कौन सुनावैगा, दै गये पुत्र यह दुःख नये ॥ ५८
श्रीशुक उ०—सुतशोक में रानी रुदन करैं, है मुक्तकंठ नृप रोते हैं । ५९
सेवक नर नारी विकल महा दुखसिंधु में खाते गोते हैं ॥ ६०

दो०—महा दुःख रनिवास में, सब कर होश भुलान ।
नारद सहित अंगिरा, आये ज्ञाननिधान ॥ ६१

भजन—जगत में मोह दृढ़ बंधन, कठिन बिधि ने बनाया है ।
पढे पंडित भये ज्ञानी, न इससे पार पाया है ॥ टेक ॥

कहैं सब ज्ञान समझावैं, भरे वैराग मन त्यागी।
वही पड़ मोह फन्दे में, गला अपना बँधाया है॥ जगत०
लखो पशु पच्छियों को भी, पड़े इस मोह चक्कर में।
आप मरते हैं भूखों से, लाय दाना चुगाया है॥ जगत०
भरत से जो रहे राजा, राज सुत नारि सब त्यागे।
मृगीसुत में फँसा दिलको, आप मृगदेह पाया है॥ जगत०
कहां तक हम कहैं सब से, है धोखा हर घड़ी इसमें।
गाय कर गीत माधवराम, हरदम जग जगाया है॥ जगत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे पंचदशोऽध्यायः।

श्लोक—ततः पंचदशे चित्रकेतोः शोकापनोदनम्।
कृतं तत्वोपदेशेन नारदेनांगिरोयुजा॥

दो०—तत्वज्ञान उपदेश कर, नृप को शोक छुड़ाय।
नारद मुनि औ अंगिरा, पंद्रह में गुन गाय॥

श्रीशुकउ० छं०—मृतसुत के निकट रोवैं राजा, मुनि दोउकहैं कुछ सुनि लीजै। १
राजा यह कौन जिसे सोचो, तुम इसके कौन बता दीजै॥ २
पानी से मिलैं बालू ह्वै अलग, यों काल से सब मिलते छुटते। ३
ज्यों अन्नसे अन्न उपजता है, तनसे तन तुम नाहक घुटते॥ ४
हम तुम ये चराचर जीव मरैं, जन्मैं नहिं आगे पीछे तहं। ५
जीवों से जीव रचि पालैं हरि, माया से बालक समान रह॥ ६
जीवों के देह से देह बनै, ज्यों बीज से बीज बनै हरदम। ७

यह देह जाति का भेद नृपति, अज्ञानहिं की छाया सुखगम ॥८

श्रीशुक उ०दो०—समझाया मुनि बहुत जब, नैन मींजि भूपाल।
धीरज धरि मुनिनिरखि कै, बचन कहैं तत्काल ॥ ९

राजोवाच छ०—को ज्ञाननिष्ठ दोउ आपमुनी, अवधूत वेष छिपि आये हैं१०
हरिभक्त ज्ञान देने को फिरैं, पशुसम गृहस्थ हम गाये हैं ॥ ११
नारद ऋभु देवल असित सनत्–कुमार गौतम मुनिब्यास अहौ।
ऋषिवेद शिरा लोमश आसुरि, मुनिवेद शिरा श्रुतदेव कहौ ॥ १४
शुकदेव बशिष्ठ कपिल रामहु, दुर्वासा याज्ञवल्क्य अरुनी। १३
कौसल्य ऋतध्वज आदिक सब, कहिये इनमें हौ कौन गुनी॥ १५
मैं गृहस्थ पशु मतिमन्द अन्ध, तम डूबा ज्ञानदिया बारो।
अब हाथ पकड़ कर बूड़त को, हे दयालु करि दाया तारो ॥ १६

अंगिरा उ० दो०—सुत दाता नृप आपके, अहैं अंगिरा नाम।
बिधिसुत नारद ये बड़े, साधैं सच्चा काम ॥ १७

छ०—सुतदुख में डूबे तुम्हैं देखि, हरि सुमिरि इहां हम आये हैं १८
हरिजन ब्रह्मण्य तुम्हैं लखि कै, दाया करिबे हित धाये हैं ॥ १९
हम देंय ज्ञान तुम्हैं उसी समय, सुत रुचि दृढ़ देखि पुत्र दीना।
लखलिया पुत्रवालोंका दुख, तिय तन धन गृह नहिं आधीना २१
मही राज खजाना सेन मित्र, सुख विषय सभी जगही चल है।२२
बिन स्वारथ ही सब देखि परैं, कर्मों का फल सब निश्चल है ॥२४
गंधर्वनगर सम स्वप्न तुल्य, भय शोक मोह भारी देवैं।
तन जीव का पंचतत्व इन्द्री, सुर रचित ताप क्लेशहु सेवैं ॥ २५
मति थिर करके गति आत्मलखो, भ्रमद्वैत तजो शांतीपकरो।२६
नारदउ०—यह मंत्र उपनिषद हमसे लो, दिनसातमें दर्शन शेषकरो ॥२७

दो०–द्वैत बुद्धि रुद्रादि तजि, चरण गहे हरि धाय ।
महत्व पाये दुख गये, नृप कस रहे भुलाय ॥ २८

भजन–देत दुख आखिर कुल परिवार ।
बालक बनि छन छन में रोवै, समझै नहीं गवांर ॥ टेक ॥
ज्वान भये विरहागि जरैं हिय, तिय दृग इंधनडार ।
पुत्र भये जिय लेत जियत भर, बिछुड़े डारैं मार ॥ देत०
मतलब साथी भाई चाचा, चाची मामा सार ।
धन के हेत सबै लपटाने, कहैं हमार हमार ॥ देत०
धन हित जन्म गँवाय मूढ़ नर, बृद्धापन तन धार ।
माधवराम अबहुँ बनि जैहै, भजि ले नंदकुमार ॥ देत०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ पंचमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे षोडशोऽध्यायः ।

श्लोक०–षोडशे तत्सुतोक्त्यैव विशोकीकृत्य तं नृपम् ।
आदिदेश महाविद्यां नारदः शेषतोषणीम ॥

दो०–पुत्र जिवाय नृपति कहँ, कहवायो बहु ज्ञान ।
सोलह में वर्णन करैं, शेष मंत्र अरु ध्यान ॥

श्रीशुकउ०छं०–नारद मृतपुत्र जिवाय दिया, पितु मातु सबहिं को कहलाया
बालक ही बोला उठिकै आप, सब बातैं सोई बतलाया ॥ १
नारद उ०–हे जीव जियो पितु मातु सुहृद, बंधू सब दुखी तुम्हारे हैं । २
बैठो शरीर में गद्दी लै, जीवहु लो भोग पियारे हैं ॥ ३
जीव उ०–उठि जीव कहै कब मात पिता, मेरे हम कर्म विवश भटकै । ४

रिपु मित्र जाति भाई पितु मा, सबही के सब हों क्यों अटकै ॥ ५
ज्यों सोने से बहु गहने बन, यों जीव सभी योनी में फिरे । ६
संबंध नित्य औ अनित्य का, जब तक ममता से रहैं घिरे ॥ ७

दो०—गयो जीव यह योनि में, नित्य बिना हंकार ।
जब तक देह तजै नहीं, मालिक को अधिकार ॥ ८

छं०—है जीव नित्य सूक्ष्महु अव्यय, सबका आश्रय द्रष्टा अपना ।
निज माया गुणसे विश्वआत्म, रचता मालिक ह्वै सब सपना ॥ ९
उसके प्रिय अप्रिय निज पर नहिं, गुण दोष कर्म का है द्रष्टा । १०
गुण दोष आत्मा नहिं लेवै, रह उदासीन साक्षी स्रष्टा ॥ ११
श्रीशुकउ०—यहकहके जीवतन त्यागिगया, विस्मित पितु मातु शोक त्यागैं १२
तन की कर उचित क्रिया सबही, तजिशोक मोह हरि अनुरागैं १३
बालक हत्या से तेज नष्ट, सौतेली माँ सब व्रत धारैं ।
यमुना तट पै उपवास करैं, जो ब्राह्मण मंडल निरधारैं ॥ १४

दो०—यह विधि मुनि उपदेश लहि, चेति गये भूपाल ।
अंधकूप गृह से कढ्यो, जिमि गज कीचड़ ताल ॥ १५

छं०—यमुना नहाय करि नित्यक्रिया, विधिसुत दोनोंकोनमन किया १६
शरणागत भक्त निरखि नारद, शुभमंत्र ताहि उपदेश दिया १७
भगवत श्री वासुदेव प्रद्युम्न, संकर्षण चारि सरूप नमः । १८
विज्ञान रूप आनंदमयी, हरि शांत आत्मारूप नमः ॥ १९
अनुभव सरूप शक्तीधर को, है नमो हृषीकेशहु जग रूप । २०
मन बानी से जो मिल न सकै, हमें राखि लेय पड़ते भवकूप ॥ २१
जिसमें जिससे यह सब जग है, पात्रों में मृत्तिका है जैसे । २२
है नमो उसे आकाश तुल्य, मन बुद्धि न जाने है तैसे ॥ २३

दो०—मन बुद्धी प्राणादि सब, जेहि बल से करैं काम।
नहिं गम मूर्छा शयन में, वह साची हर ठाम ॥ २४

छ०—है नमो महाविभूतिपति को, बहु अनुभव महापुरुष गाये।
परमेष्ठी नमो कमलपदको, हरिभक्त योगिजन हिय ध्याये ॥२५
श्रीशुकउ०—नारद नृपको उपदेशदिया, अंगिरा सहित मुनि चले गये।
जल पीकर भूपति सात दिवस, विद्या आराधन करत भये ॥२७
सातही दिवस में सिद्ध भये, विद्याधर पति हो गये तहाँ। २८
कुछ ही दिन में फिरिगे भूपति, पद शेषराज के अहैं जहाँ ॥२६
हैं श्वेतवर्ण अरु वस्त्र श्वेत, केयूर कीट कंकण धारी।
मुख प्रसन्न लोचन दयायुक्त, जावैं सिद्धेश्वर बलिहारी ॥ ३०

दो०—पाप नाश हों दर्श से, निर्मल मुनि जेहिं पाव।
करि प्रणाम राजा प्रभुहिं, भक्ति प्रेम हिय लाव ॥ ३१

छ०—उत्तम कीरति हरिपद लखि नृप, बह प्रेमअश्रु नहिं बोलि सकैं ३२
चित थिर करि सावधान ह्वै कै, स्तुति ठानी प्रभुरूप तकैं ॥ ३३
चित्र०उ०—सममति आत्माजित तुम्हैं लहैं, तजिकाम भजैं तुमको पावैं ३४
जग रचि पालैं नाशैं हैं आप, सब प्रजापती हिय में लावैं ॥३५
परमाणु, महान आदिहु अंतहु, जीवों के भीतर बाहर हो।३६
दश गुने बड़े माया अवरन, कोटिन ब्रह्मांड धरे हर हो ॥३७
नर पशु विषयी नहिं लखैं तुम्हैं, नृप नाशै ज्यों सेवक नासैं ३८
जिमि भुना बीज नहिं कभी जगै, तिमि ज्ञानी नहिं भवमें फाँसैं ॥३९

दो०—निष्किंचन हरि धर्म है, धारैं अपने शीश।
आत्माराम मुनीश जे, मुक्ति लहैं भजि ईश ॥ ४०

छ०—मैं तुम नर में यह विषय बुद्धि, मेरा तेरा धरि अधर्मकर ।४१

निज पर गुनिमन किमि लहैं चेम, करि अधर्म गुस्सा बैरहुधर॥४२
परमार्थ न त्यागति तव इच्छा, जिससे भागवतधर्म गाया।
चर अचर जीव में निर्मलमति, जनही प्रभुपद में चित लाया ४३
हे भगवन यह नहिं झूठ अहै, दर्शन से आपके पाप छुटैं।
कहि सुनि चांडालहु नाम प्रभू, संसार से छूटै भव न घुटैं॥ ४४
अबही हम दर्शन करिकै शुद्ध, जो नारद कहा न झूँठ अहै।४५
सब जानत जगके चरित आप, किमिरवि खद्योत प्रकाश चहै॥ ४६

दो०—जग रचि पालहु नाशकर, भगवत तुम्हैं प्रणाम।
नाहिं कुयोगी लखि सकैं, परमहंस प्रभुधाम॥ ४७

छ०—जिसकी चेष्टा से सब चेष्टित, जिसके देखत सब देखत हैं।
सरसौं समान शिरपै पृथ्वी, है नमो कमलपद शेष तुम्हैं॥ ४८
श्रीशुक उ०—विनतीकरि कर प्रणामराजा, तव शेष नृपतिसों बचन कहे ४९
श्रीभगवानुवा०—नारद अंगिरा कही बानी, तुमसिद्ध भये फल सकललहे ५०
हम सबै जीव जग में भावन, तन वेद ब्रह्म पर दोउ धारे। ५१
तन में विराट में सदा व्याप्त, करि दोउ रूप जग निरधारे॥५२
ज्यों नर सोवै जग आत्ममें लख, जागे पै एक अलग आत्मा।५३
त्यों जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आत्म में, मायासे वह परमात्मा॥५४

दो०—सोवत पुरुष जासु बल, अपना शयन निहार।
निर्गुण ब्रह्म आत्मा, तौन भूप हिय धार॥ ५५

छ०—सोते औ जागतेमें साची, है अलग मिला सोइ ब्रह्मअहै ५६
यह आत्मभाव जो भूलि जाय, सो मरै जियै तन जगमें लहै॥५७
तन पाय ज्ञान विज्ञानमयी, नहिं आत्म लखे बिन सुख पावै।५८
स्मरन में दुख फल उलटा है, त्यागे संकल्प अभय आवै॥५९

नरनारि मिलैसुख करैं क्रिया, नहिं दुख छूटै सुख नहिं लहते ।६०
हंकारा उलटा समझ रहे, नहिं आत्मा लखि दुख से दहते ॥ ६१
देखा सुन गुन से छूटै जन, विज्ञान ज्ञान लहि भक्त भया । ६२
नर बुद्धिमानता इसही में, इक परमात्मा लखि द्वंद गया ॥ ६३
हे राजन मेरी यह शिक्षा, हो सावधान श्रद्धा से सुनो ।
विज्ञान ज्ञान से युक्त शीघ्र, ह्वै सिद्ध आपको मुक्त गुनो ॥६४

श्रीशुक उ० दो०—चित्रकेतु समझायकै, प्रभू शेष भगवान ।
देखत ही हरि विश्वमय, झट भे अंतरध्यान ॥६५

भजन—कथा सब चित्रकेतु की गाय ॥ टेक ॥
पुत्रहीन बहु यतन किये नृप, सुत न लहे दुख छाय ।
आय अंगिरा युक्ति कीन जब, पायो सुत हरषाय ॥ कथा०
दान मान गज धेनु बाजि धन, भूपति बहुत लुटाय ।
भयो वियोग पुत्र को जबहीं, रानी नृप घबराय ॥ कथा०
अंत अंगिरा नारद आये, दीनो ज्ञान बताय ।
सुखी भये राजा हरि भजिकै, गये शेषपद पाय ॥ कथा०
लखि विनती वरदान शेष दै, ब्रह्महिं दियो लखाय ।
माधवराम जाल से छूटे, मगन कृष्णगुन गाय ॥ कथा०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे षोडशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः

श्लो०—ततः सप्तदशेऽमोघमहर्द्धिं प्राप्य खेचरन् ।
बिहस्य गिरिशं शापादुमाया वृत्रतां गतः ॥

दो०—विद्याधर ह्वै ऋद्धि लहि, विचरहिं आनँद पाय।
सत्रह में गिरिजासती, शाप बृत्रतन गाय॥

श्री शुक उ० छ०—अंतर भे तहँ प्रणाम करिकै, विद्याधर ह्वै अकाश विचरै।१
मुनि सिद्ध स्तुती करैं जासु, लाखों बर्षैं बीती बिहरै॥ २
विद्याधरि नारी संग बहुत, नानाथल में हरिगुन गावै। ३
इकबार विमान चढ़ा शिव लखि, भावी से बुद्धि पलटि जावै॥४
अर्द्धांगी शिव की पार्वती, बैठी शिव हाथ सहारे से।
सब सुनते हँसिकै कहै बचन, पासहि बोला हंकारे से॥ ५
चित्रकेतुरुवाच—यह लोकगुरू धर्महुवक्ता, बैठे हैं सभा में नारि लिये। ६
तप जटा धरे ब्रह्महि वादी, ह्वै सभापती तजि लाज दिये॥ ७

दो०—प्राकृत नर एकांत में, मिलै नारि से जाय।
सभा माहिं बड़ ब्रत धरे, राखी अंग लगाय॥ ८

श्रीशुकउ०छ०—शिवजी सुनि हँसिकै मौनभये, तहँ और सबै मुनि सिद्धरहे ६
सुनि अशुभक्रोधकरि पार्वती, अभिमानीसे यह बचन कहे १०-११
बिधि सनकादिक भृगु नारदादि, जानै न धर्म जो शिवहि कहै।१२
मंगल के मंगल जगतगुरू, शिवनिंदक क्षत्रिहि दंड यहै॥ १३
हरिजन सेवित हरि की पदवी, हंकारमती यह नहिं पावै। १४
आसुरी योनिमें जन्म पाव, हे पुत्र न फेर पाप लावै॥ १५
श्रीशुक उ०—इस भांति पार्वती गिरिजाजी, कल्यान हेतु तेहि शाप दिया।
उतरा विमान से बहु मनाय, पदनमि शिर शाप चढ़ाय लिया॥१६
चित्रकेतुरु० दो०—मातु शाप तव लेत हम, करसे शिरपै धार।
कहत देवता जौन कुछ, भाग भोग निरधार॥१७
छ०—अज्ञानसे मोहित जगमें भ्रमैं, सुख दुःख लहै नर अभिमानी।१८

सुख दुख कर्ता नहिं आत्मा पर, निज पर को मानै अज्ञानी ॥१६
मायामें शाप बरदान है क्या, क्या सुख दुख नर्क स्वर्ग से फल ।२०
हरि माया से सब जगत रचै, सुख दुःख बंध मोक्षहु निष्फल ॥२१
नहिं उसका प्रिय कोउ शत्रुमित्र, नहिं जाति बंधु क्रोधहु प्रीती ।२२
जग रचि सुख दुख जन्महू मरण, विधि बंध मोक्ष निषेधरीती ॥२३
नहिं शाप छुटै हित मनावते, कटु बचन कहे सो क्षमा करो ।
हे माता मन में बुरा लगा, बालक गुनि अपने चित न धरो ॥ २४
श्रीशुक उ०दो०—शिव गिरिजा से विनय करि, चित्रकेतु शिर नाय।
चढि विमान पुनिचलि भया, विस्मय हर्ष न लाय॥२५
छ०—सुरमुनि पार्षद सब सिद्ध सुनै, शिव पार्वती से बचनकहे २६
श्रीरुद्रउवाच—हेप्रिया भक्तमहिमा देखी, हरि अद्भुतकर्म न जाहिंगहे २७
नारायण तत्पर नाहिं डरैं, सम नर्क स्वर्ग दोऊ मानै । २८
ईश्वर माया से जीवों को, बर शाप जन्म मरना जानै ॥ २६
अज्ञान से अर्थ भेद नर के, आत्मा में दिखाई सब देवे ।
गुण दोष कल्पना माया से, माला में मनिया सम लेवे ॥३०
हरि वासुदेव में भक्ति करै, धरि ज्ञान विराग निराश्रय रह । ३१
हम ब्रह्मा नारद सनतमुनी,नहिं लखैं ताहि किमि औरहु कह ३२
दो०—अप्रिय प्रिय निज पर नहीं, तेहि हरि के यह मान ।
सब जीवों को आत्मा, सब के प्रिय भगवान ॥ ३३
छ०—भगवतका भक्त यह चित्रकेतु,समशांत हरीप्रिय हम जैसे ३४
विस्मय करना हरिभक्तों में, है उचित नहीं समदृश ऐसे ॥ ३५
श्रीशुकउ०—शिवजी का कहना उमा सुना, आश्चर्य गया मन थिरकीना ।३६
येही सुसाधु का लक्षण है, देवी का शाप शिर पर लीना॥३७

त्वष्टा की यज्ञ में दानव ह्वै, प्रगटा ज्ञानी बृत्रासुर नाम ॥ ३८
पूँछा जो हाल कहा सबही, ज्यों भया भक्त कीन्हे सब काम ।३६

दो०—चित्रकेतु इतिहास यह, सुने बंध छुटि जाय । ४०
श्रद्धा पूर्वक पढ़े ते, परमगती जन पाय ॥ ४१

भजन—भक्तजन दुख से नाहिं डेराय ॥ टेक ॥
चहै भाग बस जांय स्वर्ग में, नर्क परैं दुख छाय ।
हरि हिरदे आनंद सदा रह, नहिं विस्मय हरषाय ॥ भक्त०
चित्रकेतु की दशा निहारो, लीन शाप शिर नाय ।
माधवराम रह मस्त भजन में, मगन कृष्णगुन गाय ॥ भक्त०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः ।

श्लोक—अदितेः पंचमादीनां पुत्राणामन्वयोक्तिभिः ।
अष्टादशे दितेर्गर्भे शक्रेण मरुतां भिदा ॥

दो०—अदिति वंश वर्णन करैं, अट्ठारह अध्याय ।
सुरपति गर्भहिंछेद से, वायु जन्म कह गाय ॥

श्रीशुक उ० छ०—सविता सावित्री से जन्मे, पशु सोम अग्निहोत्रहु है नाम ।
मख चातुर्मास पंचयज्ञहु, करने से करते पूरण काम ॥ १
भग की नारी है सिद्धि पुत्र, महिमान प्रभू विभु आशिषसुत ।
सुव्रता नाम की कन्या भै, जिसके गुण चरित बहुत अद्भुत ॥ २
धाता तिय कुहू के भे सायं, सिनी बालीदर्श पुत्र जाये ।
राका के प्रात अनुमती नारि, सुत पूर्णमास ही उपजाये ॥ ३

भे अग्नि पुरीष क्रिया में शुभ, चर्षणी वरुण के भृगु जिनके।४
धर दिया कुंभ में वीर्य से दो, भे वाल्मीकि भी सुत इनके ॥
वल्मीकि से वाल्मीक योगी, भे मित्रावरुण के पुत्र वशिष्ठ । ५
अरु अगस्त्य भी उर्वशी देखि, गिरगया वीर्य घट में धर शिष्ठ ॥ ६
पिप्पल अरिष्ट भे मित्रहु के, इन्द्रहु के तीन इन्द्राणी में ।
मीढुष जयंत औ ऋषभ भये, जे कुशल युद्ध सुर बाणी में ॥ ७

दो०—वामनजी के कीर्ति में, सौभग बृहत श्लोक ।
औरहु सुत पैदा भये, सुने चरित नश शोक ॥ ८

छ०—कश्यप से अदिति में वामन भे, पीछे से चरित बखान करैं ९
कश्यप के दैत्य सुत वंश सुनो, प्रह्लादबली जहँ जन्म धरैं ॥ १०
दिति के दो पुत्र हिरणकश्यप, अरु हिरणाक्ष कहलाये हैं । ११
तहँ कयाधु हिरणकशिपु नारी, शुभ चारि पुत्रहू जाये हैं ॥ १२
संह्लाद ह्लाद औ अनुह्लाद, प्रह्लाद बहिन सिंहिका भई ।
जिसका राहू है प्रबल पुत्र, वह विप्र चित्ति को ब्याह गई ॥ १३
शिर राहु का पीते अमृत कटा, संह्लाद को ब्याही कृति नारी ।
सुत पंचजनहु पैदा उससे, भै ह्लाद की धमनी तिय प्यारी १४

दो०—इल्वल बातापी भये, जो अगस्त्य दिये मार ।
धोखा दै सब मुनिन को, करै सदा संहार ॥ १५

छ०—अनुह्लाद की सूर्मी रानी में, बाष्कल महिषासुर पुत्रभये ।
करि युद्ध महा जगदंबा से, संसार त्यागि शुभधाम गये ॥ १६
प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हैं, तिनके सुत बलि भे जगदानी ।
अशना में सौसुत जन्माये, है बाण जेष्ठ सुत गुणखानी ॥ १७
कहिहैं चरित्र शिवसेइ बाण, मुखिया सब गण में यही भया ।
शिव अबहूँ तो पुर पालक हैं, रचिगुप्त काशिस्थान नया ॥ १८

दितिके उंचास पवन सुत हैं, जो इन्द्र से भायपना लीना।
दैत्यन के भाय सुरपति में मिलि, उपकार देवतों का कीना ॥१६
राजो० दो०—असुरभाव तजि कौन विधि, बने इन्द्र के भाय।
कौन सुकर्म किया सबहिं, मुनिदीजै समुभाय ॥२०
छ०—हे ब्रह्मन् मुनि हम सुना चहैं, कहिये चरित्र यह विज्ञानी।२१
सूतउ०—सुनि भूप बचन शुक मुनि ज्ञानी, कहिवे हितअपनी मतिठानी २२
श्रीशुकउ०—दिति के सुत दैत्य विष्णुमारे, जरतीहै क्रोधसे दुखछाये २३
किस भांति इन्द्र को मरवाऊँ, सुख से सोऊँ शांती आये ॥ २४
तन की संज्ञा कृमि विष्ठा भस्म, इससे क्या जग में बैर करै।
स्वारथ के लिये पागल बन के, मरि जाय अंत में नर्क परै ॥२५
तन अमर मानि मदमान बढ़ा, सुरपति मदशोषक सुत होवै। २६
इस भावसे पति कश्यप सेवै, शमदम धारै पतिमुख जोवै ॥ २७
दो०—परमभक्ति मृदु भाषण, करि पति मन हर लीन। २८
जड़ीभूत विद्वानहू, भे मुनि तिय आधीन ॥ २६
छ०—आश्चर्य नहीं नारी में यह, कश्यप तियको अर्द्धांगि करी। ३०
ह्वै प्रसन्न सेवा से उसके, बोले हँसिकै हिय प्रीति भरी ॥ ३१
कश्यप उ०—वरदान लेहु तुमसे प्रसन्न, सब सुलभ अहै पति प्रसन्नजब ३२
नारी का देवता इक पति है, सब जीवों का हरि समझो अब ॥३३
बहु नाम रूप से जग पूजै, हरि नारी पूजै पति ईश्वर। ३४
सुख चाहैं पतिव्रता नारी, सतभाव से मानै परमेश्वर ॥ ३५
तुमने सतभाव से पूजा है, दुष्टा न लहे वह वर लेवो।
दृढ़ भाव से भक्ती सत्यकरी, दुखत्यागि सकल अब सुखसेवो ॥३६
दितिरुवाच दो०—बरदायी जो प्राणपति, देहु पुत्र बरदान।
मारै इन्द्रहिं पुत्र मम, मरवाये छल ठान ॥३७

छ०—दुख किया सुनामाँगा यह वर,हमने हा बड़ाअधर्म किया ३८
इंद्रीसुख में फँस के खोया, सुत इन्द्र अंत में नर्क लिया ॥ ३९
नारी स्वभाव इसको न दोष, अज्ञानी मूढ़ मुझे धिक्कार । ४०
मुखकमलबचन अमृततियके,दिलछुराधार नहिं किया विचार ४१
नारी को मतलब प्रिय न कोइ, पति पुत्र भाय मरवा डालैं ४२
नहिं मरै इन्द्र क्या करौं युक्ति, हां किया बचन भी नहिं टालैं ४३
सुत मरीचि के कश्यप सुयोग, कुछ कुपित बचन यों उच्चारैं ४४
कश्यप उ०—सुरपति मारै सुत देवबंधु, हो पूर वर्ष भर ब्रत धारै ४५

दितिरु० दो०—जो करना ब्रत धारिकै, देहु कर्म समझाय ।
निषिद्ध बातैं सब कहो, जिनसे ब्रत नशि जाय ॥ ४६

कश्यप उ० छ०—नहिं हनौ जीव कोशौ न झूंठ, बोलौं नख रोम धरौ तनमें ।
नहिं छुवौ अमंगल वस्तु कभी, नहिं क्रोध धरौ अपने मनमें ४७
नहिं नहाव नंगे जलमें कभो, दुर्जन से कभी न बात करौ ।
अपवित्र वस्त्र पहिरी माला, भूले पहिरो नहिं अंग धरौ ॥ ४८
जूँठ भोजन नहिं मांस खाव, ऋतुमती नारि न शूद्र छू जाव ।
अंजुली से पानी पिवो नहीं, नहिं बासी अन्न भूलिकै खाव ॥४९
नहिं जूंठे बाल खुले अशुद्ध, संध्या के समय नींद लावो ।
सजिवस्त्र लाजकरि मौनधार, घर बाहर काम पड़े जावो ॥ ५०

दो०—बिन पद धोये गीलपद, उत्तर शिर नहिं सोउ ।
पश्चिम शिर नंगे नहीं, सोवो संध्या दोउ ॥ ५१

छ०—धोये सुवस्त्र रह पवित्रनित, सब मंगलयुत गो द्विज पूजै ।५२
पति पुत्रवती नारी सुचाल, पतिहू पूजै गुनि हरि दूजै ॥ ५३
ब्रत साल भरे पुंसवन नाम, करिहौ जो पूर तो पूर परै । ५४

हां करि खुशह्वै लिया गर्भधारि, मनमें दितिनारि अनंदभरै ।।५५
मौसी दिति का लखि अभिप्राय, सुरपति बिधिसे सेवाठानी ।५६
फलफूल कुशा समिधा जलहू, मृत्तिका आदि देवैं आनी ।।५७
ज्योंमृग के बहेलिया दाँव लखै, त्यों दिति के इन्द्र निहारै हैं ५८
नहिं मिलै बड़ी चिंता व्यापी, किसविधि शुभ होय विचारै हैं ५६

दो०—व्रत से कृश संध्या समय, जूंठे पदहु न धोय ।
भावी से मोहित दिती, रही विकल ह्वै सोय ।। ६०

छ०—योगी सुरपति गहि योगकला, दितिउदर में जायप्रवेश किया ६१
किये गर्भके टुकड़े सात, एक इक सात सात करि खंड दिया ।। ६२
रोवैं मत रोवो इन्द्र कहा, मत मारो हम होंगे भाई । ६३
मत डरो इन्द्र ने अभय दिया, मारुत अनन्यभक्ती लाई ।। ६४
हरि दया से गर्भ मरा नहिं वह, धरि बज्र इन्द्र बहु खंड किये ।
ज्यों ब्रह्मअस्त्र से आप भूप, हरि रच्छहिं भीतर अस्त्र लिये ।। ६५
दिति ने तो साल से कुछ ही कम, पूजे हरि इक दिन कामबने ६६
तजि मातृभाव उंचास पवन, मिलिइन्द्र लेहि मखभाग घने ।।६७

दो०—बाहर आये इन्द्रयुत, दिति सब पुत्र निहार ।
भै प्रसन्न हिय में करै, बारंबार विचार ।। ६८

छ०—दिति इन्द्रसे पूँछै सुर भयप्रद, एकही पुत्र हित व्रत ठाना ।६९
उंचास पुत्र किस तरह भये, सुरपति कहदो जो हो जाना ।।७०
इंद्रउ०—माता तुम्हरी व्रत भूल देखि, हमनेही गर्भ के खंड किये ।
नहिं धर्म बुद्धि स्वारथ में रत, स्वारथही में हम चित्त दिये ।।७१
किये सात एक के सात सात, इक इक के किये वह मरे नहीं ।७२
हरि व्रतपूजा महिमा लखिके, विस्मयपाया दिति मनमें सही ।।७३

बिन स्वारथ जे हरि आराधैं, फल चहैं नहीं ते कुशल अहैं ।७४
नरकहुमें विषयसुख मिलैमूढ,करि भजन विष्णु हरिपद न चहैं ७५
दुर्जनतासुभ्रू अज्ञानी की, हे माता क्षमिये गर्भ जिया ।७६
दिति से आज्ञा ले स्वर्ग गये, सब साथ में वायूबृन्द लिया ॥ ७७

दो०—मरुत जन्म सब कह दिया, जो नृप पूँछा आप ।
जो पूँछौ सो फिरि कहैं, मिटिहै सब संताप ॥७८

भजन दादरा—बुराई सोचि बुरा फल पाव ।
दिति पति से व्रतविधी पूंछि सब, विधि से विष्णुमनाव ॥टेक॥
चूक परी मत्सर धारे से, और और हो जाव ।
शत्रु मित्र के गुण लावत हैं, जो हरि हिरदे लाव ॥ बुराई०
देखो मृत्यु वायु सुरपति के, हरि चट मित्र बनाव ।
माधवराम रात दिन चित दै, रामकृष्ण गुन गाव ॥ बुराई०

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधेऽष्टादशोऽध्यायः ।

अथ श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः ।

श्लोक—ऊनविंशे तु यत्प्रोक्तं कश्यपेन दितेर्व्रतम् ।
तदेव विवृतंलोकहिताय हरितोषणम् ॥

दो०—उनइस में पुंसवन व्रत, कश्यप दिति कहँ दीन ।
सोई ह्यां संसारहित, फिरिकै बर्णन कीन ॥

राजोवाचछं०—हेब्रह्मन् जो पुंसवन व्रतहु, दितिको कश्यप बर्णन कीना ।
होते प्रसन्न हरि हैं जिससे, कहिये सुनिबे हित मन लीना ॥ १

श्रीशुक उ०—हो शुक्लपक्ष परिवा अगहन, पति आज्ञा लै प्रारंभ करै।
नारी पवित्र मनसे नितही, निष्ठा करि पूजा हिय में धरै ॥ २
सुनि कथा वायु जन्महु की सब, स्नान पवित्र वसन पहिरै।
द्विज आज्ञा लै लक्ष्मी विष्णू, पूजै मन में आनंद भरै ॥ ३
इच्छा नहिं पूर्णकाम तुमहो, सबसिद्धि विभूतिपती को नमो। ४
गुण महिमा तेज विभूतियुक्त, भगवानप्रभू सुयतीको नमो ॥ ५

दो०—महापुरुष लक्षण धरे, माया रूप कहाय।
नमो लोकमाता तुम्हें, लक्ष्मी पद शिर नाय ॥ ६

छ०—है नमो भगवते महापुरुष, बलि महाविभूतिपती लीजै।
इस भांति हरी आवाहन करि, षोडश प्रकार पूजन कीजै ॥ ७
'ॐ नमो भगवते महापुरुष', इस मंत्र से बारा आहुति दे। ८
भक्ती से लक्ष्मी विष्णु पूजि, जो चाहे सबै विभूती ले ॥ ९
दशवार मंत्र जपि स्तुति पढ़ि, भरि प्रेम भक्ति दंडवत करै। १०
जग के कारण दोउ प्रकृतिपुरुष, माया औ ब्रह्म प्रभु रूप धरै ॥ ११
मायापति हो परपुरुष आप, इस क्रिया यज्ञ के फल भोगी। १२
गुणसरूप माया लक्ष्मी है, गुण प्रगट करैया हरि योगी ॥

दो०—हरि सब तन की आत्मा, लक्ष्मी तन आधार।
नाम रूप माया धरै, हरि हैं बिना अकार ॥ १३

छ०—जगके बरदाता लक्ष्मी हरि, मेरे मनोर्थ को फलदेवै। १४
स्तुति कर उत्तर पूजनादि, कोई विधि कमती नहिं सेवै ॥ १५
लै प्रसाद सूंघै यज्ञहु का, फिरि स्तुति कर पूजन ठानै। १६
रुचि पूरि प्रेम से पति पूजै, सब कर्म साधि हरि ही मानै ॥ १७
नर नारि करैं यह नारी ही, नहिं छुवै योग पति पूजा कर। १८

सौभाग्यवती द्विज नारि पूजि, नितही ब्रत खंडित होय न डर ॥१६
हरि पधारि दे स्थान माहिं, आपहु पीछे प्रसाद लेवे। २२
बारा मासहु कातिक लौं करि, मनसे नारीविधान सेवे ॥ २३

दो०—आचार्यहि मुखिया करै, ब्रत पूरण करि लेय।
द्विजौ कुटुंब जिमाय कै, मख प्रसाद तिय देय ॥ २४

छ०—विधि पूर्वक ब्रत पुंसवन करै, नारी सौभाग सदा पावै।
यश गृह लक्ष्मी संसारसुखौ, चिरजीवी पुत्रहु उपजावै ॥ २५
जो पुरुष विधी से ब्रत धारै, इच्छा पूरै कन्या शुभ बर।
मृतवत्सा के सुत जियैं सुधन, दुरभागिनि को देवैं ईश्वर ॥ २६
जो होय कुरूप सुरूप लहै, रोगी निरोग हो सुख छावैं।
शुभ कर्म में पाठ करै इसका, सुर पितर तृप्त ह्वै हरषावैं ॥ २७

दो०—श्रीहरिब्रत के अंत में, पूरण कर सब काम।
हे राजन् पुंसवनब्रत, वर्णन किया ललाम ॥ २८

भजन—ब्रत पुंसवन नृपहिं मुनि गाया ॥ टेक ॥
पूजन लक्ष्मी हरि को विधि से, हवन मंत्र विधिसे बतलाया।
बारा मास करै नर नारी, अगहन में प्रारंभ कराया ॥ ब्रत०
होत मनोरथ पूरण सबके, नर नारी के जो मन भाया।
माधौराम भजन हिय ठानै, सब विधान याही में आया ॥ ब्रत०

—०:❀:०—

इति श्रीमद्भागवते भाषासरसकाव्यनिधौ षष्ठस्कंधे एकोनविंशोऽध्यायः।

षष्ठस्कंध समाप्तः।

द्वितीय खण्ड समाप्तः।